स्मारिका

प्राकृतिक, वैदिक एवं जैविक खेती

ग्रामीण उद्यमिता का नया स्वरुप

शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू

केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
श्री रणवीर परिसर जम्मू एवं कश्मीर

श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान न्यास, जम्मू

स्थापना दिवस एवं वार्षिकोत्सव 2022

चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास द्वारा संचालित

चूड़ामणि संस्कृत संस्थान, विश्वस्थली (बसोहली), कठुआ, जम्मू-कश्मीर

स्मारिका

प्राकृतिक, वैदिक एवं जैविक खेती

ग्रामीण उद्यमिता का नया स्वरूप

(15 जनवरी 2022)

संपादक मंडल

प्रो. मदन मोहन झा
श्री शक्ति कुमार पाठक
महन्त रोहित शास्त्री
आचार्य अभिषेक कुमार उपाध्याय
डॉ मदन कुमार झा
आचार्य सुरेन्द्र शास्त्री
आचार्य सौरभ शर्मा
डॉ. प्रणव कुमार
डॉ. नरिंदर पनोत्रा

डॉ. प्रेम कुमार
डॉ. सुधाकर द्विवेदी
डॉ. प्रदीप राय
डॉ पवन शर्मा
डॉ. राकेश शर्मा
डॉ. विशाल महाजन
डॉ. पुनीत चौधरी
डॉ उमाशंकर
डॉ. नीलेश शर्मा

आयोजक

शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर, जम्मू एवं
श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान न्यास, जम्मू

चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास द्वारा संचालित
चूड़ामणि संस्कृत संस्थान
विश्वस्थली (बसोहली), कठुआ, जम्मू, जम्मू एवं कश्मीर

LIEUTENANT GOVERNOR
JAMMU & KASHMIR

RAJ BHAVAN
JAMMU-180001

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मुझे यह जानकर अपार हर्ष हो रहा है कि संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार के लिए समर्पित स्वर्गीय डॉ. पण्डित उत्तम चन्द पाठक शास्त्री जी द्वारा स्थापित चूडामणि संस्कृत संस्थान न्यास के माध्यम से संचालित चूड़ामणि संस्कृत संस्थान, विश्वस्थली (बसोहली) का स्थापना दिवस एवं वार्षिक उत्सव दिनांक १५ जनवरी २०२२ को भव्य रूप से मनाया जा रहा है।

इस अवसर पर चूड़ामणि संस्कृत संस्थान, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर कोट भलवाल जम्मू, एवं श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान ट्रस्ट के संयुक्त तत्वावधान में कुल चार सत्रों में विविध कार्यक्रम आयोजित कर रहा है। जिसमें प्रथम आध्यात्मिक सत्र, द्वितीय कण्ठ पाठ एवं शास्त्रार्थ सभा सत्र, तृतीय शोध परक सत्र का विषय वैदिक वाङ्मय में कृषि विज्ञान एवं चतुर्थ सत्र समापन समारोह के रूप में हो रहा है।

"वैदिक वाङ्मय में कृषि विज्ञान" इस विषय पर एक राष्ट्रीय सेमिनार किया जा रहा है। भारतीय कृषि परम्परा में पुनः वैदिक कृषि विज्ञान, प्राकृतिक खेती, सहज खेती, जैविक खेती जैसे गहन विषयों पर अनुसंधानात्मक विमर्श हो सके इस दृष्टि से यह विषय महत्वपूर्ण है।

आदि काल से हमारा देश वैदिक कृषि के रूप में विश्वभर में प्रसिद्ध रहा। मुझे आशा है कि जम्मू कश्मीर की ये शैक्षणिक संस्थाएं इस ज्ञानमय यज्ञ की सफलता में अपनी भूमिका निर्वहन कर रही हैं और आगे भी करती रहेंगी। इसी आशा से चूड़ामणि संस्कृत संस्थान के उज्ज्वल भविष्य तथा स्मारिका के उद्देश्यपरक प्रकाशन हेतु मैं ढेर सारी मंगलकामना के साथ शुभकामना देता हूँ।

(**मनोज सिन्हा**)

१० जनवरी २०२२
जम्मू

Biswajit Kumar Singh, **IFS**

Principal Secretary to Government
School Education Department
Jammu & Kashmir

D.O. No. _____

Dated _____

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार के लिए समर्पित स्वर्गीय डॉ. पण्डित उत्तम चन्द्र पाठक शास्त्री जी द्वारा स्थापित चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास के माध्यम से संचालित चूड़ामणि संस्कृत संस्थान, विश्वस्थली (बसोहली) का स्थापना दिवस एवं वार्षिक उत्सव दिनांक 15/01/2022 को भव्य रूप में मनाया जा रहा है। इस अवसर पर चूड़ामणि संस्कृत संस्थान, शेर ए कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर कोट भलवाल जम्मू एवं श्रीकैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान ट्रस्ट के संयुक्त तत्वावधान में कुल चार सत्रों में विविध कार्यक्रम आयोजित कर रहा है, जिसमें प्रथम आध्यात्मिक सत्र, द्वितीय कण्ठ पाठ एवं शास्त्रार्थ सभा सत्र, तृतीय शोध परक सत्र एवम् चतुर्थ का विषय वैदिक वाङ्मय में कृषि विज्ञान विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हो रही है।

इस अवसर पर एक स्मारिका का विमोचन भी हो रहा है। वैदिक वाङ्मय में कृषि विज्ञान इस विषय पर एक राष्ट्रीय सेमिनार भी किया जा रहा है। भारतीय कृषि परम्परा में पुनः वैदिक कृषि विज्ञान का विकास हो रहा है। इस प्रकार के पहल से लोगों में जागरूकता बढ़ेगी। इसी आशा से चूड़ामणि संस्कृत संस्थान के उज्ज्वल भविष्य एवं स्मारिका के प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

सादर

बी. के. सिंह

शेर-ए-कश्मीर
कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू

प्रो. जे.पी. शर्मा
पी.एच.डी. आई.आई.टी., दिल्ली
कुलपति

संदेश

भारतीय कृषि विज्ञान दुनिया मे सबसे पुरातन है। इसके लिखित साक्ष्य कई ग्रंथों में उपलब्ध हैं। पुरातन कृषि विज्ञान के सिध्दांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने हजारों वर्ष पहले थे। जहाँ पाराशर ऋषि ने कृषि की बारीकियों जैसे सही समय पर बीज रोपण, सिंचाई इत्यादि को अपने ग्रंथों में उल्लेख किया है वहीं आचार्य चाणक्य जो अर्थशास्त्र के महान ज्ञाता थे उन्होंने कृषि उत्पादों और पशु धन प्रबंधन पर जो नियम बनाए थे वे आज भी कारगर हैं। पुराने समय में जब आधुनिक तकनीकों का प्रचलन नहीं था, उस समय मौसम अथवा नक्षत्र आधारित भविष्यवाणियां सटीक होती थीं, जो अनुभवी लोगों द्वारा समय-समय पर की जाती थीं।

अकबर के समय के महाकवि घाघ ऐसे ही अनुभवी कवियों में माने जाते हैं । चाहे बैल खरीदना हो या खेत जोतना, बीज बोना हो अथवा फसल काटना हो, घाघ की कहावतें उनका पथ प्रदर्शन करती थीं। ये कहावतें मौखिक रूप में भारत भर में प्रचलित हैं। सदियों पहले न टीवी-रेडियो थे, न सरकारी मौसम विभाग। ऐसे समय में महान किसान कवि घाघ व भड्डरी की कहावतें खेतिहर समाज का पीढियों से पथप्रदर्शन करती आयी हैं। वैदिक विज्ञान में कृषि की संकल्पना एक चक्र के रूप में दिखाई गई है। इसमें कृषि और पशुपालन को बराबर का महत्व दिया गया है। इस चक्र में भूमि, पशु और मनुष्य तीनों एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते थे और इन तीनों से यह कृषि चक्र पूरा होता था। आज हम टिकाऊ खेती, प्राकृतिक खेती, सहज खेती और जैविक खेती की बात करते हैं जो हजारों वर्षों से भारत की परंपरा रही है। अपनी इसी परंपरा के महत्व को आगे बढ़ाते हुए शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञानं एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू तथा केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जम्मू, श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान न्यास, जम्मू द्वारा संयुक्त रूप से "प्राकृतिक, वैदिक एवं जैविक खेती : ग्रामीण उद्यमिता का नया स्वरुप"" विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन चूणामणि संस्कृत संस्थान विश्वस्थ्ली बसोहली, कठुआ में आयाजित हो रहा है। इस अवसर पर विभिन्न कृषि विशेषज्ञों द्वारा संकलित शोधपत्रों, आलेखों एवं विचारों को संकलन करके स्मारिका के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है इसके लिए मै सभी आयोजको एवं लेखकों को बधाई देता हूँ साथ ही एक दिवसीय सम्मेलन के सफल आयोजन के लिए शुभकामनाएं देता हूँ ।

जे. पी. शर्मा
कुलपति

SKUAST Jammu

चट्टा. जम्म. जम्म-कश्मीर 180 009. भारत

Tel: +91-191-2263714, Fax: +91-191-2262073
E-mail: vc@skuast.org, vcskuastjammu@gmail.com
Visit us at: www.skuast.org

शेर-ए-कश्मीर
कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू
विस्तार निदेशालय

संदेश

भारतीय कृषि, भोजन की कमी से आत्मनिर्भरता और अब एक खाद्य प्रचुर देश के रूप में आगे बढ़ रही है। शुरुआत में अन्नाज की कमी को पूरा करने तथा उत्पादन बढाने के लिए बहुत अधिक मात्रा में उर्वरकों का उपयोग किया गया और जो एक कृषि प्रणाली में परिवर्तित हो गया तथा खाद्य दक्षता प्राप्त करने के लिए, किसानों को विभिन्न उर्वरकों, कीट्नाशकों तथा खरपतवार नाशकों का उपयोग करने के लिए निर्देशित किया गया था।

रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों का अधिक उपयोग अब चुनौतियां उत्पन्न कर रहा है और मानव स्वास्थ्य तथा स्थायी कृषि विकास को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। इसे ध्यान में रखते हुए, कृषक समुदाय के बीच जैविक और प्राकृतिक खेती की प्रथाओं को बढ़ावा देना और पुनर्जीवित करना आवश्यक है। प्राकृतिक और जैविक खेती को पारंपरिक कृषि पद्धतियों में रासायनिक कीटनाशकों और सिंथेटिक उर्वरकों के उपयोग से उत्पन्न पारिस्थितिक क्षति की प्रतिक्रिया के रूप में उपयोग किया जा सकता है यह विभिन्न शोध कार्यों से सिद्ध किया गया है और इसके विभिन्न जैविक फायदे हैं।

मैं शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू और चूडामणि संस्कृत संस्थान बसोहली कठुआ के सहयोग से "प्राकृतिक, वैदिक एवंम जैविक खेती : ग्रामीण उद्यमिता का नया स्वरुप"" विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन के आयोजन के प्रयासों की सराहना करता हूं और इस संयुक्त प्रयास के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

18/01/2022

डॉ एस.के.गुप्ता
निदेशक विस्तार

SKUAST Jammu
Directorate of Extension
Chatha, J & K 180009 INDIA
Email: direxttskuastj@gmail.com
Visit us at: www.skuast.org

प्रो. मदन मोहन झा
निदेशक
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
श्रीरणवीरपरिसरः,
कोट-भलवालः, जम्मूः -181122
संसदः अधिनियमेन स्थापितः
(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, मानितविश्वविद्यालयः)
भारतसर्वकारशिक्षामन्त्रालयाधीनः

Prof. Madan Mohan Jha
Director
CENTRAL SANSKRIT UNIVERSITY
Shri Ranbir Campus,
Kot-Bhalwal, Jammu-181122
Established by an Act of Parliament
(Formerly Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Deemed to be University)
Under Ministry of Education, Govt. of India

क्रमांक
No. **CSU/DIR/2021-22/007**

14.04.2021

शुभकामना सन्देश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आचार्य डॉ. उत्तम चन्द शास्त्री जी के द्वारा स्थापित **चूडामणि संस्कृत संस्थान, विश्वस्थली** अपने स्थापना दिवस के अवसर पर **केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर जम्मू, शेर-ए-कश्मीर कृषि प्रौद्यौगिकी विश्वविद्यालय जम्मू** तथा **कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान जम्मू** के संयुक्त तत्त्वावधान में विविध शास्त्रीय कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है तथा **वैदिक कृषि पर राष्ट्रीय सम्मेलन** भी कर रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन हो रहा है। जिसके लिए संस्थान को अनेकशः शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

वास्तव में आचार्य अभिनवगुप्त की कार्यस्थली जम्मू-कश्मीर में संस्कृत और वैदिक संस्कृत के प्रचार-प्रसार हेतु आचार्य डॉ. उत्तम चन्द्र शास्त्री जी का तथा उनके द्वारा स्थापित चूडामणि संस्कृत संस्थान महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। आशा करता हूँ कि जम्मू कश्मीर के प्रत्येक व्यक्ति तक भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार इस तरह के आयोजनों से अवश्य ही होगा। साथ ही आदरणीय शास्त्री जी का स्वप्न भी साकार होंगे।

प्रो.मदन मोहन झा
निदेशक

श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान ट्रस्ट (रजि.)

कार्यालय पता मकान नं.107 रायपुर बनतालाब जम्मू कश्मीर-181123

अध्यक्ष

महंत रोहित शास्त्री (फलित ज्योतिषाचार्य)

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता है कि चूड़ामणि संस्कृत संस्थान द्वारा 15/01/2022 को अपना स्थापना दिवस मनाया जा रहा है तथा स्मारिका का प्रकाशन कराया जा रहा है | चूड़ामणि संस्कृत संस्थान के संस्थापक स्वर्गीय डा. उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी एवं उनके परिवार का संस्कृत भाषा के संवर्धन व विकास हेतु अमूल्य योगदान समग्र भारत में विदित है। भारत राष्ट्र में संस्कृत भाषा को अग्रसर करने में स्वर्गीय डॉ.उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी का समर्पण सुप्रसिद्ध है। इनसे पढ़े हुए छात्र आज प्रदेश सरकार एवं केंद्र सरकार में उच्च पदों पर आसीन हैं। युवा पीढ़ी भी स्वर्गीय डॉ उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी का अनुसरण कर प्रदेश व राष्ट्र के संस्कृति-संरक्षण में अपना योगदान दे रहे हैं।

भारतीय संस्कृति, ज्ञान और संस्करों का आधार देववाणी संस्कृत है तथा यह 'स्मारिका' युवा पीढ़ी को देववाणी संस्कृत से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य करेगी।

मुझे आशा है कि 'स्मारिका' सभी संस्कृत प्रेमियों को एक साथ जोड़ते हुए देववाणी संस्कृत की लोकप्रियता को बड़ाने में इसी ऊर्जा और उत्साह के साथ दर्शकों तक निरंतर पहुँचती रहेगी।

'स्मारिका' के प्रकाशन के शुभ अवसर पर चूड़ामणि संस्कृत गुरुकुल के संचालक श्रीमान् शक्ति पाठक जी, गुरुकुल के प्राचार्य अभिषेक जी एवं स्थापना दिवस आयोजन समिति के सभी सदस्यों को हार्दिक शुभकामनाएँ व बधाई।

महंत रोहित शास्त्री

महंत रोहित शास्त्री

पौष शुक्ल पक्ष प्रतिपदा

वि.संवत् 2078

03 जनवरी, 2022

मोबाईल : 9858293195, 9796293195, 7006711011 | ई मेल - rohitshastri.shastri1@gmail.com

श्री शक्ति कुमार पाठक
मुख्यन्यासी चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास।

सम्पादकीय

जम्मू कश्मीर जो संस्कृत वाङ्मय के उत्कृष्ट केन्द्रों में रहा हैं कालान्तर में हुई उपेक्षाओं के कारण रिक्तता को प्राप्त हुआ। विश्वस्थली में उस रिक्तता को भरने के प्रयास में प्रारम्भ किया गया चूड़ामणि संस्कृत संस्थान शोभायमान भविष्य की प्रतीति है। चूड़ामणि संस्कृत संस्थान अपने स्थापना के अल्पकाल में ही ख्यात शैक्षणिक संस्थाओं, जम्मू के कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर कोट भलवाल तथा श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान ट्रस्ट के संयुक्त तत्वावधान में यह जो आयोजन एवं स्मारिका प्रकाशन हेतु संकलन का काम कर रहा है वह मां सरस्वती का समवेत अर्चन है ।

संस्कृत केवल कर्मकाण्ड की नही अपितु ज्ञान-विज्ञान की भी भाषा है। इसको प्रमाणित करते शोधपत्र जिन्हें कृषि वैज्ञानिकों, संस्कृत विद्वानों एवं शोधार्थियों द्वारा लिखा गया है इस स्मारिका की चिर स्मरणीय विषय वस्तु बनकर संस्कृत वाङ्मय के प्रेमियों के लिए भी स्नेह का आकर्षण बनेंगें।

अग्नि और चक्र इन प्रथम दो अविष्कारों के पश्चात् मनुष्य के विकास की गति कृषि की ओर ही अग्रसर हुई थी। मनुष्य जाति को मानवता का स्वरूप देने में कृषि का प्रथम एवं प्रमुख योगदान रहा है। हरित क्रांति के पश्चात् भारत एवं समस्त विश्व में खाद्यान्न समस्या का निवारण तो हुआ परन्तु रासायनिक खादों के उपयोग से न केवल मृदा की उत्पादकता घटी है अपितु कई व्याधियों ने हमें ग्रसित कर लिया । उपभोगवाद की संस्कृति का अनुसरण करते-करते कई व्याधियां, ग्लोबल वार्मिंग जैसी आपदाओं से घिरा पाश्चात्य समाज जब जैविक कृषि की ओर मुड़ना शुरू हुआ तो वेदों में निहित ज्ञान वैदिक कृषि का स्वाभाविक आकर्षण का केन्द्र बन गया। आज कृषि क्षेत्र में जैविक एवं वैदिक कृषि पर नित नवीन शोधकार्य एवं उनका क्रियान्वयन में वैदिक ज्ञान आज के समय में उपयोगिता का प्रमाण बन गया है।

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' अथर्ववेद का यह मंत्र पृथ्वी के प्रति संवेदन शील रहते हुए उसके समुचित दोहन का स्मरण कराता है । ईशावास्योंपनिषद भी कहता है कि

ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुञ्जिथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥

इस सूत्र का पालन करने से निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि न तो कभी खाद्यान्न की कमी हो पाएगी न मृदा की उर्वरता नष्ट होगी और न ही व्याधियों के साथ- साथ ग्लोबल वार्मिंग जैसी अंधकारमय आपदाओं की चिन्ता रहेगी।

प्रो. जे.पी. शर्मा मा. कुलपति जी के लेख में शिवयोग कृषि, अग्निहोत्र कृषि एवं शांभवी साधना आदि का उल्लेख इन्ही पूर्व अविष्कारों का पुनः स्थापना की दिशा में एक प्रयास है। एशियन एग्री हिस्ट्री फाउंडेशन की कार्यकारी सचिव डॉ. सुनीता टी. पाण्डेय भी भारत के वृक्ष, आयुर्वेद आधारित कृषि की प्राचीन परम्परा को वर्तमान में वैज्ञानिक आधार पर लोक प्रचलित एवं स्थापित करती दिखती है।

निकट भविष्य में भी शेर-ए-कश्मीर कृषिविज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू एवं केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय श्री रणवीर परिसर कोट भलवाल जम्मू जैसे शैक्षणिक संस्थान सामूहिक रूप से हमारे वैदिक एवं धर्म ग्रन्थों में लिखे सूत्रों पर शोधकार्य कर लोक कल्याण के लिए करें । इसी कामना से जम्मू कश्मीर के उप राज्यपाल महोदय, मा. श्री मनोज सिन्हा जी ने भी अपने सन्देश में शुभकामनाओं के साथ आशाएं व्यक्त की है कि संस्कृत वाङ्मय अतीत में भी ज्ञान का श्रोत रहा है भविष्य में भी बना रहे इसके लिए चूड़ामणि संस्कृत संस्थान अपने सभी न्यासियों, सहयोगियों, शिक्षकों आदि के अनवरत प्रयास से अपने संकल्पित उद्देश्य ***सुपथा करत*** में लगा रहेगा।

अभिषेक कुमार उपाध्याय

आचार्य अभिषेक कुमार उपाध्याय

प्राचार्य, चूड़ामणि संस्कृत संस्थान,
विश्वस्थली (बसोहली)कठुआ, जम्मूकश्मीर-
सम्पर्क सूत्र 9454181691 -

प्रस्तावना

आध्यात्मिक चिंतन मनन की तपो भूमि जम्मू कश्मीर वैदिककाल से ही भारतीय दर्शन, धर्म एवं संस्कृति का प्रमुख केंद्र रहा है । यह प्रदेश हमारे राष्ट्र का सिरमौर है । एक ओर यह प्रकृति और पुरुष की अनुपम लीला की रंगभूमि है तो दूसरी मां शारदा के स्वच्छंद विहार की स्थली है । यहाँ की प्राकृतिक सुषमा कवियों, दार्शनिकों एवं आचार्यों के लिए प्रेरणा का स्वाभाविक स्त्रोत है । इसकी प्रसादपूर्ण सुन्दरता और इसका शैत्य एवं पावनत्व सम्पन्न लहलहाता हुआ आंचल नित नवीन उदभावनाओं का शाश्वत केंद्र है जिसने एक से एक महान दार्शनिकों, आचार्यों और कवियों को समान रूप से विकास का अवसर प्रदान किया है । संस्कृत वांग्मय वाङमय के महत्वपूर्ण ग्रंथों जैसे महाभारत, हरिवंश पुराण आदि में इस प्रदेश को उत्कृष्ट तीर्थ बताया गया है । ज्ञान की पराकाष्टा की बात करें तो संस्कृत साहित्य ने तो इसे शारदा देश (सरस्वती देश) जैसी आख्याओं से भी सम्बोधित किया है । महाकवि हर्ष ने अपने ग्रन्थ नैषधचरितम में इसे चौदह विद्याओं का पीठ भी कहा है । शैवदर्शन जैसे महत दार्शनिक तत्वज्ञान की उदगमस्थली होने का गौरव भी इसी पुण्य भूमि को मिला है साथ ही साहित्य और अलंकार शास्त्र के जन्म दाता भी इसी स्थान की देन हैं । अलंकारवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद, वक्रोक्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद, अभिव्यक्तिवाद और औचित्यवाद आदि वादों का उदय भी इसी स्वर्णिम क्षेत्र में हुआ । गम्भीरता से विचार किया जाए तो काव्य शास्त्र एवं दर्शन शास्त्र को जो इस भूमि ने दिया समस्त विश्व शताब्दियों के चिंतन और मनन के बाद भी नही पा सका । महामाहेश्वर आचार्य अभिनव गुप्त कश्मीर की देव भूमि पर अवतरित यहां की रचनाधर्मिता के समुज्ज्वल आकाश के सर्वाधिक देदीप्यमान नक्षत्र दर्शन, साहित्य और संगीत के क्षेत्र में एक साथ अद्भुत सारस्वत अवदान के प्रस्तावक विलक्षण प्रज्ञापुरुष शैव दर्शन के परम सिद्ध युगपुरुष रस चिन्तन के मूर्धन्य समीक्षक और कविर्मनीष इसी पावन पवित्र भूमि की उपज है । इसी क्रम में कठुआ जनपद के विश्वस्थली नगरी में स्वनाम धन्य अपने पूर्वजों की समृद्ध ज्ञानपरम्परा को आगे बढ़ाने वाले स्वर्गीय डह. पण्डित उत्तम चंद पाठक शास्त्री जी का अवतरण भी इसी पावन भूमि पर हुआ । संस्कृत भाषा के सम्यक प्रचार प्रसार के लिए सन २००३ में ही शास्त्री जी द्वारा चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास की स्थापना कर विश्वस्थली सहित पूरे प्रदेश में संस्कृति, संस्कार और संस्कृत के संरक्षण व संवर्धन के लिए एक भागीरथ प्रयास किया गया । शास्त्री जी लाहौर से प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर उच्च शिक्षा के लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय चले गए वहा से कुशल निर्देशन में सांख्य योग जैसे गंभीर विषय में विद्यावारिधि(पीएचडी) करके वही पर अध्यापक के रूप में नियुक्त हो गए । शास्त्री जी अपने अवकाश एवं प्रत्येक रविवार को विश्वस्थली आ जाते थे गीता, विष्णुसहस्त्रनाम एवं सरल संस्कृत जैसे महत्वपूर्ण विषयों का अध्यापन करवाते रहे । उनका संकल्प था कि भारतीय प्राच्य विद्या के अध्यापन हेतु एक समृद्ध पाठशालध्गुरुकुल होना चाहिए इसके लिए उन्होंने लगातार कई संस्थाओं के माध्यम से इस दिशा में सहयोग के लिए आग्रह भी किया लेकिन समय रहते किसी का सहयोग उन्हें नही प्राप्त हो सका । इसी क्रम में सन २०१९ में संस्कृत जगत के सबसे प्राच्य संस्था संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से संबद्धता हेतु आवेदन किया गया एक साल में ही बहुत परिश्रम के बाद सन २०२० में संबद्धता प्राप्त हो गई । भले ही इस मंगल क्षण के साक्षी शास्त्री जी नही बन सके ।

अपने पूजनीय पिताश्री के सत्य संकल्प को पूर्ण करने के लिए उनके सुपुत्र श्री शक्ति कुमार पाठक जी, मुख्य न्यासी चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास एवं मुख्य सुरक्षा निर्देशक मा. उप राज्यपाल महोदय, ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया

। उनके इस महनीय संकल्प में सहयोग के लिए कई सज्जनों के साथ मिले, जिसमें मुख्य रूप से जम्मू कश्मीर अध्ययन केंद्र के निर्देशक श्री आशुतोष भटनागर जी ने प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल जी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमति कुसुम शुक्ल जी के माध्यम से विपिन जी के प्रयास से आचार्य अभिषेक कुमार उपाध्याय जैसे एक संस्कृत के प्रति समर्पित निष्ठा भाव से सेवा करने वाले योग्य संस्कृतरत्न की आवश्यक खोज को पूर्ण किया । जिसके परिणाम स्वरूप आज चूड़ामणि संस्कृत संस्थान विश्वस्थली नगर के युग पुरुष स्वर्गीय डह. पण्डित उत्तम चंद पाठक शास्त्री जी की जीवन यात्रा में हुए अनेकानेक संकल्पों में से एक प्रमुख प्रकल्प को लेकर आगे बढ़ रहा है । चूड़ामणि संस्कृत संस्थान का सात्विक विकास सभी दिशाओं में हो सके के लिए निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले सहयोगियों द्वारा निरन्तर प्रयास किया जा रहा है ।

पृष्टभूमि

भारतीय ज्ञान परम्परा में आगम (वैष्णव, शैव और शाक्त) वास्तुकला,ज्योतिष के साथ-साथ खगोल विज्ञान, ब्रह्मांड, चिकित्सा, शल्यचिकित्सा, पशुचिकित्सा, योग गणित, कृषिविज्ञान, धातुविज्ञान जैसे अनेक विषयों पर विशाल साहित्य का सृजन हुआ है जिसकी आधारभूत सामाग्री वैदिक चिन्तन के सतात्य में विकसित हुई है । सबसे रोचक तथ्य यह कि पश्चिम देशों में जब मूलभूत सिद्धांतों को समझने के प्रयास हो रहे थे, उससे सदियों पूर्व हमारे प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अपने विषय में अत्यधिक उत्कृष्टता प्राप्त कर ली थी । हमारे प्राच्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ज्ञान के उपयोग एवं प्रसार से सम्बन्धित अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं । वैज्ञानिकों, गणितज्ञों एवं चिकित्सकों का विश्व समुदाय भारतीय ऋषि परम्परा, बौधायन, आपस्तम्भ एवं कात्यायन जैसे प्रवचनकारों, भरत मुनि जैसे पंचम वेद के प्रणेता, दत्तिल एवं मतंग मुनि जैसे संगीतज्ञों के योगदान के साथ सुश्रुत एवं चरक जैसे आयुर्वेद के प्रणेता के योगदान से भली भांति परिचित हैं । भारत को केवल ज्ञान विज्ञान में ही नही बल्कि तकनीकी के क्षेत्र में भी विश्वगुरु होने का गौरव प्राप्त हैं । जिसका समकालिक उदाहरण से आप समझ सकते है कि आज नाशा जैसे स्थान पर वैज्ञानिकों के साथ धर्मशास्त्रियों की भी नियुक्ति हो रही हैं।

संस्थान की स्थापना का औचित्य

यह सर्वविदित है कि हमारे राष्ट्र की गौरवशाली बौद्धिक परम्परा रही है । वर्तमान से कुछ वर्ष पूर्व से राष्ट्र में प्रचलित शिक्षा प्रणाली हम सबको अपनी जड़ों, परम्पराओं, संस्कृति, सभ्यता और विज्ञान के बारे में जानने के लिए प्रोत्साहित करने में पूरी तरह से सफल नही रही है। हमारा पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक पूर्ण रूप से पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हो चुका है। हमें प्लूटो, न्यूटन और आर्किमिडीज के सिद्धान्तों को तो विस्तार से बताया जा रहा है लेकिन हमें महामुनि वेदव्यास, बौधायन, कणाद, मनु, पतंजलि, चाणक्य, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य जी को नही पढ़ाया जा रहा है क्योंकि आज भारतीय शिक्षा प्रणाली में अधिकांश ग्रन्थ पाश्चात्य केन्द्रित हो गया हैं । जनजागरण के अभाव में सदियों प्राचीन हमारा वास्तविक भारत कितना यशस्वी एवं गौरवशाली रहा है इसका बोध नही हो पाया । यद्यपि ज्योतिष एवं आयुर्वेद के क्षेत्र में बहुत से प्रशंसनीय कार्य हुए है । समाज में संस्कृत, संस्कृति और संस्कार सदैव बना रहे के लिए शास्त्री जी ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया । उन्होंने प्रत्येक वर्ग के गरीब एवं असहाय विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क शिक्षण, आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था उपलब्ध करने के संकल्प से संस्थान स्थापना का संकल्प लिया जो आज भी निरंतर अपने प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा है । शास्त्री जी ने कर्मकांड प्रशिक्षण शिविर, ज्योतिष आयुर्वेद चिकित्सा संबंधी प्रशिक्षण के साथ ही सरल संस्कृत के माध्यम से समाज को शिक्षा के साथ जोड़ने का एक सफल प्रयास किया ।

उद्देश्य

आधुनिकता के दौर में जनमानस आज अपनी संस्कृति, संस्कार और संस्कृत से दूर हो गया है जिसके परिणाम स्वरूप कई प्रकार के परिवर्तन हुए है । इस अवकाश को भरने के लिए आज समाज के सभी बुद्धिजीवी वर्ग को आगे आने की आवश्यकता है जिससे अपनी परम्परा संरक्षित हो सके । हमारी समृद्ध ज्ञान परंपरा में निहित ज्ञान का आज क्षरण हो रहा है जो भविष्य के लिए समस्या हो सकती है इसी दूरदर्शी दृष्टि के आधार पर शास्त्री जी ने विश्वस्थली नगर में संस्कृत संस्थान की स्थापना का संकल्प लिया, समृद्ध भारतीय प्राच्य ज्ञान परंपरा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना एवं समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जोड़ना । खासकर उन लोगों को जिन्हे अभी तक इसका रसास्वाद नही हो पाया हो उन्हें प्राथमिक स्तर पर लाभ देना । इस योजना में एक बात विशेष है चूंकि यह संकल्प उस पराकाष्ठा की स्थिति में लिया गया है कि सभी व्यवस्था को निःशुल्क रूप में संचालित करना है जब तक की विद्यार्थी के परिवार की स्थिति सामान्य न हो जाए।

संस्थान के कुछ प्रमुख प्रकल्प

१. संस्थान में प्रथमा प्रथम वर्ष से आचार्य कक्षा पर्यन्त विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क रूप में अध्ययन- अध्यापन, भोजन, छात्रावास एवं समृद्ध पुस्तकालय से वैदिक विषय से सम्बंधित पाठ्य पुस्तकों को उपलब्ध करवाना हैं ।

२. संस्थान द्वारा समय समय पर संचालित विविध कार्य योजना के माध्यम से विद्यार्थियों का कौशल विकास करना है ।

३. संस्थान में वेद, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, कर्मकाण्ड, संस्कृत संभाषण एवं गीता के साथ आधुनिक विषयों में भी जैसे हिन्दी, अंग्रेजी, विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान, कंप्यूटर, संगीत एवं चित्रकला के माध्यम से सम्पूर्ण ज्ञान राशि को एक ही स्थान पर सभी आवासीय विद्यार्थियों को उपलब्ध कराना है ।

४. दिवा विद्यार्थियों के लिए पाक्षिकध्मासिक संस्कृत संभाषण शिविर एवं गीता कण्ठपाठ, कर्मकाण्ड प्रशिक्षण शिविर, योग प्रशिक्षण शिविर एवं आध्यात्मिक चिंतन मनन जैसे विविध शैक्षणिक सत्रों के माध्यम से जनमानस को भारतीय समृद्ध ज्ञान परंपरा से अवगत करवाना है ।

५. भारतीय संस्कृति, संस्कार और संस्कृत का ज्ञान सभी को हो सके के लिए अनवरत प्रयास करना एवं जनजागरण के लिए विभिन्न प्रकार के अभियानों के माध्यम से भी प्रयास करना संस्थान का संकल्प है ।

६. संस्थानध्गुरुकुल संचालन का माध्यम जनाधारित व्यवस्था पर आधारित रहना, विना शर्त सरकार के योजनाओं का भी समय समय पर लाभ लेना है ।

भावी योजनाएं

१. चूड़ामणि संस्कृत संस्थान न्यास द्वारा संचालित चूड़ामणि संस्कृत संस्थान को आगे की कक्षा को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए प्राप्त नवीन स्थान पर बड़े स्तर पर भवन निर्माण की योजना है। जहां अध्ययन- अध्यापन, आवास सहित उच्च शिक्षा से संबंधित सभी आवश्यक व्यवस्था उपलब्ध हो सके ।

२. १५ जनवरी २०२२ को स्वर्गीय डह पण्डित उत्तम चंद पाठक शास्त्री जी का ९९ वीं जन्म जयंती है द्य इस अवसर पर संस्थान एवं जम्मू कश्मीर की समृद्ध शैक्षणिक संस्थानों द्वारा एक साथ मिलकर वर्ष भर संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार एवं विस्तार के लिए एक योजना तैयार की जा रही है । आयोजन समिति द्वारा निश्चित इस कार्यक्रम को जम्मू कश्मीर के प्रत्येक जनपद, नगर एवं गांव गांव तक संचालित करने की योजना हैं। जिससे जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर अधिक से अधिक संख्या में लोगों को संस्कृत भाषा से जोड़ा जा सके ।

३. आवश्यकता अनुसार पाक्षिक कर्मकाण्ड प्रशिक्षण शिविरों को भी संचालित करके भारतीय पर्व, उत्सव, त्योहार की जानकारी एवं महत्व को बताना है इसके माध्यम से विविध पूजा पद्धति एवं उसकी विधि को सम्यक रूप से ज्ञात करवाना मुख्य उद्देश्य है।

४. संस्थान का वार्षिक उत्सव एवं स्थापना दिवस के अवसर पर विविध ज्ञान परक सत्रों में देशभर से विद्वानों को आहुत करके उनके ज्ञान राशि से सबको लाभ पहुंचाना संस्थान का विशेषध्मुख्य उद्देश्य है।

५. अक्षय तृतीया जैसे पावन मंगल अवसरों पर सामूहिक रूप में यगोपवित संस्कार जैसे अनुष्ठानों को आयोजित करना है एवं संस्कार और संस्कृति के संरक्षण के लिए जागरूक करना प्रमुख विषय है।

६. समय समय पर सभी महापुरुषों की तिथियों एवं भारतीय उत्सवों को सामूहिक रूप में आयोजित करना हैं ।

७. शास्त्री जी के जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर न्यास द्वारा संस्कृत के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले एक विद्वान को ''डह. पण्डित उत्तम चंद पाठक शास्त्री संस्कृत रत्न सम्मान'' से सम्मानित करना है, जिससे संस्कृत जगत में कार्य करने वाले विद्वानों में जागरूकता बढ़ेगी।

८. डह. पण्डित उत्तम चंद पाठक शास्त्री संस्कृत रत्न सम्मान की घोषणा १५ध०१ध२०२२ को की जायेगी एवं पुरस्कार हेतु आवेदन भी आमंत्रित किए जाएंगे ।

संस्थान की स्थापना से समाज को होने वाले प्रमुख लाभ एक दृष्टि में

विश्वस्थली में चूड़ामणि संस्कृत संस्थान की स्थापना कर भारतीय संस्कृति, संस्कार और संस्कृत को संरक्षित करने का एक सराहनीय कदम उठाया गया हैं शास्त्री जी द्वारा । इसके नियमित संचालन से समाज में संस्कृत भाषा और अपनी संस्कृति के प्रति आदर की भावना जागृत हुए है । निश्चित रूप से यह संस्थान संस्कार के विशेष केंद्र के रूप में उभर रहा है जहां पर संस्कृत संस्थान के साथ अन्य बोर्डधविषय में अध्ययन करने वाले विद्यार्थीयों को भी इसका सम्पूर्ण लाभ मिल रहा हैं ।

जम्मू कश्मीर जैसे प्रदेश में आज मुख्य रूप से ऐसे केंद्र स्थापित करने की आवश्यक है जिससे यह प्रदेश अपने प्राच्य आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक गौरव को प्राप्त कर सकें ।

विषय वस्तु

क्रः संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	**वैदिक कृषि की आवश्यकता एवं विभिन्न विधियाँ : एक संछिप्त विवरण**	**प्रोफेसर जे पी शर्मा[१] एवं सुमति शर्मा[२]** [१]कुलपति, शेर-ए-कश्मीर कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू [२]सी आर डी टी, आई आई टी, नई दिल्ली	1
२.	**प्राकृतिक खेती की अवधारणा**	**पदमश्री बी बी त्यागी**, विशेषज्ञ, जैविक खेती	5
३.	**वृक्षायुर्वेद आधारित टिकाऊ एवं सस्ती जैविक कृषि : एक वृहद् कृषि ज्ञान एवं भारतवर्ष की प्राचीन परंपरा**	**डा. सुनीता टी. पाण्डेय** [१] प्रोफेसर, सस्य विज्ञान विभाग, [२] कार्यकारी सचिव, एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन (एएएचएफ), गो० ब० पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर	6
४.	**स्वर्गीय डा. उत्तम शास्त्री पाठक जी के बिना संस्कृत जगत अधूरा**	**श्री महंत रोहित शास्त्री (ज्योतिषाचार्य)**, अध्यक्ष श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान ट्रस्ट।	16
५.	**वैदिक कृषि – सिद्धांत एवं विज्ञान**	**श्री सुजीत चक्रबर्ती, डा. सुमति नारायण[१] एवं सुश्री आस्था[२]** प्रकृत कृषि तंत्र एल.एल.पी, पुणे (महाराष्ट्र) [१]प्राध्यापक एवं विभाग प्रमुख, सब्जी विज्ञान विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, श्रीनगर [२]स्नातकोत्तर विद्यार्थी, फल विज्ञान, सैम हिगिनबोटोम कृषि, विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, प्रयागराज	17
६.	**प्राचीन भारतीय पारंपरिक पशुपालन एवं पशुचिकित्सा का महत्व**	**नीलेश शर्मा[१], संदीप कौर एवं सवलीन कौर** पशु औषधि विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	21
७.	**प्राकृतिक खेती अपनाएंः स्वस्थ्य खाद्य श्रृंखला और खाद्य सुरक्षा सुनीश्चित करने में अपनी भागेदारी बढ़ाये**	**आनंद कुमार पाठक, नीलेश शर्मा, आर. के. शर्मा, प्रणव कुमार, एन. के. पंकज एवं प्रेम कुमार[१]** पशु चिकित्सा एवं पशु पालन संकाय, [१]कृषि विज्ञान केंद्र शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	25
८.	**गौ आधारित परम्परागत कृषि पद्धति**	**ब्रह्म कुमारी संस्था जम्मू**	29
९.	**सहज कृषि – किसानों के लिए वरदान**	**भव कुमार सिन्हा, रीना, गुरदेव चंद, परमिंद्र कुमार, प्रदीप कुमार कुमावत, नवीन कुमार** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	31
१०.	**भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग का दायरा और मानक**	**प्रणव कुमार, प्रहलाद एस सलाथिया, प्रेम कुमार, ए के पाठक और मनिंदर सिंह** पशु चिकित्सा एवं पशु पालन संकाय, कृषि संकाय ,[१]कृषि विज्ञान केंद्र शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	34
११.	**कम लागत मे पर्यावरण के अनुकूल टिकाऊ कृषि तकनीकें**	**आर. पुनिया, बी. सी. शर्मा, विकास शर्मा, बी. आर. बजाया और अंकित** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	40
१२.	**नक्षत्र वाटिका – धार्मिक और वैज्ञानिक महत्व**	**एल.एम. गुप्ता, मीनाक्षी गुप्ता, पुनीत चौधरी[१] और कुलदीप जोशी** कृषि वानिकी विभाग, कृषि संकाय, [१] कृषि विज्ञान केंद्र, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	44
१३.	**प्राकृतिक खेती का प्रमाणन, विपणन एवं संवर्धन**	**राकेश शर्मा, पवन कुमार शर्मा और सुमति शर्मा[१]** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू [१]सी आर डी टी, आई आई टी, नई दिल्ली	51
१४.	**वर्मी कम्पोस्ट- काला सोना**	**बलबीर धोत्रा और विकास शर्मा** ओ.एफ.आर.सी., कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू ,	54

१५.	**वैदिक खेती में कृषि तकनीक, उपकरण और सिंचाई की पद्धति का उपयोग**	**सुष्मिता एम. दधीच, जे. पी. शर्मा[१] और आर. के. श्रीवास्तव** कृषि अभियांत्रिकी विभाग, कृषि संकाय, [१]कुलपति, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**56**
१६.	**पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली, पशुधन और किसान की आय के परिप्रेक्ष्य में**	**नृप किशोर पंकज[१], नीलेश शर्मा[२],ए.के. पाठक[३] और पी. के. वर्मा[१]** [१]पशु चिकित्सा भैषज एवं विष विज्ञान विभाग, [२] पशु चिकित्सा विभाग, [३]पशु पोषण विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान और पशुपालन संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**61**
१७.	**कृषि एवं महाकवि घाघ**	**प्रदीप कुमार राय, विनोद गुप्ता, उमा शंकर एवं सुधाकर दिवेदी** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और जम्मू प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**68**
१८.	**भारत-पाक अंतरराष्ट्रीय सीमा पर आजीविका और पर्यावरण को बनाए रखने के लिए श्री स्वर्ण लाल और साथी किसानों की केस स्टडी**	**पुनीत चौधरी, राकेश शर्मा और प्रेम कुमार** कृषि विज्ञान केंद्र, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**74**
१९.	**जैविक खेती - जलवायु संरक्षण के लिए जरुरी**	**नरिंदर पनोत्रा, विकास शर्मा, रितिका गुप्ता, मीनाक्षी अत्री और ज्योति शर्मा** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**76**
२०.	**वैदिक कृषि का स्वरूप**	**सुधाकर द्विवेदी और प्रदीप राय** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**78**
२१.	**जम्मू और कश्मीर में बागवानी की स्थिति - एक आर्थिक परिपेक्ष्य**	**अमित जसरोटिया, आरती शर्मा, राकेश शर्मा अनिल भट्ट और दीप जी भट्ट** कृषि संकाय, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	80
२२.	**वैदिक खेती - कृषि विज्ञान और वैदिक विज्ञान से कृषि उत्पादकता और पर्यावरण संरक्षण में स्माव्यतता**	**दिक्षा एवंम शौर्या शर्मा और सुधाकर द्विवेदी** शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**83**
२३.	**शून्य बजट प्राकृतिक खेती से अधिक लाभ**	**प्रदीप कुमार कुमावत, रीना, तालीम, रंजना बाली एवं पुष्पेंद्र कुमार यादव,** कीट विज्ञान विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू	**85**
२४.	**जीवामृत – एक जैविक खाद**	**शुभम जम्वाल एवं आर. पुनिया,** शस्य विज्ञान विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू,	**89**
२५.	**आढकीशस्योत्पादने कृषिपाराशरग्रन्थकृषिविज्ञानसम्मतयोः प्रायोगिकाध्ययनम**	**नवीन तिवारी,** सहायकाचार्यः, ज्योतिषविभागः केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः श्रीरणवीरपरिसरः, जम्मू	**90**
२६.	**ज्यौतिषे वृष्टेःपूर्वानुमानम**	**संतोष गोडरा,** प्राध्यापिका, शिक्षाशास्त्रविभाग केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः,श्रीरणबीरपरिसरः जम्मू	**97**
२७.	**ऋग्वेद संहितायां कृषि विधिः तत्साधनानि च**	**ज्योति कुमारी**, शोधच्छात्रा, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालयः, नव देहली	**101**
२८.	**वैदिक कृषिः (नक्षत्रादि आधारेषु कृषिः व्यवस्था)**	**सतीश नौटियालः,** शोधच्छात्रः, साहित्यविभागः, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नव देहली	**104**
२९.	**आधुनिकप्रसङ्गे ऋग्वेदसंहितायां सिञ्चनसाधनानि**	**अभिषेक कुमार उपाध्याय**, शोधच्छात्रः, सर्वदर्शन विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**107**
३०.	**वैदिककृषिव्यवस्थाप्रकाशनम्**	**तेज प्रकाशः,** शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः दिल्ली विश्वविद्यालयः, दिल्ली	**110**
३१.	**शेर -ए - कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों तथा छात्र छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किये गए पोस्टर की सूची**		**113**

१. वैदिक कृषि की आवश्यकता एवं विभिन्न विधियाँ : एक संछिप्त विवरण

प्रोफेसर जे. पी. शर्मा* और सुमति शर्मा

*कुलपति, शेर-ए-कश्मीर कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू

भारत शुरू से ही कृषि प्रधान देश रहा है परन्तु कोई नहीं जानता की यह कब क्यों और कैसे प्रमुख व्यवसाय बना। यहाँ खेती को उत्तम माना गया था और खेती एक विज्ञान के रूप में विकसित हुई। ऐतिहासिक साक्ष्य यह साबित करते हैं कि देहाती लोगों या यहां तक कि अर्ध-जंगली लोगों के बीच, किसी न किसी रूप में कृषि को किया जाता रहा है। ब्रिटिश शासनकाल में खाद्यान्न के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक फसलों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने तथा उसके बाद जनसंख्या में बढोतरी के कारण एक समय देश को खाद्यान्न की कमी से भी गुजरना पड़ा जिसने हरित क्रांति को जन्म दिया और देश ने खाद्यान्न उत्पादन में अत्यधिक तरक्की की है ।

केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने २०२१-२२ के लिए मुख्य खरीफ फसलों के उत्पादन का प्रथम अग्रिम अनुमान जारी किया है। मंत्रालय ने खरीफ सीजन में १५०.५० मिलियन टन रिकार्ड खाद्यान्न उत्पादन का अनुमान जताया है। इस दौरान चावल का कुल उत्पादन १०७.०४ मिलियन टन अनुमानित है। यह विगत पांच वर्षों(२०१५-१६ से २०१९-२०) के औसत उत्पादन ९७.८३ मिलियन टन की तुलना में ९.२१ मिलियन टन अधिक है। पोषक मोटे अनाज का उत्पादन ३४ मिलियन टन होगा, जो कि ३१.८९ मिलियन टन औसत उत्पादन की तुलना में २.११ मिलियन टन अधिक है। कुल दलहन उत्पादन ९.४५ मिलियन टन अनुमानित है। यह ८.०६ मिलियन टन औसत खरीफ दलहन उत्पादन की तुलना में १.३९ मिलियन टन अधिक है। २०२१-२२ के दौरान देश में कुल तिलहन उत्पादन २३.३९ मिलियन टन अनुमानित है जो कि २०.४२ मिलियन टन औसत तिलहन उत्पादन की तुलना में २.९६ मिलियन टन अधिक है। तथा देश में गन्ने का उत्पादन ४१९.२५ मिलियन टन अनुमानित है।२०२१-२२ के दौरान गन्ने का उत्पादन,३६२.०७ मिलियन टन औसत गन्ना उत्पादन की तुलना में ५७.१८ मिलियन टन अधिक है।

नीति आयोग द्वारा २०२०-२१ अनुमानित खाद्यान्न की मांग और घरेलू उत्पादन में अंतर भी इसको पूरी तरह से सिद्ध करता हैः

फसलें	धान	गेहूं	अनाज	दालें
अनुमानित आवश्यकता (मिलियन टन)	१०७.०८	९४.४५	२४४.८९	२६.६४
उत्पादन (मिलियन टन)	११८.४३	१०७.५९	२७३.५०	२३.१५

यह उपलब्धियां अपने साथ समस्याएं भी लाई हैं। हरित क्रांति में संकर बीज किस्मों, रासायनिक उर्वरकों, नई तकनीक व मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया। रासायनिक, उर्वरकों जैसे यूरिया, डीएपी, कीटाणुनाशक तथा खरपतवार नाशक दवा का अत्यधिक उपयोग करने से मिट्टी की स्वाभाविक उर्वरा शक्ति में कमी हुई तथा बड़ी मात्रा में कृषि भूमि बंजर हो गई, हमारे परंपरागत बीज लुप्त हो गए तथा संकर बीजों पर निर्भरता बढ़ गई। उपज तो अच्छी प्राप्त हुई लेकिन रसायनों का दुष्प्रभाव मनुष्यों और जानवरों पर जब देखा गया तो किसानों एवं कृषि वैज्ञानिकों का विचार पुनः बदला और पुराने पथ पर जाने को मजबूर किया। खाद्य पदार्थों में कैडमियम तथा शीशा एवं अन्य अवांछित तत्वों की मात्रा अनुपात से अधिक पाई गई जिसे कैंसर जैसे रोगों का मुख्य कारक माना गया। संचित जल में भी हानिकारक तत्वों की मात्रा अधिक पाई गई। गांवों, कस्बों का जलाशय इन रसायनों के द्वारा प्रदूषित हुआ जिसने पालतू जानवरों के साथ जलीय पौधों एवं मछलियों को प्रभावित करते हुए खाद्य चक्र के माध्यम से मनुष्यों में पहुंच कर अनेक व्याधियों को जन्म दिया। कीटनाशक दवाओं का अनुचित प्रयोग, भूमि पर औद्योगिक कचरे, कूड़ा कर्कट तथा मल-मूत्र का अनुचित रीति से विसर्जन करना, अनुचित रीति से भूमि से वृक्षों और वनों को काटना धरती तथा मानव समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ ।

औद्योगिक क्रान्ति तथा आधुनिक विलासिता पूर्ण सभ्यता ने मानव जीवन के लिये अन्य गम्भीर खतरें उत्पन्न कर दियें है। बढ़ते पर्यावरणीय प्रदूषण का सबसे अधिक गम्भीर स्वरूप हमें ग्लोबल वार्मिंग के रूप में दिखाई पड़ता है। जिस तरीके से आज नगरीकरण, विस्थापतीकरण तथा तकनीकी एवं औद्योगिक विकास हो रहा है, उससे पूरा परिस्थितीकीय पर्यावरण बिगड़ता जा रहा है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, परमाणु प्रदूषण, रेडियाधर्मी प्रदूषण आदि ने मानव जीवन के लिए आवश्यक आक्सीजन तक को प्रदूषित कर दिया है। कृषि वैज्ञानिक मानते हैं कि खेतों में कार्बन समेत अन्य माइक्रो पोषक तत्वों की कमी हो गई है। आजकल के रासायनिक खाद से यद्यपि धान्य अधिक मात्रा में पैदा होता है परन्तु निःसत्व होने के कारण शरीर के लिए हानिकारक रोग जैसे कैंसर आदि अनेक भयानक रोगों का कारण भी माना जा रहा है । विभिन्न प्रकार के रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल से आंत्रशोध, एलर्जी, हेपेटाइटिस, हृदय रोग एवं कैंसर होने की संभावना बढ़ी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के सर्वे के अनुसार २०-२५ हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष इन रसायनों के प्रभाव से अकाल मृत्यु को

प्राप्त करते हैं। अधिकतर लोगों का मानना है की खेती के बदलते स्वरूप में उत्पन्न खाद्यान्न से मनुष्य का स्वास्थ्य क्षीण हो रहा है इसका असर मिट्टी की सेहत के साथ भू-जल स्तर और पर्यावरण की गुणवत्ता पर भी पड़ता है।

इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए पृथ्वी, मानव व पर्यावरण के बीच मधुर, परस्पर लाभदायी तथा दीर्घायु संबंधों की अवधारणा को आधार बनाकर आज एक बार पुनः समस्त विश्व में प्राकृतिक खेती की परिकल्पना की जा रही है तथा इसकी विभिन्न विधाओं को अपनाया जा रहा है जिसमें पर्यावरण तथा स्वास्थ्य दोनों हो सुरक्षित रहे जिसके परिणामस्वरूप जैविक खेती को अपनाने का प्रचलन आरंभ हुआ और आज अधिकांश देश इसके अनुयायी बन गए हैं। भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कई बार रासायनिक खादों के अंधाधुंध इस्तेमाल पर चिंता जाहिर कर चुके हैं तथा वे किसानों से जैविक और प्राकृतिक खेती को अपनाने की अपील करते रहे हैं । १६ दिसंबर २०२१ को एक कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने कहा कि कृषि से जुड़े हमारे प्राचीन ज्ञान को हमें न सिर्फ फिर से सीखने की जरूरत है, बल्कि उसे आधुनिक समय के हिसाब से तराशने की भी जरूरत है। इस दिशा में हमें नए सिरे से शोध करके प्राचीन ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक फ्रेम में ढालना होगा। उन्होंने कहा कि रसायन और रसायनिक उर्वरकों ने हरित क्रांति में अहम रोल निभाया है लेकिन इसके विकल्पों पर भी साथ ही साथ काम करते रहने की जरूरत है। अतः आज समय के बदलते स्वरूप तथा लोगों की मांग के अनुसार बहुत सारे किसानों ने प्राकृतिक खेती की विधाओं को अपनाना शुरु कर दिया है और यह भी अपने प्रारंभिक काल के मुकाबले अब और अधिक जटिल हो गई है और अनेक नये आयाम अब इसके प्रमुख अंग हैं।

आजकल जैविक खेती जिसे आर्गेनिक एग्रीकल्चर भी कहते हैं, आधुनिक कृषि पद्धति के रूप में प्रचलित करने का प्रयास अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किया जा रहा है। परंतु यह हमारे देश की प्राचीन कृषि पद्धति रही है जिसे वैदिक कृषि भी कहा गया है। कृषक प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए वैज्ञानिक तथ्य को पूर्णरूपेण समझते हुए कृषि कार्य में संलग्न थे और इन्हें इच्छित सुफलदायी परिणाम प्राप्त होता था। मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखते हुए मानव कल्याण के साथ पर्यावरण संतुलन स्थापित रहता था। यह खेत, खलिहान, श्रमिक एवं उपभोक्ताओं के लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक प्रभाव से रहित थे। आज के समय में जैविक खेती का नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रवेश तथा अंर्तराष्ट्रीय बाजार में उत्कृष्ट उत्पाद के रूप में पहचान इसकी बढ़ती महत्ता का प्रतीक है। विगत दो दशकों में विश्व समुदाय में खाद्य गुणवत्ता सुनिश्चित करने के साथ पर्यावरण को स्वस्थ रखने हेतु जागरूकता बढ़ी है। आज रासायनिक प्रदूषण से तंग आकर देश या विदेश के वैज्ञानिक जैविक खेती करने को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इस पद्धति के बारे में पुनः नए सिरे से कृषकों में जागृति तथा विश्वास बढ़ रहा है। इस विधा से न केवल स्वस्थ वातावरण, उपयुक्त उत्पादकता तथा प्रदूषणमुक्त खाद्य प्राप्त होगा बल्कि इसके द्वारा संपूर्ण ग्रामींण विकास की एक नई स्वपोषित स्वावलंबी प्रक्रिया शुरू होगी। शुरूआती हिचकिचाहट के बाद जैविक खेती अब विकास की मुख्य धारा से जुड़ रही है प्रारंभिक काल से अब तक जैविक खेती के अनेक रूप प्रचलित हुए हैं स्वस्थ मानव, स्वस्थ मृदा तथा स्वस्थ खाद्य के साथ स्वस्थ व टिकाऊ वातावरण के प्रति संवेदनशीलता आज इसके प्रमुख बिन्दु हैं।

वैदिक खेती

वेदिक खेती उसे कहते है जिसका वर्णन वेदों और अन्य सनातन धर्मग्रंथों में मिलता है। चूंकि वेदों की रचना हमारे महान ऋषियों ने की है इसलिये इसे ऋषि कृषि भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है की वैदिक खेती में खेती से उत्पन्न खाद्यान्न मनुष्य के लिए स्वास्थ्य प्रद होता है। इस विधा में मनुष्य कम से कम प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करता है। समय के साथ किसान परंपरागत खेती से दूर होते गए और वैदिक ज्ञान भूलते गए। ।आवश्यकता है हम वेदिक खेती के सिद्धांतों और उनके उदेश्यों के अनुसार खेती करें ताकि खेती टिकाऊ हो, धरती माता, जल, वायु, पर्यावरण प्रदूषित ना हो, किसानों को भी आर्थिक फायदा पहुंचाने वाली व उत्पादित खाद्यान्न से मानवमात्र को स्वास्थ्यलाभ हो।

वैदिक कृषि प्रणाली-आधुनिक कृषि विज्ञान का आधार

वैदिक कृषि प्रणाली बहुत ही समृद्ध थी क्योंकि खेती के विभिन्न चरणों-जुताई, बुवाई, कटाई, मड़ाई और कृषि उत्पादन की प्रस्तुति आदि के कई संदर्भों द्वारा समर्थित था। विभिन्न प्रकार के किसान-मकई के खेत, अन्न भंडार वैदिक साहित्य के कृषि उपकरण हमें विकसित कृषि विज्ञान का स्पष्ट विचार देते हैं। किसानों के दो वैदिक शब्द कार्सिवना और किनासा, जो बाद के विश्व किसान का भाषाई आधार है, हमें भारतीय कृषि समाज 'जय जवान जय किसान' के आदर्श वाक्य की याद दिलाता है। भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए आधुनिक काल की भांति वैदिक काल में भी कृषि के लिए खाद की आवश्यकता होती थी, किन्तु यह खाद रसायनयुक्त नहीं थी बल्कि प्रकृतिक होती थी। वैदिक काल में पशुओं को अधिक पाला जाता था और पशुओं के गोबर, मलमूत्र इत्यादि को भूमि की उर्वरक शक्ति बढाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था परन्तु उससे अधिक श्रेष्ठ यज्ञ की खाद थी। यह खाद यज्ञ से बनती थी। कृषि की उत्पत्ति में सहायक वनस्पति एवं अन्न आदि की तथा घी, शहद की यज्ञों में जब आहुति दी जाती थी तो सूक्ष्म तत्व शक्तिशाली होकर वायु में संचरित हो जाते थे तथा वृक्षादि सभी को प्राप्त हो जाती थी।

वर्तमान समय में वैदिक कृषि के विभिन्न रूप

शिवयोग (वैदिक) कृषि

शिवयोग (वैदिक) कृषि की विधि में मन्त्रों का उपयोग कृषि का उत्पादन बढाने में किया गया है। शिवयोग (वैदिक) कृषि में मंत्रोच्चार कर न केवल जमीन की उर्वरा शक्ति, बल्कि बीज अंकुरण की क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है। इसमें विभिन्न बीज मंत्रों के साथ साधना की जाती है । वैदिक खेती से कृषि लागत में ७० प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है । शिवयोग

कृषि के तहत खेतों में शाम्भवी साधना करके भगवान शिव-शिवा की शक्ति खेतों में डाली जाती है, जिसे कहृस्मिक खाद भी कहा जा सकता है। इसके बाद न तो कभी भूमि बंजर होती है और किसानों का फर्टीलाइजर्स, रासायनिक खाद और स्प्रे का खर्चा भी बच जाता है। शिवयोग खेती में किसानों को रोजाना सिर्फ आधा घंटा शाम्भवी साधना करनी है और अपने खेतों में शिव-शिवा की शक्ति डालनी है। अच्छी फसल के लिए किसानों को हर दिन कम से कम २० मिनट ओम रोम जम सह का पाठ करना होगा । कास्मिक रेज के कारण उत्पादन वृद्धि के प्रभाव पर शोध की आवश्यकता है।

जैव गतिशील खेती

जैवगतिशील कृषि प्रणाली की उत्पत्ति १९२० के दशक के दौरान अहृस्ट्रियाई दार्शनिक श्री रुडोल्फ स्टेनर द्वारा दी जाने वाली व्याख्यान की एक श्रृंखला से हुई थी। देश के कृषि वैज्ञानिकों ने खेती की इस वैदिक तकनीक को लाभप्रद बताया है। इस को अग्निहोत्र कृषि भी कहते हैं। वेदों में इसका उल्लेख है। इसे अपनाने से पर्यावरण, कृषि व किसान सभी को लाभ मिलेगा। स्वस्थ जीवन शैली पर आधारित कृषि की यह प्राचीन विधा आज समय की माग बन गई है।

जैवगतिशील खेती की परिभाषा

जैवगतिशील खेती, खेती के लिए एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण है जिसमें खेती की प्रक्रिया में सभी हितधारक शामिल होते हैं जैसे कि कृषक, मृदा, पर्यावरण-व्यवस्था, जानवरों और पक्षी जो कि कृषि क्रियाओ में भाग लेते हैं, और इन सब से ऊपर, ब्रह्मांडीय शक्तिया जिनका प्रभाव पृथ्वी पर जीवित प्राणियों पर पड़ता है। फसल और पशुधन एकीकरण, मिट्टी उन्नयन, पौधे और पशु विकास को महत्व दिया जाता है।

जैवगतिशील कृषि पद्धति के मूलभूत आवश्यकता

जैवगतिशील कृषि की मुख्य रूप से दो मूलभूत आवश्यकताये होती है जो की निम्नलिखित हैः

१- जैवगतिशील पञ्चांग २- जैवगतिशील पदार्थ

जैवगतिशील पञ्चांग

जैवगतिशील कृषि पद्धति मूलत चंद्र चक्रण (चन्द्रमा के उत्थान एवं क्षयन) पर आधारित है। जैवगतिशील कृषि मे जैवगतिशील पदार्थ बनाना, बीज और फसल लगाने के समय एवं उनके कटाई का समय भी चंद्र चक्रण पर निर्भर करता है। एक खगोलीय कैलेंडर जिसे जैवगतिशील कृषि कैलेंडर कहते है जोकि मूलतः चंद्र परिचालन एवं चंद्र की स्थिति के आधार पर रोपण/बीज बोने के लिए इष्टतम तिथि निर्धारित करता है। जिस तरह से मनुष्यों को विभिन्न कार्यो के लिए पञ्चांग की आवश्यकता है, ठीक उसी तरह से फसलों का भी एक पञ्चांग होता है जिसकी सहायता से जैवगतिशील कृषक अपने कृषि क्रियाओ का संचालन करते हैं। चंद्र परिचालन पौधे की जड़ों की आकार, गठन और उनकी वृद्धि पर जबरदस्त प्रभाव डालता है चन्द्र परिचालन के आधार पर कृषि क्रियाओ के करने की पद्धति कोई नई बात नही है, यह एक प्राचीन पद्धति है जो हमारे पूर्वजों में प्रचलित थी ।

जैवगतिशील पदार्थ

जैवगतिशील खाद का प्रयोग जैवगतिशील कृषि में प्रचलित है। इन सभी तकनीकों का मूल उद्देश्य मृदा में अनिवार्य रूप से सूक्ष्म जीवों को बढ़ाना है, जो कि मृदा पर्यावरण प्रणाली का हिस्सा है। जब ये सूक्ष्म जीव मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में होते हैं, उनकी गतिविधियो से पौधों को सभी प्रकार के पोषक तत्व उपलब्ध होने में आसानी होती है। खेत के सभी अपशिष्ट को समृद्ध कार्बनिक खाद में परिवर्तित कर दिया जाता है जिसे फिर से खेतों में वापस डाल दिया जाता है। इसके अलावा जैव-गतिशील खेती करने के लिए गाय भी जरूरी है, क्योंकि गाय के गोबर, गाय मूत्र और गाय के दूध का उपयोग किया जाता है। आज जलवायु परिवर्तन की वजह से परंपरागत जैविक कृषि से जहां अपेक्षाकृत कम पैदावार प्राप्त होता है, वहीं इस विधि से दोगुनी व व गुणवत्तापूर्ण पैदावार प्राप्त होती है ऐसा इस विधा को अपनाने वालों का मानना है । इस विधि से चावल, गेहूं, मक्का, ज्वार, बाजरा, टमाटर, प्याज, गोभी, खीरा , आम, पपीता आदि विभिन्न तरह के अनाजों, सब्जियों व फलों की खेती की जा सकती है। देश की कुछ जगहों में इस विधि से खेती किए जाने पर उसके बेहतर परिणाम सामने आए हैं। यही वजह है कि अहृस्ट्रिया, आस्ट्रेलिया, पेरू, अर्जेटीना, जर्मनी व पोलैंड सहित दुनिया के ७१ देशों में अग्निहोत्र कृषि व होमाथेरेपी पर काम चल रहा है।

ऋषि-कृषि

ऋषि-कृषि देशपांडे कृषि तकनीक वैदिक साहित्य और ब्रह्मांडीय ऊर्जा पर आधारित है। ऋषि-कृषि तकनीक का उद्देश्य ब्रह्मांडीय ऊर्जा की मदद से मिट्टी को हमेशा जीवित रखना है, क्योंकि यह पौधे के विकास का एकमात्र स्रोत है।

ऋषि कृषि देशपांडे तकनीक पद्धति

इसके अनुसार प्रथम चरण में अंगारा (पवित्र राख) देशपांडे पद्धति के अनुसार किसान को एक बरगद के पेड़ के आधार से कम से कम १५ किलो मिट्टी को उस प्रत्येक एकड़ खेत में शामिल करना होता है जिस पर वह खेती करना चाहता है। अंगारा के उपयोग से मिट्टी में रहने वाले जीवों की आबादी में क्रमिक वृद्धि होती है। दुसरे चरण में अमृत पानी (अमृत जल) की तैयारी और उपयोग है। देसी गाय के १० किलो गोबर में एक चौथाई किलो देसी गाय के दूध से बना घी अच्छी तरह मिला लें। इस मिश्रण में आधा किलो शहद मिलाकर लगातार चलाते हुए २०० लीटर पानी डालें। इस प्रकार प्राप्त मिश्रण अमृतपानी है। गन्ना, हल्दी, अदरक आदि अमृतपानी में डुबोकर लगाना चाहिए। उन फसलों के मामले में जहां रोपे लगाए गए हैं, रोपण से पहले जड़ों को अमृतपानी में डुबो दें। तीसरे चरण में बीज संस्कार (रोपण के लिए बीजों की ड्रेसिंग) की जाती है एक किलो अंगारा (बरगद के पेड़ के आधार से मिट्टी) में पर्याप्त मात्रा में अमृतपानी मिलाएं ताकि गाढ़ा पेस्ट बनाया जा सके। एक छलनी में बीज के साथ पेस्ट की थोड़ी मात्रा मिलाएं और पैन को तब तक घुमाते रहें जब तक कि बीज मिट्टी से ढक न जाएं। बीजों को छाया में सुखाएं, स्टोर करें और आवश्यकतानुसार उपयोग करें। नरम या पतले कोट वाले बीज जैसे भांग, मूंग, मूंगफली आदि जैसे अनाज के लिए ऊपर तैयार की गई मिट्टी को हल्का छिड़कना चाहिए और बीज को तुरंत इस्तेमाल करना चाहिए। चौथे चरण में अंछादान (मल्चिंग) जिसका अर्थ है फसल क्षेत्र में मिट्टी को ढंकना देशपांडे प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है।

जैविक खेती

जैविक खेती (अहर्गेनिक फार्मिंग) कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है, तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बचाये रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करती है। विश्व खाद्य संगठन की एक अन्य परिभाषा के अनुसार ''जैविक खेती एक ऐसी अनूठी कृषि प्रबंधन प्रक्रिया है जो कृषि वातावरण का स्वास्थ्य, जैव विविधता, जैविक चक्र तथा मिट्टी की जैविक प्रणालियों का संरक्षण व पोषण करते हुए उत्पादन सुनिश्चित करती है। इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के संश्लेषित तथा रसायनिक पदार्थों के उपयोग के लिये कोई स्थान नहीं है''। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार जैविक खेती का अर्थ प्रकृति के साथ जुड़कर खेती करना है। इस प्रक्रिया में सभी अवयव व प्रणालियां एक-दूसरे से जुड़ी हैं।

जैविक खेती वैष्विक परिदृष्य

सन् १९९० के बाद से विश्व में जैविक उत्पादों का बाजार आज काफी बढ़ा है। ७२.३ मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि पर १८७ देशों में जैविक कृषि की जाती है जिसमे कम से कम ३.१ मिलियन किसान संलिप्त है। २०१९ में जैविक खाद्य और पेय की वैश्विक बिक्री १०६ बिलियन यूरो से अधिक की थी। भारत में ३१ मार्च २०२१ तक राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के तहत पंजीकृत कुल क्षेत्रफल ४३३९१८४.९३ हेक्टेयर है। इसमें २६५७८८९.३३ हेक्टेयर खेती योग्य क्षेत्र और अन्य १६८१२९५.६१ हेक्टेयर जंगली फसल के लिए शामिल है। सभी राज्यों में से मध्य प्रदेश ने जैविक प्रमाणीकरण के तहत सबसे बड़े क्षेत्र को कवर किया है, इसके बाद राजस्थान, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर और कर्नाटक का स्थान है। २०१६ के दौरान, सिक्किम ने अपनी पूरी खेती योग्य भूमि (७५००० हेक्टेयर से अधिक) को जैविक प्रमाणीकरण के तहत परिवर्तित करने का एक उल्लेखनीय गौरव हासिल किया है।

अंत में यह देखा जा सकता है की वैदिक खेती / जैविक खेती की विभिन्न विधियाँ रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है अर्थात यह खेतियाँ मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णतः सहायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में इन खेतियों की विधि और भी अधिक लाभदायक है। इन विधियों द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है इसके साथ ही कृषक भाइयों को आय अधिक प्राप्त होती है तथा अंतराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उतरते हैं। जिसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक भाई अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण प्रदूषण, भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए वैदिक अथवा जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नितान्त आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हों, शुद्ध वातावरण रहे एवं पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती की कृषि पद्धतियाँ को अपनाना होगा जोकि हमारे नैसर्गिक संसाधनों एवं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बगैर समस्त जनमानस को खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सकेगी तथा हमें खुशहाल जीने की राह दिखा सकेगी।

२. प्राकृतिक खेती की अवधारणा

पदमश्री डॉ भारत भूषण त्यागी

प्राकृतिक खेती की मौलिक अवधारणा भारतीय संस्कृति से प्रेरित है।संस्कृति का तात्पर्य मानव में संस्कार पूर्वक स्वीकृतियों के होने से है अर्थात मानव के द्वारा प्रकृति की हर वास्तविकता को जैसा है वैसा ही समझा और स्वीकारा जाय। यही प्राकृतिक खेती का मूल मंत्र है । प्राकृतिक खेती प्रत्येक मानव के जीने की आवश्यकता है । व्यवस्था के रूप में मानव और प्रकृति में गहरा सम्बन्ध है जिसे समझना और पूरकतापूर्वक निर्वाह होना ही प्राकृतिक खेती है ।

आज प्राकृतिक खेती की आवश्यकता इसलिए भी महत्वपूर्ण और अनिवार्य है कि प्रचलित आधुनिक खेती के कारण स्वास्थ्य, पर्यावरण, आर्थिक असंतुलन व कृषि के प्रति बढ़ती उदासीनता जैसी चुनौतियाँ तेजी से उभर रही हैं । वर्तमान भारत सरकार ने जिस प्रकार आत्मनिर्भर भारत, कृषक सशक्तिकरण एवं किसानों की आमदनी दोगुना करने की दिशा में आवाहन किया है उसके लिए सही समझ के साथ प्राकृतिक खेती एक सार्थक विकल्प है । यह कोई आदर्शवाद नहीं बल्कि प्रकृति के साथ जीने की वास्तविकता है ।

खेती में हरित क्रांति से पहले जो समस्याएं थीं आज वो उससे भी ज्यादा विकराल रूप में है । इसलिए समीक्षा पूर्वक समस्या के कारण को ठीक ठीक पहचाना जाए । एक कृषक होने के नाते सन १९८७ में अपनी खेती का आर्थिक विश्लेषण किया, समस्या यह थी कि खेती का उत्पादन तो बढ़ रहा है लेकिन किसान की आमदनी नहीं बढ़ रही है । एक वर्ष की जांच में यह पाया कि खेती की सभी लागत, जुताई, सिंचाई, खाद, बीज, दवाई पर बाजार का कब्जा है ।

उत्पादन की बिक्री और कीमत पर भी बाजार का अधिकार है । प्रोसेसिंग व मूल्य संवर्धन भी बाजार के अधिकार में है । किसान की न कोई परिभाषा है न उसके पास कोई अधिकार है आय बढ़ाने का कोई अवसर भी किसान के पास नहीं है । इस हरित क्रांति को खेती का बाजारीकरण भी कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी ।

आज इस आर्थिक असंतुलन को दूर करने के साथ-साथ स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की दृष्टि से भारत सरकार प्राकृतिक खेती को अपनाये जाने की ओर प्रयासरत है । यह सराहनीय एवं सम्मानजनक पहल है । इसके लिए सतर्कता की विशेष आवश्यकता है । सफलता के लिए सोच में परिवर्तन होना प्राथमिकता है ।

केवल नाम और तरीके बदलने से कुछ नहीं होगा । प्राकृतिक खेती के लिए प्राकृतिक उत्पादन व्यवस्था केन्द्रित सोच की आवश्यकता है । जिससे गाय के साथ साथ अन्य सभी प्राकृतिक वस्तुओं की साझा भूमिका है । कोई एक वस्तु विशेष नहीं है । प्रकृति का मूल सूत्र ही सह -अस्तित्व है । इसलिए देश में कृषि अनुसंधान, शिक्षा, शोध, तकनीकी, विज्ञान, नीति प्रोद्योगिकी आदि प्राकृतिक व्यवस्था केन्द्रित हों । परिस्थितियों, घटनाओं, समस्याओं व लाभ केन्द्रित विचार धाराओं के कारण ही कृषि तंत्र अधूरा है ।

प्राकृतिक खेती में प्रयोग रूप में यह देखा गया है कि प्राकृतिक उत्पादन व्यवस्था का स्वरूप पूरकता, विविधता, एवं नैसर्गिक संतुलन पूर्वक धरती की सतह पर निश्चित घनत्व में क्रियाशील है । जिससे एक ही खेत में अनेक फसलें साथ-साथ लगाये जाने से जो उत्पादन प्राप्त होता है वह मात्रा, गुणवत्ता एवं विविधता में एकल फसल प्रणाली से बहुत ज्यादा है । साथ ही भूमि की उर्वरता भी तेजी से बढ़ती है । विविध फसलों के अवशेष भूमि को मिलने से जीवाश्म कार्बन एवं पर्याप्त जीवाणु तंत्र समृद्ध रहता है । ताप-दाब- नमी का संतुलन बने रहने से कीड़े बीमारियों का नियंत्रण होना देखा गया है । बाहरी लागतों की निर्भरता नहीं के बराबर होती है ।

उत्पादन वृद्धि से आय वृद्धि हेतु प्राकृतिक खेती का व्यवसायिक प्रबन्धन होना आवश्यक है अर्थात खेती में उत्पादन के साथ- साथ गुणवत्ता प्रमाणीकरण, प्रसंस्करण एवं बिक्री हेतु समन्वित कार्य योजना पूर्वक प्राकृतिक खेती की जाए ।

प्राकृतिक खेती को सही समझ एवं श्रम नियोजन पूर्वक व्यवसायिक कार्य योजना के रूप में कृषक उत्पादन संगठन प्रारूप में चलाया जाना ग्रामीण स्तर पर आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए प्रभावी आधार है व खेती के लिए समाधानात्मक विकल्प है ।

३. वृक्षायुर्वेद आधारित टिकाऊ एवं सस्ती जैविक कृषि : एक वृहद् कृषि ज्ञान एवं भारतवर्ष की प्राचीन परंपरा

डा. सुनीता टी. पाण्डेय

वृक्षायुर्वेद आधारित कृषि ज्ञान का उल्लेख भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों के प्राचीन मनीषियों ने भिन्न -भिन्न समय पर ४०० वर्ष ईसा पूर्व से १७२५ ई. तक भिन्न-भिन्न पाण्डुलिपियों के माध्यम से किया है। ये तकनीकियां सम्पूर्ण रूप से जैविक हैं। खेती की इन टिकाऊ तकनीकियों के माध्यम से हजारों वर्ष तक एशिया का दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र कुछ सूखे प्रभावित वर्षों को छोड़कर समृद्ध था। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों एवं समय की कसौटी पर खरा उतरा वृक्षायुर्वेद आधारित जैविक कृषि का प्राचीन 'वनस्पति जीवन का विज्ञान' से संबंधित निम्नलिखित पाण्डुलिपियां जो कि मूल रूप से संस्कृत व अन्य भारतीय भाषाओं में लिखी गयी थी, वे देश तथा विदेश के विभिन्न भागों में बिखरी पड़ी थीं एवं वर्ष १९९४ तक सर्वसाधारण की पहुंच एवं व्यवहार में यहां तक कृषि साहित्य एवं कृषि के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम का भी कभी हिस्सा नहीं बन पायीं।

वर्तमान कृषि के परिपेक्ष मे वृक्षार्युवेद की उपयोगिता

- जल, जमीन, जंगल, जानवर, जैव विविधता एवं जलवायु की सुरक्षा।
- जनस्वास्थ्य की सुरक्षा।
- जैविक उत्पादों की बढती मांग एवं बाजार।
- कृषकों की आय दुगनी करने के राष्ट्रीय एजेन्ड़े के अनुकूल।
- विषमुक्त उत्पादन, कर्जमुक्त किसान
- लघु एवं सीमांत कृषकों हेतु अतिउपयोगी।

विभिन्न मनीषियों द्वारा वृक्षायुर्वेद के उपयोग पर लिखित पाण्डुलिपियां

पाण्डुलिपि	लेखक	लेखन समय
कौटिल्य का अर्थशास्त्र	कौटिल्य	३२१-२९६ ईसा पूर्व
बृहद् संहिता	वराहमिहिर	५०५-५८१ ई०
वृक्षार्युवेद (वनस्पति जीवन का विज्ञान)	सुरपाल	१००० ई०
लोकोपकार	चावुण्ड राय	१०२५ ई०
अभिलाषितार्था चिंतामणि	सोमेश्वर देव	१२वीं सदी
उपवनविनोद	सांरगधर	१३०० ई०
विश्वल्लभ	चक्रपाणि मिश्र	१५७७ ई०
वृक्षार्युवेद का अंतिम उल्लेख शिवतत्वरत्नाकर (राजा बासवराज, कन्नड़), १६९८-१७२५ ई०) में उपलब्ध है।		

वर्ष १९९४ तक एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन (ए.ए.एच.एफ.) की स्थापना से पूर्व १००० वर्ष पुरातन भारतीय मूल के वैद्य सुरपाल द्वारा रचित "वृक्षायुर्वेद" (वनस्पति जीवन का विज्ञान) केवल एक शब्द मात्र ही था एवं उसकी व्यवहारिकता लगभग अलोप थी। वैश्विक स्तर पर कृषि क्षेत्र के उत्कृष्ट वैज्ञानिक स्वर्गीय डहृक्टर वाई. एल. नेने, संस्थापक, ए.ए.एच.एफ. के अथक प्रयासों के उपरांत इंग्लैंड के अहृक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के बोडलीयन पुस्तकालय से वृक्षायुर्वेद की मूल प्रति माइक्रोफिश के रूप में प्राप्त हुई और फिर कालांतर में वृक्षायुर्वेद आधारित व्यवहारिक जैविक खेती का शुभारंभ वर्ष २००३ में कर्नाटक के पश्चिमी घाट के अग्नि ग्राम से प्रारंभ हुआ। तदोपरांत २००३-०४ में महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में केशवपुरी में इसका विकास हुआ और वर्ष २००५-०६ में अरूणाचल प्रदेश की अबाली चाय परिसम्पदा में चाय की खेती में इसका विस्तृत एवं सफल कार्यान्वयन हुआ और इस प्रकार वृक्षायुर्वेद ने चाय की खेती से आधुनिक युग में प्रवेश किया और इस अनुभव को बाल्मीकि श्रीनिवास अयंगर्य द्वारा २००६ में लिखा गया, तथा ए.ए.एच.एफ. द्वारा इस अध्ययन को वर्ष २००६ में प्रकाशित किया गया।

वृक्षायुर्वेद की विभिन्न पाण्डुलिपियों में कृषि से सम्बंधित तकनीकों का वर्णन

१. भूमि निरूपनम : मृदा संरक्षण की विधियां, पहचान तथा वर्गीकरण

२. बीजोप्ति विधि : बुवाई की तकनीकें

३. पादप विविक्षा : प्रवर्धन की तकनीकें

४. रूपना विधानम : बुवाई तकनीकें

५. निशेचना विधि : सिंचाई के नियम एवं तकनीकें

६. पोषण विधि : पोषण तथा प्रबंधन तकनीकें

७. द्रुम रक्षा : पादप सुरक्षा की तकनीकें

८. पंचभूत तथा त्रिदोष के आयुर्वेद के सिद्धांत के आधार पर पौधों में बिमारियों की पहचान

९. तरू चिकित्सा : वृक्षों से संबंधित औषधियों से जैविक रोग- कीट नियंत्रण एवं उपचार की तकनीकें

१०. निवासान्ना तरू शुभ-अशुभ लक्षणम् : शुभ-अशुभ लक्षणों के आधार पर घरों में लगाये जाने हेतु पौधों का चुनाव

११. तरू-महिमा : वृक्षों का महत्व

१२. उपवन प्रक्रिया : बागवानी

१३. चित्तीकरनम : प्राचीन जैव प्रौद्योगिकी संबंधी विधियां

१४. डाकरगालम : भूमिगत जल की उपलब्धता दर्शाने वाले सांकेतिक पौधों का अध्ययन

१७२५ ई. के उपरान्त वृक्षायुर्वेद का ज्ञान एवं उसका अभ्याष ब्रिटिश राज के कारण सर्वसधारण के मध्य न उपलब्ध होने के कारण खेती किसानी का धीरे-धीरे क्षरण हुआ और शनैः शनैः भारत जो खेती के कई उत्पादों का विश्व के कई भागों में निर्यात करता था उसे भरण-पोषण हेतु अनाज के लिए भी दूसरे देशों पर निर्भर रह आयात करना पड़ा। वर्ष १९६५ तथा उत्तरोत्तर वैज्ञानिकों, योजनाकारों, नीतिकारों के अथक प्रयासों से हरित क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ और कृषि उत्पादन व उत्पादकता में आशातीत वृद्धि हुई और भारतवर्ष नें खाद्यान्न सुरक्षा प्राप्त की।

हमें आभास है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य के जलवायु परिवर्तन, कम होती जैव विविधता, ग्लोबल वार्मिंग, कृषि संसाधनों के लगातार क्षरण के साथ-साथ खेती के दिन प्रतिदिन महंगे होने एवं कृषि लाभांश में लगातार कमी आने से कृषकों द्वारा खेती के प्रति उदासीनता एक चुनौती है। हम सब जानते है कि आज की हमारी खेती लाभप्रद नहीं है और पर्यावरण एवं भूमि भी खराब हो चुकी है। इसलिए अब आवश्यकता खेती करने के तरीकों को बदलने की है। हमारा अनुभव इसमें वृक्षायुर्वेद का ज्ञान विशेषकर इसकी सबसे बड़ी भेंट कुणपजल का प्रयोग अत्यंत ही लाभप्रद और उत्साहवर्धक रहा है। इससे कृषकों की खेती की लागत तो कम होगी ही, उपज बढ़ेगी, आय भी बढ़ेगी और साथ में गुणवत्तायुक्त उत्पादन से कृषकों को दाम भी अच्छे मिलेंगे जिस से कृषकों का सामाजिक, आर्थिक स्तर भी सुधरेगा तथा साथ ही जल, जंगल, जानवर, जलवायु एवं भूमि भी सुरक्षित रहेंगे। ऐसी वृक्षायुर्वेद आधारित सस्ती एवं टिकाऊ जैविक खेती कृषकों के लिए व संपूर्ण समाज के लिए लाभदायक होंगी।

अतएव, आज की वर्तमान आवश्यकता को देखते हुए, पुनः वृक्षायुर्वेद आधारित जैविक कृषि की विभिन्न तकनीकियों पर वर्तमान व्यवहारिक परिप्रेक्ष्य में शोध तथा उनको लोकप्रिय बनाने हेतु एशियन एग्री- हिस्ट्री फाउण्डेशन दृढ़संकल्प है।

भारत की प्राचीन कृषि का ज्ञान आज की आधुनिक कृषि में भी अत्यंत प्रासंगिक है। इस ज्ञान को जो कि हमारे संस्कृत के पुरातन साहित्य में छिपा हुआ था 'एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन (ए.ए-एच.एफ)' के द्वारा ढूंढा गया। फाउण्डेशन के संस्थापक चेयरमैन स्व. डा. वाई एल नेने के अद्वितीय, अतुलनीय योगदान की वजह से भाततवर्ष के मनीषियों द्वारा समय प्रति समय मूल रूप से संस्कृत में लिखित, परीक्षित और परिष्कृत वृक्षायुर्वेद का संपूर्ण प्रचीन ज्ञान एएएचएफ के द्वारा वर्ष १९९६ से सर्वसाधारण के मध्य देश-विदेश में हिन्दी, अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में पहुंचाया गया। इस ज्ञान को देश के कई प्रदेशों के कृषकों के मध्य प्रचारित किया है और इसके प्रयोग से किसानों को आशातीत लाभ हुए हैं। अब एएएचएफ इसे प्रसारित करने हेतु दृढ़ संकल्प है।

उल्लेखनीय है कि एशियन एग्री- हिस्ट्री फाउण्डेशन ने भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों के प्राचीन मनीषियों द्वारा भिन्न-भिन्न समय पर संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में लिखे गये कृषि तथा कृषि से संबंधित ज्ञान को हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी तथा कुछ स्थानीय भाषाओं में अनुवाद किया तथा साथ ही विषय को वर्तमान समय में लागू किये जाने की महत्ता को देखते हुए इस प्राचीन परन्तु महत्तवपूर्ण ज्ञान को भारतवर्ष

के विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किये जाने की संस्तुति की जिसके आधार पर वर्तमान में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा भारतवर्ष के प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालयों में **"एग्रीकल्चरल हेरिटेज"** का पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया है। यहां पर ये भी उल्लेख करना तर्क संगत है कि भारतवर्ष के विभिन्न मनीषियों द्वारा लिखे गये व एशियन एग्री- हिस्ट्री फाउण्डेशन द्वारा अनुवादित वृक्षायुर्वेद के सिद्धान्तों के आधार पर की गई जैविक खेती से उत्तर-पूर्वी भारत के चाय बागानों के अतिरिक्त अनेक अन्य स्थानों पर उत्कृष्ट सफलता प्राप्त हुई है।

वृक्षायुर्वेद सिद्धांतों पर आधारित कृषि के ज्ञान में "वृक्षायुर्वेद" नामक ग्रंथ में वैद्य सुरपाल द्वारा वर्णित जैविक किण्वित तरल फर्टिलाइजर, कुणपजल, का विषेश योगदान रहा है। हम एएएचएफ के अनुभव के आधार पर यह कह सकते हैं कि हर्बल कुणपजल में जैविक खेती को सफल बनाने की अद्भुत क्षमता है।

एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन, जिसका मुख्यालय अब गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय में स्थापित है, का दृढ़संकल्प है कि विश्वविद्यालय के उद्देश्यों में निहित जैविक खेती को प्रदेश एवं देश में लोकप्रिय बनाने की दिशा में उक्त तकनीकों पर शोध एवं प्रसार के कार्य को मूर्त रूप दिया जाए, जिससे हम भारतवर्ष की वृक्षायुर्वेद आधारित गौरवशाली जैविक खेती की परंपरा को कृषकों के मध्य लोकप्रिय कर धरा को सुजलाम-सुफलाम का दर्जा दे पुनः खेती को विषमुक्त, समृद्ध एवं टिकाऊ बनाने के साथ-साथ पर्यावरण को सुरक्षित तथा कृषकों समृद्ध बनाने की दि में अग्रसर हो सकें।

वृक्षायुर्वेद में प्रयुक्त पशु उत्पाद एवं अन्य सामग्री

समग्री	**गुण**
Animal fat	Saponification after release of fatty acids; anti-microbial
पशु वसा	फैटी एसिड की रिहाई के बाद साबुनीकरणय रोगाणुरोधी
Ash	Particles hygroscopic; absorb moisture from insect eggs and spores; interfere with insect feeding.
राख	राख के कण हीड्रोस्कोपिक, कीट के अंडे और बीजाणुओं से नमी को अवशोषित कर, कीट भक्षण में हस्तक्षेप।
Brick powder	Action similar to that of ash particles except that these particles are inert
ईंट पाउडर	राख के कणों के समान क्रिया, सिवाय इसके कि ये कण निष्क्रिय होते हैं
Buffalo horn	Contains keratin, a protein that contains 24% cystine, a sulphur-containing amino acid; used for smoking (fumigation) trees
भैंस का सींग	केराटिन होता है, एक प्रोटीन जिसमें २४ः सिस्टीन होता है, एक सल्फर युक्त अमीनो एसिड होता है, और पेड़ों के धूमन के लिए उपयोग किया जाता है
Cow dung	With urine it is antiseptic; rich in bacteria that compete with pathogens; good medium for biocontrol agents; beneficial to Rhizobium and Azobacter
गाय का गोबर	मूत्र के साथ यह एंटीसेप्टिक है। बैक्टीरिया में समृद्ध है। रोगजनकों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, जैव नियंत्रण एजेंटों के लिए अच्छा माध्यम है। राइजोबियम और एजोबैक्टर के लिए लाभदायक।
Cow horn	Same as buffalo horn
गाय के सींग	भैंस के सींग के समान
Crab shells	Rich source of chitin from which chitosan, a polymer, is made; induces systemic resistance in plants; used in smoking tree wounds
केकड़े के गोले	चिटिन का समृद्ध स्रोत जिससे चिटोसन, एक पोलीमर, बनाया जाता है ये पौधों में प्रणालीगत प्रतिरोध को प्रेरित करता है। पेड़ के घावों में धूमन हेतु उपयोग किया जाता है
Fish meal	Rich in protein; releases amino acids including proline
मछली का भोजन	प्रोटीन से भरपूर, प्रोलीन सहित अमीनो एसिड जारी करता है।
Flesh	Same as fish meal; serves as an excellent medium for bacteria that may antagonize plant pathogens; attached connective tissue rich in proline
मोटापा	मछली के भोजन के समान बैक्टीरिया के लिए एक उत्कृष्ट माध्यम के रूप में कार्य करता है जो पौधों के रोगजनकों का विरोध कर सकता है। प्रोलीन में समृद्ध है।
Ghee	Same as animal fat
घी	पशु वसा के समान

Hemp fibre	Used for making smoke
गांजा फाइबर	धुआँ बनाने के लिए उपयोग किया जाता है
Hog fat	Same as animal fat
हह्ग वसा	पशु वसा के समान
Honey	Antimicrobial; protects wounds in plants/animals; proline present; honey- bee peptide apidaecin is antibacterial
शहद	रोगाणुरोधी, पौधों, जानवरों में घावों की रक्षा करता है। प्रोलीन उपस्थित, शहद- मधुमक्खी पेप्टाइड एपिडेसिन जीवाणुरोधी है
Horse hair	High amounts of keratin; used in fumigation
घोड़े के बाल	कीरातिन की उच्च मात्रा, धूमन में इस्तेमाल किया जाता है।

वृक्षायुर्वेद का कुणपजल

- क्या है वृक्षायुर्वेद का कुणपजल
- कुणपजल का संरूपण (उवकपपिबंजपवद)
- हर्बल कुणपजल
- हर्बल कुणपजल बनाने की विधि
- हर्बल कुणपजल के उपयोग की विधि
- हर्बल कुणपजल की विशेषताएं और जैविक खेती में उपयोग
- हर्बल कुणपजल के उपयोग से किसानों का मिली सफलता की

क्या है कुणपजल ? : भूमि के नीचे भंडारित किये गये सुअर का मल, हड्डियों का मज्जा, मांस, भेजा तथा रक्त का जल के साथ मिश्रण को कुणपजल कहते हैं। इसका नाम वैद्य सुरपाल ने कुणप रखा जिसका संस्कृत में अर्थ बहुत अधिक सणांध/बदबू वाला।

लगभग १००० वर्ष पूर्व सुरपाल द्वारा रचित पाण्डुलिपि वृक्षायुर्वेद में वर्णित कुणपजल बनाने की मूल विधि

- मछली, मेढ़ा, बकरा तथा अन्य सींग वाले पशुओं की वसा, मज्जा तथा मांस को एकत्रित एवं भंडारित करें।
- इन्हें पानी के साथ मिश्रित करने के पश्चात् उबालें तथा पर्याप्त मात्रा में भूसा मिलाने के पश्चात् लोहे के तेलयुक्त बर्तन में मिश्रण का इकट्ठा करें।
- लोहे के पात्र में उबालने के पश्चात् तिल की खली, भीगी हुई उड़द की दाल, शहद एवं थोड़ा सा घी भी मिलाएं।
- उपर्युक्त वस्तुओं को अनिश्चित मात्रा में लिया जा सकता है क्योंकि इसके लिए कोई पक्का माप उपलब्ध नहीं है।
- यह कुणप वृक्षों लिए बहुत अधिक पोषक होता है।

स्रोत : सुरपाल द्वारा लिखित वृक्षायुर्वेद (वनस्पति जीवन का विज्ञान) अुनवादक (हिन्दी संस्करण, २००३) डा. शिवचरण लाल चौधरी, एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन राजस्थान चैप्टर, उदयपुर, राजस्थान

वैद्य सुरपाल अपनी पुस्तक वृक्षायुर्वेद में स्पष्ट कहते हैं कि "ऐसा प्राचीन मनीषियों द्वारा कहा गया है और मैं (सुरपाल) भी सत्यापन करने के पश्चात् यही बात दोहराता हूं।"

कुणपजल का संरूपण (उवकपपिबंजपवद)

क्र.सं.	सामग्री का नाम	मात्रा
१.	पशु मांस (ताजा या बांसी, लेकिन सड़ा हुआ नहीं)	२ कि.ग्रा.
	या अण्डे (ताजा या पुराने)[१]	२५
	या सोयाबीन आटा या बड़ी + पनीर	१ कि.ग्रा. + १ कि.ग्रा.
	या मछली आटा[१]	२ कि.ग्रा.
	या पनीर[१]	२ कि.ग्रा.
२.	मज्जा (कुचली हुयी हड्डियां) या सोयाबीन से निर्मित टोफू[१]	०.५ कि.ग्रा. / १ कि.ग्रा.
३.	चावल का भूसा या किसी भी धान्य का भूसा	१ कि.ग्रा.
४.	उपलब्ध खली	१ कि.ग्रा.
५.	पशुओं का गोबर	१० कि.ग्रा.
६.	पशुओं का मूत्र	१५ लीटर
७.	काला चना (वैकल्पिक)	०.५ कि.ग्रा.
८.	शहद	०.२५ कि.ग्रा.
९.	घी	०.२५ कि.ग्रा.
१०.	दूध	१ लीटर

[१]किसी भी वृक्षायुर्वेद पांडुलिपि में इन सामग्रियों का उल्लेख नहीं है।

स्त्रोतः एशियन एग्री-हिस्ट्री शोध पत्रिका (जर्नल), वर्ष २०१२, खंड १६, अंक १, पृष्ठ संख्या ४५-५४.

संरूपित कुणपजल बनाने की विधि

उक्त तालिका संख्या ३ के क्रम संख्या १ से ४ तथा ७ पर उपलब्ध विभिन्न घटकों को लगभग ५ लीटर या अधिक पानी में उबालें। ठण्डा होने के बाद उसको २०० लीटर के ड्रम में स्थानान्तरित करें उसके उपरान्त क्रम संख्या ५, ६ तथा ८-१० के मध्य इंगित घटकों को ड्रम में मिलाएं तथा पानी मिलाकर ड्रम को १०० लीटर तक भर लें। ड्रम का ढक्कन ठीक से बन्द कर दें। ड्रम में उपलब्ध १०० लीटर मिश्रण को सुबह शाम दो बार नियमित रूप से १ से ३ माह तक घुमाएं।

इसके उपरान्त मिश्रण को छानने से १२ घंटे पहले हिलाएं। छिड़काव करने के लिए मिश्रण बारीक छल्नी से छानें। मिश्रण को छानने के उपरान्त पानी मिलाकर २०० लीटर तक भर लें। इस कुणपजल के फसलों के बढ़वार, फूलों के आने और फलों के बनने में सकारात्मक प्रभाव देखे गये हैं। कृषकों को सलाह दी जाती है कि पहले ड्रम का कुणपजल खत्म हो उससे पहले ही दूसरे ड्रम में कुणपजल तैयार कर लेना चाहिए।

हर्बल कुणपजल बनाने की विधि

तालिका में कुणपजल बनाने की सामग्री दी गई है। इस सामग्री को २०० लीटर क्षमता वाले टाईट ढक्कन युक्त प्लास्टिक ड्रम में डालना है। ड्रम में पहले गाय का गोबर और मूत्र डालें और ठीक से मिलाएं और उसके बाद सरसों या नीम की खली, अंकुरित साबुत उड़द और कुटा हुआ गुड़ डालकर मिलाएं सामग्री हिलाने के लिए इसमें १०-२० लीटर पानी मिला लें और ठीक से सीधा और उल्टा घुमाएं, इसमें बाद में अच्छे से कटे खरपतवार और अन्य औषधीय पौधे भी डालकर मिलाएं और पानी का आयतन लगभग १५० लीटर कर लें तथा ढक्कन टाईट बंद करके रख दें। रोज दिन में दो बार (सुबह व शाम) मोटे डंडे या लाठी से ड्रम की सामग्रियों को ठीक से मिलाएं (५ मिनट गोलाकार दाईं ओर और ५ मिनट गोलाकार बाईं ओर घुमाएं) और फिर ढक्कन बंद करके रख दें। रोज सुबह और शाम ड्रम खोलने के बाद बुलबुले उठते हुए दिखेंगें, इसका मतलब है कि किण्डवन प्रक्रिया हो रही है और कुणपजल तैयार हो रहा है। ऐसा गर्मियों में १०-१२ दिन और सर्दियों में १५-२५ दिन करें और हर्बल कुणपजल तैयार हो जाता है। जिस दिन सुबह ड्रम मैं बुलबुले बनने बंद हो जाये तो समझ लें कि किण्डवन की प्रक्रिया पूर्ण हो गयी है और हर्बल कुणपजल तैयार हो गया। इसको कपड़े से छान लें और उपयोग करें। छिड़काव में प्रयोग में लाने के लिए इसे अच्छी तरह से दोबारा छानें जिससे स्प्रेयर के नोज़ल में कोई अवरोध न हो। इस तरह से तैयार हर्बल कुणपजल को उपयोग हेतु ६-१२ महीने तक आसानी से रख सकते हैं।

हर्बल कुणपजल बनाने की सामग्री

क्र.सं.	सामग्री	मात्रा
१.	गाय का गोबर	१५-२० किग्रा.
२.	गोमुत्र	१५-२० लीटर
३.	गुड़ (पुराना)	२ किग्रा.
४.	अंकुरित साबुत उड़द	२ किग्रा.
५.	सरसों-नीम खली	२ किग्रा.
६.	स्थानीय खेत के बारीक कटे हुए या ओखली में कुटे हुए खरपतवार	२० किग्रा.
७.	पानी	१०-२० लीटर

- इसके अतिरिक्त धान की भूसी (३-५ किग्रा.) का भी प्रयोग करें क्योंकि इसमें उपलब्ध सिलिका बीजों को खेत में अंकुरण और उद्भव (भूमि से उभार या ऊपर आने की प्रक्रिया) के समय अंकुरित पौधों की सुरक्षा और खेत में पौधों को रोग जनकों और कीटों से बचाता है। धान की भूसी को पहले ही अलग एक बड़े बर्तन में पानी मिलाकर १५-२० मिनट उबालें और दो दिन तक ठंडा करके छान लें तथा इसे जिस ड्रम में हर्बल कुणपजल बना रहे हैं उसमें मिलायें।
- जिन किसान भाइयों के यहाँ दूध या मट्ठा (छाछ) है वे १-१ लीटर दोनों भी डाल सकते हैं। मट्ठा ५-७ दिन पुराना है तो और अच्छा है। यदि खेत में कीट अधिक आते हैं तो नीम की खली का प्रयोग करें और खरपतवार के साथ नीम की पत्तियों को भी काट कर ड्रम में डाल सकते हैं। यदि आपके इलाके में फफुंदीजनित रोग लगते हैं तो उनके लिए आक, अरण्डी (कैस्टर बीन), जामुन के पौधों के पत्तों और बारीक टहनियों भी बारीक काटकर डालें।
- तैयार मूल हर्बल कुणपजल को (१ : १० अनुपात में) खेत में पलेवा के पानी के साथ या खेत में सिंचाई पानी के साथ (फर्टीगेशन) या छिड़काव के लिए प्रयोग करना चाहिए। खेत की तैयारी में पहली जुताई से पहले हर्बल कुणपजल का पलेवा के पानी के साथ अवश्य प्रयोग करें क्योंकि इससे भूमि का पोषण और सुधार अच्छा होगा।

हर्बल कुणपजल की विषेषताएं और जैविक खेती में उपयोग

हर्बल कुणपजल एक पूर्ण द्रवित खाद, भूमि (मिट्टी) पोषक, मिट्टी में मित्र जीवाणुओं और केंचुओं की वृद्धि यानि एक अच्छा 'मृदा सुधारक' और मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाने वाला यानि 'मृदा स्वास्थ्य सुधारक', पौध पोषक, जैविक कीटनाशक और जैविक फफूंदीनाशक है। हमनें अपने अनुभवों से यह भी पाया है कि यह पौधों की हल्के पाले और सूखे से भी काफी हद तक रक्षा करता है। हमारी मान्यता के अनुसार यही अकेला केवल एक ऐसा देशी, द्रवित, जैविक, पूर्ण किण्वित/खमीरयुक्त पदार्थ है जो जैविक खेती को सफल बना सकता है। रोचक बात यह भी है कि किसान को साधारणतः सफल जैविक खेती के लिए इसके अलावा किसी और जैविक पदार्थ (वस्तु), विशेषकर मित्र जीवाणुओं जैसे ट्राइकोडर्मा, बवेरिया आदि, सूक्ष्म पोषक तत्वों, कीट एवं फफूंदी नाशकों के प्रयोग करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। दूसरी बात ये है कि जैविक कुणपजल की संरचना किसान स्वयं ही जैविक खेती की समस्या अनुसार जैसे कोई विशेष रोग या कीट की रोकथाम के लिए आवश्यकतानुसार आसानी से फफूंदीनाशक या कीटनाशक पौधों को कुणपजल बनाते समय सम्मिलित करके कर सकते हैं। हमारे अनुभव के अनुसार ये कभी किसी विशेष स्थिति में ही होगा जबकि किसान को हर्बल कुणपजल के अलावा अलग से किसी जैविक कीटनाशक या फफूंदीनाशक के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसी विशेष स्थिति के लिए हमने आपके लिए कुछ वृक्षायुर्वेद-आधारित नुस्खों का वर्णन एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन (एएएचएफ) की प्रसार पुस्तिका - १ में किया था जो किसान भाई स्वंय बनाकर प्रयोग में ला सकते हैं।

कुणपजल के उपयोग की विधि

कुणपजल का विभिन्न फसलों पर निम्न प्रकार से प्रयोग करें। कुणपजल को १ : १० अनुपात में पानी में मिलाकर प्रयोग में ला सकते हैं।

- कुणपजल से बीज/गन्ना सेट्स संस्कार

- कुणपजल से नर्सरी संस्कार
- कुणपजल से नर्सरी पौध संस्कार
- कुणपजल से खेत संस्कार (सिंचाई के पानी में मिलाकर)
- हर सिंचाई के पानी के साथ-साथ कुणपजल को मिलाकर फसलों में सिंचाई करना
- कुणपजल का पौधों पर छिड़काव प्रत्येक २० से २१ दिनों बाद

वृक्षायुर्वेद के सिद्धान्तों के आधार पर फसल की पैदावार बढ़ाने एवं रोग प्रबंधन पर वृक्षायुर्वेद के जानकारों द्वारा अनुभव किये हुए नुस्खे

रोग/कीट**(Disease/Pest)**	नुस्खा**(Prescription)**	टिप्पणी**(Notes)**
बीज तथा पौध सड़न (Seed and seedling rots)	पशुओं के सूखे या गीले गोबर का पानी में १०: घोल बनाकर उसमें बीजों को १० मिनट भिगोकर धूप में सुखायें।	बीज के एक से अधिक बैच को एक ही घोल से उपचारित किया जा सकता है।
पत्ती तथा तना अंगमारी (फंफूदीजनित) [Leaf and stem blights (fungal)]	30% कुणपजल. मवेशी के मूत्र में 3 दिनों तक किण्वित क्लीरोडेंड्रम की जड़ों का एक्सट्रेक्ट	अपेक्षित रोग के पहले, १० दिनों के अंतराल में पत्तियों पर छिड़कें।
पत्ती तथा तना अंगमारी (जीवाणुजनित) [Leaf and stem blights (bacterial)]	30% कुणपजल. पिसी सफेद सरसों (१ किग्रा०). दही (५ किग्रा०) का मवेशी के १० लीटर मूत्र में ३ दिन किण्वन करें। उसके बाद घोल का आयतन २०० लीटर कर लें।	१० दिन के अंतराल पर और हर बारिश के बाद हवाओं की दिशा में स्प्रे करें।
मृदुरोमिल आसिता (Downy mildews)	30% कुणपजल. पीसी हुई सरसों (१ किग्रा०) शहद. दूध को तीन दिन तक मवेशी के मूत्र में किण्वित करें।	घोल को अपेक्षित रोग से पहले १० दिनों के अंतराल में पत्तियों पर छिड़कें। सरसों, शहद, दूध के बजाय, वैकल्पिक रूप में मवेशी के मूत्र में किण्वित पंचमूल' का उपयोग कर सकते हैं।
चूर्णिल आसिता (Powdery mildews)	30% कुणपजल. 10% दूध का 68% + 2% शहद	फूल आने से ठीक पहले १० दिनों के अंतराल में पत्तियों पर छिड़कें।
बीजों द्वारा फैलने वाला कण्डुवा रोग (Seed transmitted smuts both internally and externally seed borne)	50% ३ दिन पुराना मवेशियों का दूध तथा 50% मवेशियों के मूत्र के मिश्रण में बीज को रात भर भिगोएं।	मवेशी के सूखे गोबर के पाउडर से बीज को लेपित करें ताकि बीज आसानी से बोया जा सके।
पेड़ों की पत्तियों में बिमारियां तथा कीट (Leaf diseases and pests of trees)	बालों, नाखुनों, सफेद सरसों के या/और सींग के पाउडर के मिश्रण के साथ वृक्षों का धूमन करें।	सूखे गोबर या भांग के रेशे पर सामग्री रखें। प्रति पेड़ एक से दो धूमित करने के उपकरण उपयोग करें।
पर्ण गेरूई (Foliar rust not for white rust)	30% कुणपजल + 60% दूध. पिसी हुई सफेद सरसों को मवेशी के 10% मूत्र में ३ दिन तक किण्वन करें।	फूल आने से ठीक पहले १० दिनों के अंतराल में पत्तियों पर छिड़कें।
सूत्र कृमि (Nematodes on roots)	नीम की छाल और पिसा हुआ विड़ंगा को मवेशियों के 70% मूत्र में ३ दिनों तक किण्वन करें तथा ३ दिन पुराने किण्वित घोल में बीज रात भर भिगोएं।	पौधे के आधार (जड़) के आसपास मिट्टी को पौधे के आकार के अनुसार (५ से २० लीटर मात्रा) से भिगोएं।

विषाणु जनित रोग (Viral diseases of perennials)	30% कुणपजल में क्लीरोडेंड्रम की जड़ों और पत्तियों का 60% मवेशी मूत्र तथा 10% दूध में 3 दिन पुराना किण्वित घोल मिलाकर कुल 200 लीटर घोल तैयार करें।	कुछ पौधों या पेड़ों में लक्षण दिखाई देते ही साप्ताहिक छिड़काव शुरू करें; बाद में स्प्रे को २ सप्ताह के अंतराल तक कम किया जा सकता है। वैकल्पिकः हर २ सप्ताह में ५ ली० घोल पेड़ों के चारों ओर मिट्टी में ड़ालें।
स्रोत : डा. वाई. एल. नेने, एशियन एग्री-हिस्ट्री, अंक १६, नं. १, २०१२ (पेज ४५-५४) 'पंचमूल : बेल (*Aeglemarmelos*) ख्सोनापाठा (*Oroxylumindicum*), अग्निमंथा/अरानी (*Clerodendrum phlomidis*), गम्भरी (*Gmelina arborea*), पाधल (*Stereospermum Suaveolens*)		

चाय की बागवानी हेतु अनुभवों के आधारपर वृक्षायुर्वेद व्यवहारिक नुस्खे

एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन ने भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के चाय बागानों में चाय की जैविक खेती के लिए वृक्षायुर्वेद आधारित ज्ञान का प्रयोग किया। इसमें अरुणाचल प्रदेश, आसाम और उत्तरी पश्चिमी बंगाल मुख्य रहे हैं। हर्बल कुणपजल के अलावा और भी नुस्खों का प्रयोग किया गया जो अति लाभदायक रहे और जिनके प्रयोग से चाय की अच्छी कीट और रोगमुक्त फसल ली जा सकी और चाय उत्पादन बढ़ाया जा सका। ध्यान में रखने वाली बात ये है कि चाय की फसल में कई रोग और कीट लगते हैं जो कि चाय की जैविक खेती में बाधक हैं और जिनकी रोकथाम आवश्यक हो जाती है यदि आप चाय की सफल जैविक खेती करना चाहते हैं। हमारे अनुभवों से ये पाया गया है कि ऐसा वृक्षायुर्वेद आधारित नुस्खों के प्रयोग से संभव है। यहां पर हम उन्हीं कुछ मुख्य नुस्खों का वर्णन कर रहे हैं, जिससे चाय के किसान अपनी जैविक खेती में लाभ उठा सकें।

हर्बल कुणप्पा एक किण्डवित द्रवित खाद, वृद्धि प्रोत्साहक एवं कीटनाशक गुणों से युक्त मिट्टी में डालने या पर्णीय छिड़काव दोनों ही रूप में चाय बागान पर प्रभावी पाया गया। हर्बल कुणप्पा की सार्वभौमिकता का प्रमाण है कि कृषि आधारित उद्योगों के सभी ठोस अवशिष्टों से तरल खाद (औषधीय कुणप्पा) बनाकर उपयोग करने के सभी प्रयोगों से सफल परिणाम प्राप्त हुए। स्थानीय खरपतवारओं, का उपयोग हर्बल कुणप्पा की एक प्रमुख विशेषता है। अबाली चाय परिसम्पदा में वृक्षायुर्वेद आधारित जिन १२ प्रकार के विभिन्न हर्बल कुणप्पा का निर्माण कर प्रयोग किया गया, वे निम्न प्रकार हैं (बाल्मीकि श्रीनिवास अयंगर्य, २००६)

१. **सस्यगव्यः** जिसे स्थानीय खरपतवारों एवं गाय से प्राप्त गोबर को पानी में किण्डवित कर तैयार किया गया तथा इसका चाय बागानों में प्रयोग कर उत्तम परिणाम प्राप्त किये।
२. **धान्यगव्यः** धान के भूसे को गोमूत्र तथा गोबर के साथ अलग-अलग किण्डवित कर चाय बागानोंमें प्रयोग किया व अच्छे परिणाम प्राप्त किये।
३. **चाहगव्यः** चाय के अपशिष्ट को गोबर व जल में किण्डवित कर प्राप्त प्रभावशाली तरल खाद से चाय के बागानों से बेहतर परिणाम प्राप्त किए गए।
४. **कंटकड़ी** (सोलेनम जैंथोकार्पम) नामक पौधे के बीजों को गोमूत्र में किण्डवित कर प्राप्त द्रव्य से चाय के सामान्य कीड़े जैसेः- हरी मक्खी, लाल मकड़ी, थ्रिप्स आदि नियंत्रित हुए।
५. **चिम्मीगव्यः** फर्न के पौधों को गोबर में किण्डवित कर प्राप्त तरल द्रव्य को जिया स्टेट चाय बागान में कीटनाशक व पोषण हेतु सफलतापूर्वक परखा गया एवं उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए।
६. **टी यूरिनः** चाय के कारखानों से प्राप्त गंदे पानी एवं ठोस अवशिष्ट से किण्डवन के उपरान्त क्रमशः टी यूरिन टी डंग प्राप्त कर चाय बागानों में प्रयोग कर औषधीय कुनप्पा से सुंदर परिणाम प्राप्त हुए।
७. **सरशापा (सरसों) कुणप्पाः** सरसों की खली एवं गोबर/चाय यूरिन से किण्डवन उपरांत तैयार फफूंदीनाशक अत्यधिक प्रभावशाली पाया गया।
८. **भारिजा कुणप्पाः** अटेंगा नामक पग स्थानीय फल का पानी में किण्डवन से प्राप्त कुणप्पा का प्रयोग पोषण व फसल सुरक्षा हेतु अत्यधिक प्रभावशाली पाया गया।
९. **चकोत्ता कुणप्पाः** रबक टेंगा (स्थानीय फल) के किण्डवित तरल द्रव्य को मैग्नीशियम वह सल्फर की कमी पर काबू पाने हेतु प्रभावी पाया गया। चक्कोता कुणप्पा व चिम्मीगव्य के मिश्रण का छिड़काव चाय बागानों की उत्पादकता हेतु बड़ा प्रभावशाली पाया गया।
१०. चतुर्गव्यः गाय के चार उत्पादों (घी को छोड़कर) के किण्डवन से प्राप्त उत्पाद का छिड़काव, प्रभावी कीटनाशक व पौधों हेतु वृद्धिकारी पाया गया।

११. मत्स्य कुणप्पाः मछलियों को उबालकर किण्डवित कर उसे चाय के बागानों में प्रयुक्त करने से हेलोपेल्टिस थीवोरा जैसी सख्त चुनौती पर विजय प्राप्त की जा सकी।

१२. इण्डसाफरीः मछली के अपशिष्ट को गोबर, पानी एवं गोमूत्र के साथ दो दिन तक किण्डवित कर सस्यगव्य के साथ मिलाकर किये गये पर्णीय छिड़काव से प्रभावी पोषण व कीट नियंत्रण प्राप्त हुआ।

१३. इसके अतिरिक्त चाय बागानों में कुणप्पा के उक्त प्रयोग को में काली हल्दी, अदरक, लहसुन का गोमूत्र में किण्डवन कर भी प्रयोग किया गया जोकि फफूंदीनाशक व कीटनाशी व वृद्धि कारक भी पाए गए।

१४. इसके साथ-साथ विश्ववल्लभ के सूत्र ५१ (अध्याय ८) के अनुसार पौधों की अधिकांश बीमारियों की दवा दूध के घोल का छिड़काव करने से नियंत्रित की गई।

१५. इसके अतिरिक्त दूध के घोल के छिड़काव से बिजली से प्रभावित पौधे पुनर्जीवित होते हुए देखे गये।

प्रारंभ में वृक्षायुर्वेद के उक्त परीक्षणों को स्थानीय लोगों व वैज्ञानिकों ने बड़ी शशंकित भाव से बरता, व आलोचनाएं भी की परंतु प्रयोगों की सफलता के सिलसिले से आलोचनाएं लुप्त हो चुकी, और लोग मूक दृष्टा हो गए थे। इन प्रयोगों की व्यवहारिकता के फलस्वरूप चाय में इतने कम समय में अवशेष विश्लेषण के उपरांत शून्य अवशेषों की रिपोर्ट, प्रयोगकर्ता के आकांक्षाओं से भी परे थी।संभवतः यह इस शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार कि "पशुओं का मूत्र व विस्टा विष को समाप्त कर देता है" के कारण हुआ था।

जैविक खेती का मूलभूत उद्देश्य पौध उत्पाद में अवशेषों के स्तर को कम से कम करना है। इस प्रकार जैविक चाय की खेती में वृक्षायुर्वेद के तरीके दक्ष, उपयोगी व सफल पाए गए और २००५ के चाय के मौसम की समाप्ति तक अबाली चाय परिसम्पदा में चाय की खेती की वृक्षायुर्वेद विधियां स्थापित हो गई और इनकी तकनीकी व्यवहारिकता सिद्ध हो चुकी है। वृक्षायुर्वेद की विधियां बहुत ही सरल तथा प्रत्येक समय पर व्यवहार्य और टिकाऊ है।

हर्बल कुणापजल के उपयोग से किसानों की मिली सफलता

हर्बल कुनापजल का उपयोगः जिला अल्मोड़ा के नवाचारी कृषक की सफलता की कुंजी

श्री रंजीत सिंह धामस गॉव, विकासखण्ड हवालबाग, जिला अल्मोड़ा में एक अति उत्साही एवं नवचारी कृषक हैं भारत सरकार वन, पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा वित्त पोषित हिमालयी क्षेत्र के अध्ययन हेतु राष्ट्रीय मिशन के माध्यम से गोबिन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पंतनगर में चलाई जा रही परियोजना "एक्सप्लोरिंग लाइवलीहुड पोटेंशियल आफ वाइल्ड ग्रोइंग स्टिंगिग नीटल इन उत्तराखण्ड" नामक परियोजना कि अन्तर्गत वृक्षायुर्वेद आधारित हर्बल कुनाप जल की जागरूगता, उसकी विशेषताएँ, बनाने का तरीका एवं विभिन्न फसलों में उसका उपयोग विषय पर प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन सत्र भाग लेने के उपरान्त श्री रंजीत बहुत ही प्रभावित हुए। प्रशिक्षण लेने के तुरन्त बाद ही पोस्ट कोविड़ समय में उन्होने अपनी ५० नाली जमीन जो काफी रेतीली में फल, सब्जी, फूल आदि सभी प्रकार की फसलों हेतु कुनाप जल तैयार कर उनमें उपयोग किया। वर्तमान में वे सेब, अखरोट, टमाटर, गेंदा, अदरक, हल्दी, मटर, शिमला मिर्च, ग्लोड़िओलस, बीन, प्याज आदि फसलों पर कुनाप जल का १० से १५ दिन के अन्तराल पर लगातार प्रयोग कर रहे हैं तथा फसलों की गुणवता तथा उपज की बढ़ोत्तरी देख कर बहुत खुश हैं। गॉव के अन्य कृषक रंजीत सिंह को रेतीली जमीन पर हर प्रकार की लहलहाती फसल देख कर आश्चर्य में हैं। उन्होने पहले ही वर्ष में हर्बल कुनाप जल के प्रयोग से मटर, प्याज, गेंदा तथा टमाटर की काफी अच्छी उपज प्राप्त की है श्री रंजीत सिंह हर्बल कुनाप जल के प्रयोग से काफी प्रसन्न हैं एवं अपने आस पास के कृषकों को हर्बल कुनाप जल के प्रयोग हेतु प्रेरित कर रहे हैं जो कि सफल एवं टिकाऊ जैविक खेती की एक कारगार तकनीकी है।

टमाटर में भारी शाखाएं और फल　　शिमला मिर्च　　गेंदे के फूल

कुनापजल का प्रयोगः महिला मंगल दल, गॉव-लोध, ब्लॉक-तालुका, सफलता की कहानी,

हंसी नेगी (मो० 9411113420) अध्यक्ष महिला मंगल दल, ग्राम - लोध, ब्लाक ताकुला जिला अल्मोडां, एक जागरूक व प्रगतिशील महिला कृषक है। "जंगली बिच्छु घास (आर्टिका डियोका) से आजीविका की सम्भावना" परियोजना के अन्तर्गत (वन, पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा वित्त पोषित) हर्बल कुनापजल का फसलों पर प्रयोग परियोजना की शुरुआत, २०२० सितम्बर माह में लोध गाँव से की गयी थी। महिला मंगल दल के समूह द्वारा जागरूकता अभियान में प्रतिभाग किया गया उसके उपरान्त प्रशिक्षण कार्यक्रम में

महिला मंगल दल की अध्यक्षा हंसी नेगी के नेतृत्व में इस कार्य को लिया गया। सभी महिला सदस्यों द्वारा कुनापजल का प्रयोग प्याज, लहसुन की फसलों पर किया गया। प्याज की पौध को लगाने से पूर्व उसकी जड़ों को कुनापजल में डुबाकर लगाया तथा १५ दिनों के अन्तराल पर छिड़काव भी किया गया। आधा नाली जमीन से १.५ कुन्तल प्याज तथा लहसुन की ४x४ मी जगह से ३० किलो लहसुन का उत्पादन प्राप्त किया गया। प्याज और लहसुन का आकार एवं गुणवत्ता उत्तम पायी गयी। सभी महिला मंगल दल की सदस्या कुनापजल के उपयोग से प्राप्त प्याज व लहसुन की उपज तथा गुणवत्ता से खुश भी। उनके द्वारा अन्य फसलों जैसे कद्दु वर्गीय बेलों, टमाटर, बैंगन इत्यादि पर भी इसका प्रयोग किया गया है। अभी तक सन्तोषजनक बढ़वार हो रही है व उसके अच्छे परिणामों को प्रतिक्षा की जा रही हैं।

आलू प्याज

किसान आनंद मणि भट्ट (मोबाइलः +91-78958-75666), भीमताल, नैनीताल जिले के अल्चौना ब्लॉक के एक बहुत ही अभिनव किसान है। ये अपने खेत में आलू, फूलगोभी, टमाटर, मटर और अदरक पर हर्बल कुणपजल का उपयोग करके जैविक खेती कर रहे है। श्री आनंद मणि भट्ट हर्बल कुणपजल का उपयोग कर बहुत संतुष्ट हैं तथा मटर और टमाटर की फसल से प्राप्त अनुभव के बाद उन्होंने हर्बल कुणपजल के उपयोग को अन्य कृषकों के मध्य काफी प्रोत्साहित किया। पौधों की ऊंचाई और टमाटर की शाखाओं के साथ-साथ मटर के पौधों में भी काफी अच्छी बढ़वार देखी गई। श्री भट्ट ने अक्टूबर २०१९ के दौरान एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउंडेशन (एएएचएफ),पंतनगर के मुख्यालय में आयोजित कार्यशाला के दौरान हर्बल कुणपजल के बनाने की विधि और उपयोग पर प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उन्हे उत्कृष्ट कृषि विधियों का खेतों में किए गए उपयोग के लिए उत्तराखंड सरकार ने वर्ष २०१९ में कृषि भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया था।

जैविक किसान श्री प्रमोद गुणवंत (मोबाइलः +91-63982-26224) नैनीताल जिले के रामगढ़ ब्लहक के सिमराड़ गाँव के एक उत्साही जैविक किसान हैं। उन्होंने आडू और ८ वर्षीय कीवी फल के पौधों में हर्बल कुणपजल के उपयोग से फलों की उपज में कई गुना वृद्धि प्राप्त की। कीवी पादपों पर हर्बल कुणपजल के उपयोग से पौधों में उत्कृष्ट वृद्धि के साथ-साथ अत्यधिक फूल और फल भी प्राप्त हुए। साथ पौधों पर किसी भी प्रकार का रोग और कीट-पतंगों का प्रभाव नहीं हुआ। सामान्य रूप से १०-१२ किलोग्राम कीवी फल के बजाय जो कि उनके और उनके पिता ने पिछले वर्षों में इस पौधे से तोड़े थे, वर्ष २०२० में हर्बल कुणपजल के उपयोग के बाद लगभग १०० किलोग्राम स्वस्थ फल प्राप्त हुए। यहां यह भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि श्री गुणवंत ने भी २०२० में अपने आडू के पेड़ों से कई गुना अधिक पैदावार प्राप्त की थी (वृक्षायुर्वेद समाचार (२०२०) वह्ल्यूम. १ नंबर १)।

श्री अनिल पांडे (मोबाइलः +91-94113-78462) हल्दीचौड़, जिला नैनीताल के एक प्रगतिशील और अभिनव जैविक किसान है। ये अपने खेत में हर्बल कुणपजल की तकनीकी का उपयोग कर रहे है फसल उत्पादन और फसल सुरक्षा हेतु क्षेत्र की विभिन्न फसलों, फलों और सब्जियों में हर्बल कुणपजल के उपयोग का अनुभव प्राप्त कर रहे है। उनके अनुभव के अनुसार कुणपजल का उपयोग लघु और सीमांत किसानों के लिए कम लागत वाली जैविक कृषि तकनीक है।

रघुबीर सिंह (मोबाइलः +91-94571-03737), जिला फिरोजाबाद में ब्लहक शिकोहाबाद के छोटे से शहर मौजा के ग्राम नगलापुलाल के ६७ वर्षीय किसान, एक बहुत ही उत्साही हर्बल कुणपजल कृषक है क्योंकि वे इसे बड़ी मात्रा में तैयार करते हैं और विभिन्न फसलों में इसका उपयोग करते हैं इन फसलों को वे अपने ६.५ बीघा (१.१ एकड़) के खेत में उगाते हैं। इन फसलों में कद्दू, कोलोकेसिया, हल्दी, लौकी, ककड़ी, हरी बीन्स, मूंगफली, नींबू, अनार और बेल फल (एलेग मार्मेलोस) आदि शामिल हैं। वे वर्मीकम्पोस्ट को भी तैयार कर अपने खेत में उपयोग करते हैं। उन्होंने अक्टूबर २०१९ में पंतनगर में वृक्षायुर्वेद कार्यशाला में भाग लिया था और हर्बल कुणपजल के निर्माण प्रक्रिया और उपयोग को सीखा था। श्री रघुबीर सिंह ने फैजाबाद जिले में विभिन्न सब्जियों और फलों आदि की अनेक प्रदर्शनियों में भाग लिया और हर्बल कुणपजल के उपयोग के साथ अपनी संगठित रूप से उत्पादित सब्जियों और फलों को प्रदर्शित किया।

पूरन सिंह बोरा (मोबाइलः +91-95364-45538), जिला अल्मोड़ा के चौना गाँव के एक प्रगतिशील, व्यापारिक किसान ने "कुणपजल अपनाओ धरती बचाओ" का नारा दिया है। वे इस बात पर जोर देते है कि हमें अपनी पीढ़ियों को सुरक्षित करना है तो हमें अपनी भूमि पर हर्बल कुणपजल का उपयोग कर उसे सुरक्षित करना होगा। उन्होंने अपनी टमाटर की फसल में हर्बल कुणपजल का इस्तेमाल किया और सबसे अच्छी गुणवत्ता वाले टमाटर के फल से दोगुनी पैदावार का दावा किया।

"वृक्षायुर्वेद का कुणपजल अपनाओ अपनी खेती बचाओ"

४. स्वर्गीय डा. उत्तम शास्त्री पाठक जी के बिना संस्कृत जगत अधूरा

महंत रोहित शास्त्री (ज्योतिषाचार्य)

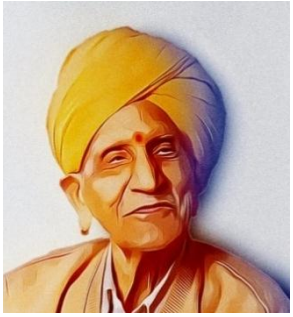

अगर हम देववाणी संस्कृत के जगत् की बात करें तो जम्मू कश्मीर में देववाणी संस्कृत के विद्वान स्वर्गीय डा. उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी के बिना संस्कृत जगत् अधूरा है। जम्मू कश्मीर पूरे विश्व में एकमात्र ऐसा राज्य है जहां अतीत में सबसे लंबे समय तक न सिर्फ पठन-पाठन अपितु संपर्क भाषा के रूप में भी देववाणी संस्कृत का प्रयोग हुआ। जम्मू कश्मीर की भूमि शैव दर्शन का सनातन केंद्र रही है। इसी पावन पवित्र भूमि पर प्रत्य विज्ञान दर्शन के संस्थापक आचार्य अभिनव गुप्त, महाकवि कल्हण, महाकवि बिल्हण, विष्णु शर्मा आदि हैं। जिन आचार्यों ने अपने कर्मरूपी तप से न केवल भारतवर्ष को अपितु संपूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में पिरोने का मार्ग प्रशस्त किया है।

डा. उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी का जन्म १५ जनवरी सन् १९२३ ई. में बसहोली, जम्मू कश्मीर में हुआ था। उनके पिताजी का नाम पंडित चूड़ामणि पाठक तथा उनकी माता जी का नाम श्रीमती कृपा देवी देवी जी था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा रघुनाथ पाठशाला में ही ग्रहण की और बाद में लाहौर विश्वविद्यालय से वह भारत छोड़ो आंदोलन के सक्रिय सदस्य रहे। जिसमें वह गम्भीर रूप से घायल हो गए और अमृतसर के अस्पताल में कई माह तक भर्ती रहे। वह भारत विभाजन के समय लाहौर में थे। उन्होंने गीता स्कूल कुरुक्षेत्र के प्रथम बैच शिक्षक के रूप में सेवाएं देने लगे। उसके उपरांत उन्होंने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से संस्कृत में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। जिसमे महाभारत में सांख्य योग का महत्व विषय रहा। उन्होंने आयुर्वेदाचार्य की उपाधि भी प्राप्त की थी। वह इंदिरा गांधी की तानाशाही के खिलाफ मुहिम के सदस्य भी रहे। उन्हें हरियाणा सरकार द्वारा शुभ्रज्योत्स्ना स्कीम के तहत सम्मानित किया गया। उनका विवाह श्रीमती प्रतिभा जी से हुआ। उनकी तीन बेटियां हैं और एक बेटा हैं।

डा. उत्तम चंद जी का जीवन बड़ा ही संघर्षमय रहा। उन्होंने दो बार प्रजा परिषद, जनसंघ के टिकट से तथा एक बार आजाद उम्मीदवार के रूप में चुनाव भी लड़ा। प्रजा परिषद और लोकतंत्र आंदोलनों में कई बार जेल भी गए। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं विश्व हिंदू परिषद का युद्ध स्तर पर कार्य किया। वह विश्व हिंदू परिषद के सरंक्षक स्वर्गीय अशोक सिंघल जी के बहुत करीबी मित्र रहे। उन्होंने दिल्ली एवं अन्य राज्यों में पंडित एवं पुरोहितों को शिक्षा देने की कक्षाएं भी चलाई। उन्होंने कालेज विद्यार्थियों के लिए संस्कृत व्याकरण का लेखन कार्य भी किया। वे संस्कृत संपादकीय बोर्ड के सदस्य भी रहे। उन्होंने सन् २००६ ई. में बसोहली में चूड़ामणि संस्कृत संस्थान की स्थापना की और जिसे संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से मान्यता प्राप्त है। सन् २०१७ को उनको देववाणी संस्कृत के प्रचार प्रसार के लिए श्री कैलख ज्योतिष एवं वैदिक संस्थान ट्रस्ट द्वारा पहले कैलख संस्कृत रत्न पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आयुर्वेद के साथ वह देववाणी संस्कृत के प्रख्यात विद्वान, संस्कृत सौन्दर्यशास्त्र के प्रतिपादक और युगपुरुष थे। वे कई दशकों से भी अधिक समय तक विभिन्न क्षेत्रों में जाकर अपनी ओजस्वी वाणी से लोगों को रूढ़ियों से मुक्त करने के कार्य में लगे रहे। कुछ समय से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और सन् २०२० ई. में ९ सिंतबर को उन्होंने ९८ वर्ष की आयु में शरीर का त्याग कर दिया।

डा. उत्तम चंद शास्त्री जी के निधन से जम्मू कश्मीर के लोगों को ही नहीं अपितु संस्कृत जगत् को अपूरणीय क्षति हुई है। उन्होंने संस्कृत भाषा के साथ सामाजिक क्षेत्रों में भी लोकप्रियता हासिल की थी। स्वर्गीय डा. उत्तम चंद जी का जीवन धर्म, मानव सेवा को समर्पित रहा। शास्त्री जी का जीवन व्यवहारकुशलता व कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान रहा। समाजसेवा को धर्म का अभिन्न अंग मानने वाले पाठक जी ने समाज के उत्थान के लिए कई कल्याणकारी कार्य किए। समाज के हितों की रक्षा में उनका योगदान सदैव ही प्रशंसनीय रहा। अगर सरकार डा. उत्तम चंद शास्त्री पाठक संस्कृत सम्मान, स्टेट अवार्ड देना शुरू करे तो संस्कृत सेवियों का मनोबल बढ़ेगा और ऐसे प्रयासों से प्रदेश में विलुप्त हुए संस्कृत धर्म-दर्शन की पुनर्प्रतिष्ठा सम्भव हो पाएगी। देववाणी संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति एवं परम्परा का ज्ञान अधूरा है। संस्कृत को जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है। संस्कृत भाषा के कई शब्द हिन्दी सहित अन्य कई भारतीय भाषाओं में भी प्रयोग किए जाते हैं। शब्दकोष संस्कृत से ही बढ़ता है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य सोचता है। इसलिए सोचने की भाषा को समृद्ध बनाने के लिए हमें स्वर्गीय डा. उत्तम चंद जी के दिखाए मार्ग पर चलना होगा। स्वर्गीय डा. उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी एवं उनके परिवार का भारत में संस्कृत भाषा के संवर्धन व विकास में अमूल्य योगदान रहा है। राष्ट्र में संस्कृत भाषा को अग्रसर करने में स्वर्गीय डा. उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी का समर्पण सुप्रसिद्ध है। इनसे पढ़े हुए छात्र आज प्रदेश सरकार एवं केंद्र सरकार में उच्च पदों पर पदस्थ हैं। युवा पीढ़ी भी स्वर्गीय डा० उत्तम चंद शास्त्री पाठक जी का अनुसरण कर प्रदेश एवं राष्ट्र संस्कृति संरक्षण में अपना योगदान दें।

५. वैदिक कृषि...सिद्धांत एवं विज्ञान

सुजीत चक्रबर्ती, सुमति नारायण एवं सुश्री आस्था

सृष्टि के आरंभ में ईश्वर ने ''वेद-ज्ञान'' सिद्धि प्राप्त ऋषियों को उनकी समाधि अवस्था में भाव-बोध द्वारा प्रदान किया जो कि कालांतर में चार वेद के स्वरूप लिखित रूप में संकलित किया गया है, जिन्हें विषयानुसार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के नाम से जाने जाते है । ईश्वर ने जिन ऋषियों को वैदिक ज्ञान प्रदान किया जो कालांतर में वेद ऋषि कहलाए, जैसे ऋगवेद का ज्ञान वेदऋषि अग्नि को, यजुर्वेद का ज्ञान वेदऋषि वायु को, सामवेद का ज्ञान वेदऋषि आदित्य को तथा अथर्ववेद का ज्ञान वेदऋषि अंगिरा को प्राप्त हुआ था । ईश्वर ने सत्य विद्याओं का यह ज्ञान-विज्ञान वेद ऋषियों को प्रदान करते हुए मनुष्य मात्र को यह दायित्व भी दिया है कि वह ईश्वर द्वारा रचित सृष्टि की रक्षा करते हुए उसका विकास एवं विस्तार कर सके । ईश्वर ने वेद ऋषियों के मध्यम से मनुष्य को प्रकृति के नियमानुसार किस प्रकार कृषि कार्य को सृष्टि के उत्थान के लिए निर्वहन करना चाहिए इसका ज्ञान ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के द्वारा प्रदान किया है जिसको वैदिक काल के ऋषि-मुनियों ने विस्तार से व्याख्या करते हुए तत्कालीन कृषकों द्वारा व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित करवाया है ।

प्रकृति के नियमानुसार वैदिक सिद्धांतों पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हुए कृषि कार्य करने से बिना अतिरिक्त व्यय के निम्न लाभ होते हैं...

- कृषि उत्पादन में वृद्धि
- उत्पाद की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता में वृद्धि
- व्यय में कमी के साथ ही उच्चतम दर अर्थात अधिक आय
- मिट्टी की उर्वरा शक्ति में संतुलन बने रहना
- मिट्टी अधिक स्वस्थ एवं सक्रिय
- मिट्टी का विरोहण

वैदिक काल में खेतों से उपजे अनाज-फसल को ''वसुधैव कुटुंबकम'' के सिद्धांत के आधार पर वैज्ञानिक तर्क के अनुसार प्रकृति में उपस्थित सभी में कारकोंन एवं घटकों में क्रमशः निवेदित करने की प्रथा थी जिसे गेहूं की फसल के निम्न उदाहरण से समझना आसान है:

१. गेहूं की फसल का मिट्टी की सतह से चार अंगुल ऊपर तक का भाग भूमि के लिए छोड़ा जाता है जो यथावत जैविक प्रक्रिया से विघटित हो कर मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखता है ।
२. गेहूं की बाली के नीचे का भाग चारे के रूप में गोमाता एवं अन्य मवेशियों को निवेदित किया जाता है ।
३. गेहूं के फसल की पहली बाली अग्नि देवता (सूर्य) को समर्पित की जाति है ।
४. गेहूं की बाली से अन्न का दाना निकालने के बाद पहली मुट्ठी पक्षियों को निवेदित किया जाता है ।
५. गेहूं के अन्न का आटा बनाने के बाद पहली मुठ्ठी चींटियों को निवेदित किया जाता है ।
६. रोटी बनाने के लिए सर्वप्रथम गुथे हुए आटे में से चुटकी भर भाग की गोलो बना कर जलाशय में मछलियों को निवेदित किया जाता है।
७. गुथे हुए आटे से बनी पहली रोटी गोमाता को निवेदित किया जाता है ।
८. तत्पश्चयात पके हुए भोजन की थाली सर्वप्रथम परिवार के वृद्ध सदस्यों को निवेदित किया जाता है ।
९. परिवार के अन्य सभी सदस्य एकत्र में बैठ कर एक साथ भोजन ग्रहण करने की प्रथा है जिससे सभी को आवश्यकतानुसार भोजन वितरित हो सके ।
१०. परिवार के सभी सदस्यों के भोजन प्रक्रिया समाप्त होने के पश्चयात शेष बचा हुआ भाग घर व परिवार के सुरक्षा का प्राकृतिक रूप से दावित्व वहन करने वाले श्वान को प्रदान कर दिया जाता है ।

वैदिक सिद्धांत के अनुसार भारतीय परंपरा में ऋतुओं एवं त्योहारों का फसल चक्र से गहरा संबंध होता है तथा इसका प्राकृतिक कारण वैज्ञानिक तर्क के अनुसार व्याख्यापित भी वेदों में किया गया है । वेदों में ऋषि-मुनियों द्वारा परंपरागत खेती में लौकिक शक्तियों के प्रभाव की व्याख्या भी मिलती है...

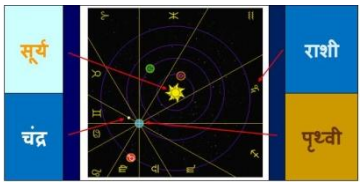

प्रत्येक चंद्र मास में दो पक्ष होते हैं जिसे अमावस्या एवं पूर्णिमा के द्वारा पृथक किया गया है, अर्थात चंद्र मास का प्रारंभ शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से होता है तथा समाप्ति चतुर्दशी को होती है । इस प्रकार शुक्ल पक्ष में भी चौदह दिन होते है । पंद्रहवें दिन पूर्णिमा होती है। तत्पश्यात, कृष्ण पक्ष पुनः प्रतिपदा को प्रारंभ होता है जो चतुर्दशी को समाप्त होता है जिसके बाद अमावस्या आती है । इस प्रकार एक चंद्र मास में क्रमशः चक्र चलता है । पृथ्वी पर पड़ने वाली लौकिक शक्तियों के लिए वेदों में ''नक्षत्र-राशि-ग्रह'' को सामूहिक रूप से महत्वपूर्ण माना गया हैं, जिनमें २७ नक्षत्र, १२ राशियाँ एवं नौ ग्रहों को उत्तरदायी माना गया है । चंद्रप्रतिदिन औसतन एक नक्षत्र में गोचर करता है जबकि राशि में गोचर के लिए २$^{१/२}$ दिन का समय लागता है । चूंकि चंद्र वास्तव में पृथ्वी का ही एक मात्र उपग्रह है और इसी कारण चंद्र का प्रभाव पृथ्वी पर अत्यधिक मात्रा में पड़ता है, अतः भौतिकी के ऊर्जा-बल के नियमों के आधार पर वैदिक सिद्धांत में इसे भी सौर मंडल के पूर्ण ग्रह के समान महत्व डिय गया है । साथ ही साथ सूर्य को भी एक ग्रह समान माना गया है । इस प्रकार नौ ग्रह में से सात ग्रहों के नाम पर सप्ताह के सात दिनों के नाम हैं परंतु शेष दो ग्रह राहु एवं केतु काल्पनिक या छाया ग्रह के रूप में हैं क्योंकि यह दोनों बिन्दु मात्र हैं अर्थात इनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। यह बिन्दु चंद्र का पृथ्वी के परिक्रमा का कक्ष एवं पृथ्वी का सूर्य के परिक्रमा के कक्ष के प्रतिच्छेद बिन्दु हैं ।

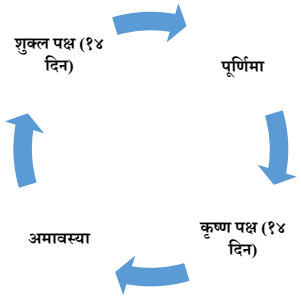

चंद्र के उत्तरायण काल में पड़ने वाले प्रतिच्छेद बिन्दु को राहु एवं दक्षिणायण काल में पड़ने वाले प्रतिच्छेद बिन्दु को केतु कहा गया है । चंद्र पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए जब इन बिंदुओं के निकट पहुंचता है (४ घंटे पूर्व से ४ घंटे पश्चयात तक का समय) तब चंद्र के ऊर्जा-बल क्षीण होना प्रारंभ होता है एवं जिस समय चंद बिन्दु (राहु या केतु) पर होता है उस पल ऊर्जा-बल शून्य हो जाता है यानी चंद्र का स्वभाव तटस्थ सा रहता है, जोकि निर्धारित समयन्तराल के बाद पुनः सामान्य हो जाता है ।

शुक्ल पक्ष के प्रारंभ होते ही पौधों में रस का प्रवाह ऊपर दिशा में होते हुए पूर्णिमा के समय पत्ते-फूल-फल-बीज में केंद्रित हो जाता है । कृष्ण पक्ष के प्रारंभ होते ही रस का प्रवाह नीचे की दिशा में होते हुए अमावस्या के समय पौधों में रस जड़ों में केंद्रित रहता है । इस कारण रस चूसक कीट का प्रकोप पूर्णिमा के समय तथा पत्ते खाने वाले कीटों का प्रकोप अमावस्या के समय चरम पर होता है । इसी प्रकार वायु-जनित जीवाणु से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ भी पूर्णिमा के समय अधिक तथा मृदा-जनित जीवाणु से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ अमावस्या के समय अधिक होने की संभावना रहती है ।

चंद्र-मास के अनुसार कृषि कार्य करने से फसलों में कीट-रोग के प्रादुर्भाव में कमी होती है जिससे कृषि-व्यय में कमी होती है तथा उच्च गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन भी मिलता है जिससे कृषि-आय में वृद्धि होना स्वाभाविक है ।

बारह राशियों को इनके तत्व संबंधित गुण-धर्म के आधार पर चार समूहों में विभाजित किया गया है ।

- **अग्नि** : मेष -सिंह -धनु
- **भूमि** : वृषभ - कन्या - मकर
- **वायु** : मिथुन - तुला - कुंभ
- **नीर (जल)** : कर्क - वृश्चिक - मीन

वैदिक ऋषयों द्वारा फसलों का वर्गीकरण भी उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार पौधे के भक्षणीय भाग के आधार पर ही वर्गीकरण किया गया है :-

- **अग्नि** : मेष-सिंह-धनु — फल / बीज वर्गीय फसलें >अन्न, दलहन, तिलहन, फल-सब्जी, कपास
- **भूमि** : वृषभ-कन्या-मकर — मूल / जड़ वर्गीय फसलें >हल्दी, अदरक, प्याज, लहसुन, मूली, गाजर
- **वायु** : मिथुन-तुला-कुंभ — पुष्प वर्गीय फसलें >फूल, फूलगोभी, ब्रोकोलि
- **नीर** : कर्क-वृश्चिक-मीन — पर्ण वर्गीय फसलें >पत्ते वाले सभी प्रकार के फसल

दैनिक कृषि कार्य करते समय किस दिन ''क्या करना है'' एवं ''क्या नहीं करना है'' इसकी पाक्षिक दिनचर्या एवं समय-सारणी वैदिक कृषि पंचांग के द्वारा निर्धारित होता है ।

पंच-तत्व के सिद्धांत की उत्पत्ति भी उपर्युक्त संकल्पना पर आधारित है, जिसमें पंचम तत्व गगन (आकाश) है । ''भगवान'' शब्द वास्तव में पंच-तत्वों का ही संक्षेपाक्षर है अर्थात...

'भ' से भूमि
'ग' से गगन
'व' से वायु
'।' से अग्नि
'न' से नीर

ब्रह्मांड में सभी कुछ पंच-तत्वों द्वारा ही निर्मित है या यूं कहें कि सभी कुछ में पंच-तत्व निहित है । इसी कारण कहा जाता है कि ''भगवान'' सर्व विदित है ।

वैदिक कृषि में ऋतु, मौसम एवं जलवायु को समझने के लिए ग्रह, नक्षत्र एवं राशि के पारस्परिक संयोग, संबंध एवं गुण-धर्म पर आधारित व्याख्या विस्तार से की गई है ।

वराह मिहिर के **''बृहत संहिता''** में मेघ के गठन को गर्भधारण एवं वर्षा को प्रसव की प्रक्रिया के समान कहा है...

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चंद्रे भवेत्स चंद्रवशात् !
पञ्चनवते दिनशते तत्रेव प्रसवमायाति !!

चंद्र का जिस नक्षत्र में गोचर के दिन मेघ का गर्भाधारण होता है, उस मेघ से वर्षा (यानि प्रसव)१९५ दिनों के बाद चंद्र के पुनः उसी नक्षत्र में गोचर के दिन ही होता है...तात्पर्य यह है कि मेघ के गठन एवं वर्षा का समय अंतराल चंद्र के नक्षत्र में से गोचर के ७.५ चक्रों के बाद का समय अर्थात वैदिक ऋषियों द्वारा ६.५ माह पहले ही वर्षा का पूर्वानुमान किया जाता था!

जल की अवस्था कभी भी स्थिर नहीं होती है; तथापि जल के अणु सदैव वाष्पीकरण होने की प्रक्रिया में रहते है। जल के वाष्पीकृत होने की गति उसमें एवं आस-पास के वातावरण में उपस्थित ऊष्मा पर निर्भर करती हैं । जल के अणुओं के सूक्ष्म आकार होने के कारण जल से निरंतर होने वाले इस वाष्पीकरण की प्रक्रिया को देख नहीं पाते; परंतु जब भी यह प्रक्रिया गति से होती है जैसे उबलते हुए पानी से उठने वाला वाष्प...जल के सभी वाष्पीकृत अणु ऊपर की ओर उठते हैं एवं आकाश में एक साथ सम्मिलित होकर घने हो जाते हैं जिससे मेघ की संरचना होती है; इसी प्रक्रिया को वेदों में मेघ का गर्भधारण कहा गया है।

मेघ के गठन एवं वर्षा का चंद्र पक्ष से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

सितपक्षभवाः कृषणे शुक्ले कृष्णा द्युसंभवा रात्रौ !
नक्तंप्रभवाश्चाहनि संध्याजताश्च संध्यायम् !!

वैदिक काल में ऋषियों का ऐसा विश्वास था कि यदि मेघ का गठन शुक्ल पक्ष में होता है तब उन मेघ से वर्षा कृष्ण पक्ष में होता है; इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में गठन हुए मेघ से वर्षा शुक्ल पक्ष में ही होती है...इसी प्रकार दिन में गठित हुए मेघ से वर्षा रात्रि के समय होता है तथापि रात्रि में गठित हुए मेघ से वर्षा दिन के समय होती है एवं यदि मेघ का गठन उषा काल में हुआ है तब उस मेघ से वर्षा गोधूलि बेला में होती है तथापि गोधूलि बेला में गठित हुए मेष से वर्षा उषा काल में ही होती है!

मेघ के गठन एवं वर्षा का चंद्र पक्ष से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

मृगशीर्षाद्या गर्भा मंदफलाः पौषशुक्लजतश्च। !
पौषस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेच्छावणस्य सितम् !!

यदि मेघ का गठन मृगशीर्ष मास के शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष में एवं पौष मास के शुक्ल पक्ष में गठन होता है तब उन मेघ से वर्षा ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष तथा आषाढ़ मास के क्रमशः शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में होता है; तथापि वर्षा मध्यम मात्रा में ही होता है...परंतु यदि मेघ का गठन पौष मास के कृष्ण पक्ष में होता है तब उस मेघ से वर्षा श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में होती है !

मेघ के गठन एवं वर्षा का चंद्र के नक्षत्र गोचर से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मसाः !
श्रावनपूर्वा ज्ञेयाः परिश्रुता धारणास्ताः स्युः !!

यदि ज्येष्ठ मास के शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष में जब चंद्र चार दिन स्वाति नक्षत्र से ज्येष्ठा नक्षत्र में गोचर करता है इसका तात्पर्य है कि वर्षा ऋतु के श्रावण मास से कार्तिक मास तक सामान्य मात्रा में वृष्टि होना स्वाभाविक है।

मेघ के गठन एवं वर्षा का चंद्र पक्ष में वायु प्रवाह से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

ज्येष्ठसिते अष्टम्याद्याश्चत्वारो वायुधारणा दिवस !

मृदुशुभपवनः शस्तः स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च !!

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से एकादशी तक चार दिन को वायु धारण दिवस माना गया है; इन दिनों में वायु प्रवाह पर निर्भर होता है कि आगामी वर्षा ऋतु में मेघ एवं वृष्टि किस दिशा से, कब तथा कितनी मात्र में होगी । यदि वायु प्रवाह मंद-मंद एवं मौसम सुहावना है, इसका तात्पर्य है आकाश सुंदर, धवल, उज्ज्वल मेघाच्छादित होने के साथ ही सामान्य यानि अच्छी वर्षा होने का पूर्वानुमान है।

मेघ के गठन एवं वर्षा का चंद्र पक्ष के विशिष्ट दिनों के वातावरण से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

यदि ताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सांत्रास्तु न शिवाय !

तस्करभयदाश्चोकताः श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः !!

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से एकादशी तक चार दिन यदि पूर्ण रूप से एक समान वातावरण का होता है, इसका तात्पर्य है वर्ष खुशहाली भरा रहेगा; परंतु यदि इन चार दिनों में से प्रत्येक दिन वातावरण में निरंतर बदलाव होता रहता है, इसका तात्पर्य है समाज में भय का कारण उत्पन्न होने की संभावना बनी रहेगी ।

मेघ के गठन एवं वर्षा का ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास के चंद्र पक्ष में आकाश में वज्र-ध्वनि से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाः प्रत्युपस्थिताः !

तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षण !!

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से एकादशी तक चार दिन यदि आकाश में विपरीत क्षितिज पर क्रमशः चतुर्थांश में वज्रध्वनि का होना तात्पर्य है कि सभी प्रकार के फसलों का उत्पादन एवं गुणवत्ता उत्तम स्तर का होने की पूर्ण संभावना है।

मेघ के गठन एवं वर्षा का ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास के चंद्र के नक्षत्र गोचर से भी प्राकृतिक नियमानुसार गहरा संबंध है...

हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः !

शतभिषगैन्द्र स्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश !!

ज्येष्ठ मास में चंद्र का गोचर यदि हस्ता, पूर्वाषाढ़ा, मार्गशीर्ष, चित्रा, रेवती एवं धनिष्ठा नक्षत्रों से होता है, इसका तात्पर्य है कि आगामी वर्षा ऋतु में १६द्रोण वर्ष होने की पूर्ण संभावना है; परंतु यदि चंद्र का गोचर ज्येष्ठ मास में सतभिसा, ज्येष्ठा एवं स्वाति नक्षत्र में से होता है तब ४द्रोण वृष्टि होने की संभावना रहती है, इसी प्रकार यदि चंद्र का गोचर कृत्तिका नक्षत्र मे से होता है तब १०द्रोण वृष्टि होने का अनुमान होता है।

परंतु आज हम ''विज्ञान'' के कारण प्राप्त उपलब्धियों को प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते हुए वैदिक ज्ञान से उन्मुक्त हो कर विपरीत दिशा में इतनी दूर आ गए हैं कि हम प्रकृति के नियमों पर प्रश्न चिन्ह लगाने में ही अपनी महानता समझने लगे हैं। खेती में होने वाले खर्च को कम करते हुए अधिक उत्पादन, उच्च गुणवत्ता के साथ-साथ आय में वृद्धि करने के लिए प्रकृति के नियमों का अनुसरण करना अनिवार्य है ।

निरंतर हो रहे तापमान में वृद्धि के कारण वैश्विक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन हो रहा है; जिसके परिणाम स्वरूप भोजन एवं जल की आपूर्ति प्रभावित होने से स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा लोक-स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है ।

आइये हम सब मिल कर प्रकृति का संरक्षण करते हुए पर्यावरण की रक्षा करने की शपथ लें !!

ग्रह – राशि – नक्षत्र – तत्व – जलवायु - फसल

ग्रह	राशि	नक्षत्र	तत्व	जलवायु
सूर्य, मंगल, केतु	मेष, सिंह, धनु	अश्विनी, मघा, मूल, कृतिका, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, मृगशिरा, चित्रा, धनिष्टा,	अग्नि	ऊष्म
बुध, शनि	वृषभ, कन्या, मकर	पुष्य, अनुराधा, उत्तरभाद्रपद, अश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती	भूमि	शीतल
बृहस्पति, राहू	मिथुन, तुला, कुंभ	अरिद्रा, स्वाति, शतभिसा पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वभाद्रपद	वायु / प्रकाश	वायुमय
चंद्र, शुक्र	कर्क, वृश्चिक, मीन	भरणी, पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ रोहिणी, हस्त, श्रवण	जल	आद्र

६. प्राचीन भारतीय पारंपरिक पशुपालन एवं पशुचिकित्सा का महत्व

नीलेश शर्मा, संदीप कौर एवं सवलीन कौर

१. प्रस्तावना

वैदिक विज्ञान में कृषि की संकल्पना एक चक्र के रूप में दिखाई गई है। इसमें कृषि और पशुपालन को बराबर का महत्व दिया गया है। इस चक्र में भूमि, पशु और मनुष्य तीनों एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते थे और इन तीनों से यह कृषि चक्र पूरा होता था। इस चक्र में मनुष्य पशु का पालन करता था। पशु भूमि का पालन करते थे और वह भूमि मनुष्य का पालन करती थी। यही वजह है कि वैदिक वांग्मय में पशु पालन को लेकर भी विस्तृत साहित्य मिलता है।

भारत की विविधतापूर्ण भौतिक और जलवायु दशाओं एवं वनस्पति के कारण भारत के पास समृद्ध प्राकृतिक संसाधन हैं। पशुपालन क्षेत्र दूध, अंडे, मांस इत्यादि के द्वारा न केवल जरूरी प्रोटीन एवं पोषक तत्व प्रदान करता है अपितु अखाद्य कृषि उप-उत्पादों की उपयोगिता में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पशुपालन त्वचा, रक्त, अस्थि, वसा इत्यादि के रूप में भी कच्चा माल प्रदान करता है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में आज भी भारत का पुरातन साहित्य आधुनिक विज्ञान से कहीं आगे है।

ऋग्वेदिक काल में पशुपालन आजीविका का मुख्य साधन था। इस दौरान गाय का काफी महत्वपूर्ण व मूल्यवान पशु माना जाता था। गाय के महत्ता के कारण धनी व्यक्ति को "गोमल" कहा जाता था और राजा को ''गोपति'' कहा जाता था। समय के माप के लिए गोधूली और दूरी के माप के लिए गवयतु शब्द का उपयोग किया जाता था। ऋग्वेद में ''गा'' शब्द गाय से सम्बंधित है, इसका उल्लेख ऋग्वेद में १७६ बार किया गया है। ऋग्वेदिक काल में आर्य भूमि का उपयोग पशु चराने, खेती करने व बसने के लिए करते थे। प्राचीन समय में प्रत्येक परिवार के पास जितने अधिक पशु होते थे वह उतना ही धनवान माना जाता था। भूमि की अपेक्षा पशुओं को महत्वपूर्ण धन या संपत्ति माना जाता था। आज भी गांवो में पशुधन को परिवार की आजीविका माना जाता है।

देश में नस्लों की विशाल विविधता को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि सावधानीपूर्वक प्रजनन सदियों से चला आ रहा है ताकि किसी विशेष प्रजाति को उसकी जंगली अवस्था से ढाला और आकार दिया जा सके और एक पालतू प्रजाति का उत्पादन किया जा सके, जो पशु उत्पादों का उत्पादन करती है, जो विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

प्राकृतिक चयन की एक प्रक्रिया भी रही है जिससे सबसे मजबूत जानवर, या दूसरे शब्दों में, किसी बीमारी के लिए सबसे प्रतिरोधी या किसी विशेष वातावरण के लिए सबसे उपयुक्त जानवर प्रजनन स्टहक के रूप में बच गए हैं। प्रजनन हमेशा एक चयनात्मक गतिविधि रही है और एक गुणवत्ता वाले जानवर को रखना एक महंगा प्रस्ताव है। सबसे अच्छी नस्लें हमेशा स्थानीय शासकों से संबंधित पाई जाती थीं।

मवेशियों की भारतीय नस्लों ने उन्नीसवीं शताब्दी से अंतरराष्ट्रीय ध्यान आकर्षित किया है जब गिर, ओंगोल और साहीवाल जैसी नस्लों को ब्राह्मण बैल के नाम से अमेरिका और अहस्ट्रेलिया में निर्यात किया गया था। यह वह समय था जब यूरोप उपनिवेश स्थापित करने में व्यस्त था।

नयी तकनीकियों के साथ कृत्रिम गर्भधान आया जिसका मुख्य उद्देश्य अधिक दूध उत्पादक वाले पशुओं की पैदावार बढ़ाना था। हालाँकि दूध का उतपादन तो बहुत बाद गया और आज भारत विश्व में दूध उत्पादन के क्षेत्र में पहले स्थान पर है लेकिन इसके साथ-साथ कुछ दुष्परिणाम भी आये हैं, जैसे ज्यादा दूध देने वाले पशुओं रोग प्रतिरोधक क्षमता काम हुयी है मुख्य रूप से थनैला रोग की तीब्रता ज्यादा हो गयी है। जिसके परिणामस्वरूप आज ज्यादातर दूध जीवाणुओं से संक्रमित है।

प्राचीनकाल में पशुपालन का मुख्य उदद्देश्य गौ पालन होता था। भारत में इसे गोवंश कहा जाता है। यही वजह है कि गोवंश से परंपरागत तौर पर धार्मिक आस्थाएं आज भी जुड़ी हुई हैं। हालांकि आधुनिक और जहरीले तरीकों ने लोगों को अपनी जड़ों से ही काट दिया है। रासायनिक उर्वरकों से मिट्टी को हो रहे नुकसान के बारे में हम सब जानते हैं और आज पूरी दुनिया में आर्गेनिक खेती पर बड़े बड़े व्याख्यान हो रहे हैं। लौट के बुध्दू घर को आ रहे हैं। तो उन्हें अपने पुरातन कृषि विज्ञान को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है।

प्राचीनकाल के विज्ञान के बारे में लिखने के दो महत्व हैं। पहला ये कि आधुनिक विज्ञान को भी घूम फिरकर यहीं आना है। दूसरा ये कि इसी तरह भारत के प्राचीन विज्ञान के कई तथ्यों और रहस्यों को पाश्चात्य देशों ने या तो तोड़ मरोड़कर समझा या खुद का बताकर भारतीय वेदांत दर्शन को तत्थयहीन बताने का प्रयास किया। हांलाकि ये भी सच है कि पाश्चात्य देशों के ही कई दार्शनिकों ने पूरी ईमानदारी से भारतीय वैदिक वांग्मय के महत्व को अपने अपने तरीके से दुनिया के सामने रखने का प्रयास किया है।

पैदावार को बढ़ाने का एक दबाव भी रहा है। ऐसे में पुरातन कृषि विज्ञान और आधुनिक कृषि विज्ञान को समानांतर रखने की आवश्यकता है। पुरातन कृषि विज्ञान का सबसे सकारात्मक पहलू ये है कि इसने भूमि और पशुधन को प्रमुखता दी, ना कि पैदावार को। निश्चित तौर पर जिस तरह सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को काट कर सोना नहीं निकाला जा सकता। इसी तरह जमीन और पशुधन को नजरअंदाज कर पैदावार को बढ़ाना भी मूर्खता है। परंपरागत वैदिक कृषि विज्ञान को भूलकर हमने वही गलती की है।

प्राचीनकाल में गाय के अतिरिक्त वे भेड़, बकरी, घोड़े, गधे, कुत्ते आदि पशुओं को भी पाला जाता था। चारागाह एवं चरवाहा का भी उल्लेख मिलता है। पशुओं के कानों में चिन्ह बनाने की भी प्रथा प्रचलित थी। इसे आजकल टैगिंग के नाम से जानते हैं। आज के समय में टैगिंग का बहुत महत्त्व बढ गया है जैसे कि मनुष्य में आधार कार्ड है। टैगिंग के माध्यम से हमारे पास पशु की पूरी जानकारी होती है।

२. प्राकृतिक खेती में पशुओं के गोबर व मूत्र की उपयोगिता

हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि गाय के रीढ़ में सूर्य केतु नाड़ी होती है जो सूर्य के गुणों को धारण करती है। यही कारण है कि गौमूत्र गोबर दूध, दही, घी में औषधीय गुण होते हैं। यह नाड़ी सर्वरोगनाशक, सर्वविषनाशक है, सूर्य के संपर्क में आने पर यह नाड़ी स्वर्ण उत्पादन करती है, जो गाय के मूत्र, दूध एवं गोबर में मिलता है, दूध पीने से मनुष्य के शरीर में चला जाता तथा गोबर के माध्यम से खेतो में चला जाता है। **पंचगव्य** का निर्माण देसी गाय के **दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर** से किया जाता है जो कि कई बीमारियों में लाभदायक है।

पशु गणना २०१९ के अनुसार भारत में कुल गौवंशीय पशुओं की आबादी लगभग १९२ मिलियन है जिसमें १४२ मिलियन देशी एवं ५२ मिलियन विदेशी/संकर नस्ल है। जिससे लगभग २६०० लीटर गौमूत्र तथा ४३०० किलोग्राम गोबर प्रतिदिन उत्पादित होता है। एक गाय प्रतिदिन औसत १३ लीटर गौमूत्र एवं २२ कि.ग्रा. गोबर का निष्कासन करती है। जटिल शारिरिक एवं रासायनिक संरचना के कारण इस अपषिष्ट का निपटान करना मुष्किल है, केवल २-५ प्रतिशत ही अपशिष्ट का वैज्ञानिक तरीके से निपटान होता है। जिस कारण यह पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा देता है। जैसे- ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन तथा सतह एवं भू-जल का प्रदूषण आदि। अतः जैव कीटनाशक के रुप में उपयोग कर इस समस्या से निदान पा सकते हैं और साथ ही पर्यावरणीय दुष्प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

गाय का गोबर मानव जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी है। भारत के ग्रामीण अंचल में गाय के गोबर के बहुत से उपयोग किये जाते हैं। लोग महंगे उत्पाद न खरीदकर गाय के गोबर से काम चला लेते हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संतुलन बनकर चलता रहता है। भारत में आज भी दो प्रकार की अर्थव्यवस्था काम कर रही है-एक है शहरी अर्थव्यवस्था और दूसरी है ग्रामीण अर्थव्यवस्था। सरकारी स्तर पर कभी भी यह जांचने परखने का प्रयास नही किया गया कि भारत के सुदूर देहात की अर्थव्यवस्था आज भी सुचारू रूप से क्यों चल रही हैयदि यह जांचा परखा जाए तो उस सुचारू व्यवस्था के पीछे आपको गाय खड़ी मिलेगी। मनुष्य के शरीर के किसी अंग पर सूजन आ जाने पर लोग गाय के गोबर का लेप कर लेते हैं। जो लोग गाय के गोबर को केवल मल ही मानते या समझते हैं वे भूल करते हैं। गाय का गोबर मल नहीं है यह मलशोधक है दुर्गन्धनाशक है एंव उत्तम वृद्धिकारक तथा मृदा उर्वरता पोषक है। यह त्वचा रोग खाज, खुजली, श्वासरोग, शोधक, क्षारक, वीर्यवर्धक, पोषक, रसयुक्त, कान्तिप्रद और लेपन के लिए स्निग्ध तथा मल आदि को दूर करने वाला होता है। गोबर को अन्य नाम भी है गोविन्दगोशकृत, गोपुरीषम्, गोविष्ठा, गोमल आदि। गोबर मे नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, आयरन, जिंक, मैग्निज, ताम्बा, बोरोन, मोलीब्डनम्, बोरेक्स, कोबाल्ट-सलफेट, चूना, गंधक,सोडियम आदि मिलते है। गाय के गोबर में पूतिरोधी एन्टिडियोएक्टिव एवं एन्टिथर्मल गुण होता है गाय के गोबर में लगभग १६ प्रकार के उपयोगी खनिज तत्व पाये जाते है ।

लक्ष्मीश्च गोमय नित्यं पवित्रा सर्वमङ्ग
गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन।।

गाय के गोबर में परम पवित्र सर्वमंगलमयी श्री लक्ष्मी जी नित्यनिवास करती है, इसलिए गोबर से लेपन करना चाहिए । गोबर गणेश की प्रथम पुजा होती है और वह शुभ होता है । मांगलिक अवसरों पर गाय के गोबर का प्रयोग सर्वविदित है। जलावन एंव जैविक खाद आदि के रूप में गाय के गोबर की श्रेष्ठता जगत प्रसिद्ध है ।

गाय के गोबर से घर में लेपन करने से बहुत से कीटाणु-विषाणु नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हमारे गांव-देहात में गोबर के लेपन की परंपरा आज भी चली आ रही है। जबकि शहरों में लोग कितने ही कीड़े मकोड़ों (कॉक्रोच आदि) को मारने के लिए घर में रासायनिक कीटाणु नाशकों का प्रयोग करते हैं। जो कि महंगा तो पड़ता ही है साथ ही यह स्वास्थ्य के लिए घातक भी हैं। गाय के लेपन से आणविक विकीरण (Molecular radiation) एवं वायु प्रदूषण से भी रक्षा होती है। जिस समय जापान में हिरोशिमा और नागासाकी पर बम वर्षा की गयी थी तो उस समय जापान ने गाय के गोबर के लेपन का महत्व समझा था। उसके पश्चात वहां पर लोग अपने ओढने़ की चादर को गोबर के घोल को छानकर उसके पानी में भिगोने के पश्चात सुखाकर तब ओढ़ते हैं। जिससे उनके स्वास्थ्य की रक्षा होती है तथा उसकी रोग

निरोधक क्षमता भी बढ़ती है। आण्विक विकिरण का प्रतिकार करने में गोबर से पोती दीवारें पूर्ण सक्षम है। गाय के गोबर की राख से ही हमारे देहात में लोग अपने दांत साफ करते हैं जबकि महिलाएं राख से घर के बर्तनों को साफ करती हैं। जिसके सार्वजनिक प्रयोग से पूरे देश का करोड़ों रूपया बच सकता है, जो कि बर्तनों को साफ करने के लिए विशेष साबुन, सर्फ आदि पर व्यय किया जाता है। इस प्रकार के साबुन व सर्फ से महिलाओं के हाथों में चर्मरोग होने या उनकी त्वचा के कमजोर होने की संभावना बनी रहती है।

गांवों में फल-सब्जी के खेतों पर छोटे-छोटे पौधों व बेलों पर यदि कीड़ा लग जाए तो लोग उन पर गाय के गोबर की राख का छिडक़ाव करते हैं। जिसका स्थान आजकल कीटनाशक लेते जा रहे हैं। परंतु इन कीटनाशकों के प्रयोग से फल व सब्जियां की विषैली होती जा रही हैं, और मनुष्य शरीर पर घातक प्रभाव डाल रही है। जबकि राख डालने से किसी फल या सब्जी के विषैला बनने की संभावना लगभग शून्य ही रहती है। **१९०४ ई.** में भारत की उन्नत कृषि पद्धति का अध्ययन करने के लिए ब्रिटेन से आये कृषि वैज्ञानिक **सर एलबर्ट** ने बड़ी सूक्ष्मता से अपने विषय का अनुसंधानात्मक अध्ययन किया और अपने निष्कर्षों को 'एन एग्रीकल्चरल टेस्टामेंट' में लिखा। उनके लेख के अनुसार पूसा (बिहार) के आसपास के गांवों में उपजने वाली फसलें सभी प्रकार के कीटों से गजब की मुक्त थीं। किसानों की अपनी परंपरागत कृषि पद्घति में कीटनाशक जैसी चीजों के लिए कोई स्थान ही नही था।

इतना ही नहीं, गोबर से बिजली, ईन्धन प्रकाश, त्वचा रक्षक साबुन, शुद्ध धूपबत्ती तथा शीत-ताप अवरोधक प्लास्टर का उत्पादन भी सम्भव हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार यदि केवल ७५ प्रतिशत गोबर भारत में इकट्ठा हो तो **१९५ लाख मेगावाटबिजली** प्रतिवर्ष निर्माण हो सकेगा एवं **२३६ लाख टन खाद** बन सकेगी।

पुराने समय से ही "खाद" का पौधों, फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। खाद" का पौधों फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है। खाद शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के खाद्य शब्द से हुई है।

२.१ गोबर की खाद

वर्मी कम्पोस्ट/ केंचुआ खादः

वर्मी कम्पोस्ट को केंचुआ पालन खाद या वर्मी कल्चर के नाम से भी जानते हैं। केचुंए को प्राकृतिक हलवाहा या किसानों का सच्चा मित्र भी कहा जाता है। गोबर, सूखे एवं हरे पत्ते, घास-फूस, धान का पुआल, खेतों के अवशेष आदि खाकर केचुओं के मल से प्राप्त खाद ही वर्मी कम्पोस्ट कहलाती है और यह पूर्णरुप से प्राकृतिक, सम्पूर्ण व संतुलित आहार या पोषक खाद है। इससे बेरोजगार ग्रामीण युवक-युवतियों को वर्मी कम्पोस्ट बनाकर एक बेहतर रोजगार भी मिल सकता है।

पशुओं के ताजे गोबर की रासायनिक रचना जानने के लिए, गोबर को ठोस व द्रव को दो भागो में बांटते हैं। बहार के दृष्टिकोण से ठोस भाग ७५% तक पाया जाता है। सारा फास्फोरस ठोस भाग में ही होता है तथा नाईट्रोजन व् पोटाश, ठोस द्रव भाग में आधे-आधे पाए जाते हैं। गोबर खाद की रचना अस्थिर होती है। किन्तु इसमें आवश्यक तत्वों का मिश्रण निम्न प्रकार है।

नाइट्रोजनः ०.५ से ०.६ %

फास्फोरसः ०.२५ से ०.२%

पोटाशः ०.५ से १.०%

गोबर की खाद में उपस्थित ५० %नाइट्रोजन, २०% फास्फोरस व पोटेशियम पौधों को शीघ्र प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त गोबर की खाद में सभी तत्व जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम, गंधक, लोहा, मैंगनीज, तांबा व जस्ता आदि तत्व सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं।

गोबर धन (GOBAR Dhan) योजना

भारत में प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में कार्बनिक अपशिष्ट उत्पन्न होता है। यहां प्रतिवर्ष लगभग ६० हजार टन अपशिष्ट पशुओं से तथा लगभग ६०० मिलियन टन अपशिष्ट फसलों से उत्पन्न होता है। इनमें से अधिकांश का निष्पादन जलाकर अथवा इन्हें कहीं खाली पड़ी भूमि पर अथवा किसी जलाशय में फेंक कर किया जाता है। अपशिष्टों के इस अवैज्ञानिक निष्पादन से अनेक स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय दुष्प्रभाव उत्पन्न होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के एक आकलन के अनुसार, भारत में प्रतिवर्ष लगभग ५ लाख लोग अस्वच्छ ईंधन के कारण काल का ग्रास बन जाते हैं।

कार्बनिक अपशिष्टों का यदि उचित प्रयोग किया जाए तो ये संसाधनों के रूप में भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इनका ईंधन, उर्वरक तथा अन्य ऊर्जा गतिविधियों में उपयोग किया जा सकता है। कार्बनिक अपशिष्टों के इन्हीं संभावनाओं के दोहन हेतु वित्त मंत्री द्वारा बजट भाषण, २०१८-१९ में गोबर धन योजना की घोषणा की गई थी। ३० अप्रैल, २०१८ को पेयजल एवं स्वच्छता मंत्री सुश्री उमा भारती द्वारा हरियाणा के करनाल स्थित राष्ट्रीय डेयरी शोध संस्थान (NDRI) से **गोबर धन (GOBAR Dhan) योजना** का शुभारंभ किया गया।

२.२. गौ-मूत्र

गौ मूत्र में यूरिया, यूरिक एसिड, हिपेरिक एसिड, एवं क्रियेटीनिन यौगिक पाये जातें है जो कीटनाशक का काम करतें हैं। इसीलिए गौमूत्र जैव कीटनाशक के रूप में बहुत प्रचलित है। जैव कीटनाशक प्राकृतिक पदार्थों जैसे पशु उत्पाद, वनस्पति, जीवाणु एवं कुछ खनिज पदार्थों के द्वारा तैयार किये गये कीटनाशकों को जैव कीटनाशक कहते हैं।

जैव कीटनाशक के फायदे

१. जैव कीटनाशक रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में कम बिषैले होते है।
२. जैव कीटनाशक केवल लक्ष्य कीट एवं निकट संबंधी को प्रभावित करते हैं यह अन्य जीव-जन्तुओं एवं पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव नहीं डालते।
३. यह कम मात्रा में भी अत्यधिक प्रभावी होते है।
४. यह जल्दी से विघटित होते हैं तथा अपने अवशेष नहीं छोड़ते और फसल की उपज भी बढ़ाते हैं।
५. जैव कीटनाशक पशुओं के मल-मूत्र का एक अच्छा उपयोग है एवं ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन भी कम होगा।
६. यह लगभग मुफ्त है एवं आर्थिक रुप से मॅहंगे रासायनिक कीटनाशकों पर हो रहे किसानों के व्यय को बचाता है।
७. आज कल अनुपयोगी पशु जो पशुपालकों के लिए अतिरिक्त बोझ होते जा रहे हैं ऐसे पशुओं का प्रबंधन अच्छे से हो सकेगा।

जैव कीटनाशकों का प्रयोग

जैव कीटनाशक का पशुओं पर बाह्य परजीवियों के नियंत्रण एवं सब्जियों, खाद्यान्न, दलहन और तिलहन फसलों पर इसका प्रयोग कीट नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

१. पालतु पशुओं में बाह्य परजीवियों के लिए २-३ बार १५ दिनों के अंतराल में शरीर पर प्रयोग कर लगभग ५५ से ६० प्रतिशत नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं। बाह्य परजीवियों की सघनता/प्रकोप की स्थिति अनुसार प्रयोग की बारम्बारता बढ़ा कर बाह्य परजीवियों पर पूरी तरह नियंत्रण पा सकते हैं।
२. फसलों पर बुबाई के २० दिन बाद से १५ दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से कीट-व्याधि तो दूर रहती है साथ ही साथ फसल का उत्पादन भी बढ़ता है।

३. एंटीबायोटिक अवशेष

एंटीबायोटिक प्रतिरोध एक आसन्न सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट है। मनुष्यों के उपचार में उपयोग होने वाले एंटीबायोटिक्स का उपयोग खाद्य उत्पादक पशुओं में बहुत तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष २०१७ से २०१८ में इनका उपयोग ६% तथा वर्ष २०१८ से २०१९ में ३% की बृद्धि हुयी है। एंटीबायोटिक का बढ़ता उपयोग चिंता का विषय है क्योंकि एंटीबायोटिक प्रतिरोध को भविष्य में दोनों मानव और पशु कल्याण के लिए एक गंभीर खतरा माना जाता है, और पर्यावरण में एंटीबायोटिक दवाओं या एंटीबायोटिक प्रतिरोधी बैक्टीरिया के बढ़ते स्तर से दवा प्रतिरोधी संक्रमणों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। खाद्य उत्पादक पशुओं में इन दवाओं के प्रचुर मात्रा में और अनुचित उपयोग के परिणामस्वरूप खाद्य जानवरों के ऊतकों में एंटीबायोटिक अवशेषों की उपस्थिति हो सकती है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए विषाक्त और खतरनाक हो सकता है और यहां तक कि अतिसंवेदनशील व्यक्तियों में एलर्जी की प्रतिक्रिया भी हो सकती है।

यदि हम जम्मू एवं कश्मीर की बात करें तो यहाँ सबसे ज्यादा पशु **गूजर एवं भक्करवाल समुदाय** पालते है। एंटीबायोटिक्स की आसानी से उपलब्धता की वजह से यह समुदाय विना पशु चिकित्सक की सलाह लिए अपने स्तर पर ही एंटीबायोटिक्स का अंधाधुन्द उपयोग करते है। हाल ही में स्कास्ट जम्मू में एंटीबायोटिक्स अवशेष पर हुए शोध के अनुसार कि ७०% से ज्यादा मनुष्य के उपयोगी मांस तथा ३०% से ज्यादा दूध में अह्क्सीटेट्रासायक्लिन की मात्रा निर्धारित अधिकतम अवशेष सीमा से ज्यादा पायी गयी। इसी प्रकार अन्य एंटीबायोटिक्स जैसे एनरोफ्लोक्सासिन, सिप्रोफ्लोक्सासिन इत्यादि के अवशेषों की भी मात्रा ज्यादा पायी गयी।

४. कीटनाशक अवशेष

खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण के दिशानिर्देश लेख के अनुसार १.९% शब्जियों, १.१% फलों एवं दलों, ७.२२%धान, १७.४०% मसलों एवं १% गेहूं में कीटनाशक अवशेषों की मात्रा निर्धारित अधिकतम सीमा से ज्यादा पायी गयी जो कि एक चिंता का विषय है। कीटनाशकों से संक्रमित खाद्य पदार्थों के लम्बे समय तक सेवन करने से गुर्दे (Kidne) और यकृत (liver) की समस्याएं, अंतःस्रावी तंत्र (Endocrine system) में व्यवधान, तंत्रिका (Nervous system) संबंधी और प्रतिरक्षा प्रणाली (Immune system) संबंधी विकार और फेफड़े (lungs), स्तन (mammary gland), गर्भाशय ग्रीवा (cervix) और प्रोस्टेट कैंसर की संभावना बढ़ जाती है।

७. प्राकृतिक खेती अपनाएंः स्वस्थ्य खाद्य श्रृंखला और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में अपनी भागेदारी बढ़ाये

आनंद कुमार पाठक, नीलेश शर्मा, आर. के. शर्मा, प्रणव कुमार, एन. के. पंकज एवं प्रेम कुमार

प्रस्तावनाः

प्राकृतिक कृषि प्रणाली शुद्ध मिट्टी के साथ-साथ, पेड़-पौधों, फसलों, पशुओ एवं मानव स्वास्थ्य मानकों को बनाए रखने के लिए अगली पीढ़ी की हरित प्रौद्योगिकी विकल्प साबित होगी। स्थायी फसल और पशुधन उत्पादन प्राप्त करने के लिए, प्राथमिक आवश्यकता मिट्टी की उर्वरता और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखना है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य मौजूदा वाणिज्यिक कृषि / पशु पालन में विभिन्न रसायनिक उर्वरकों, रसायनिक कीटनाशकों और सिंथेटिक दवाओं आदि का प्रचुर मात्रा उपयोग से होने वाले नुकसान को रोकना एवं पशु खाद्य पदार्थों में फ़फूंद/ मायकोटहक्सिन का प्रकोप एवं नुकसान, साथ ही साथ पशु चिकित्सा में सिंथेटिक दवाओं (एंटीबायोटिक और कृमिनाशक दवाओं) का अविवेक पूर्ण रूप से उपयोग को कम करना जिसकी बजह से खाद्य पदार्थों में इनकी उपस्थिति, अंतरराष्ट्रीय बाजार में हमारे इन खाद्य पदार्थों को अस्वीकार कर दिया जाता है। जिससे असुरक्षित खाद्य एवं अस्वस्थ खाद्य श्रृंखला जैसी विपरीत परिस्तिथियो से होने वाले नुकसान का सबसे ज्यादा सीधा असर हमारे किसान भाईयों पर पढ़ता है। इन सब समस्याओं का सही समाधान आने वाले समय में प्राकृतिक कृषि प्रणाली को अपनाना होगा।

वर्तमान कृषि प्रणाली के नुकसान

हरित क्रांति ने ना केवल फसल उत्पादन को नए स्तर पर पहुंचाया बल्की भारत शीर्ष उत्पादकों में से एक है, लेकिन व्यापक खेती के साथ-साथ कुछ नुकसान भी साथ में आ गए हैं। यह देखा गया है कि लगातार किसान असामान्य रूप से उच्च सांद्रता वाली कीटनाशकों, सिंथेटिक रसायनों का फसलों पर छिड़काव कर रहे हैं और यह सब खाद्य श्रृंखला में अंदर प्रवेश कर गए हैं जो सभी आयु वर्ग के लोगों में कैंसर जैसी बिमारियों को जन्म दे रहे हैं। लगातार असामान्य रूप से उच्च सांद्रता वाली कीटनाशकों, सिंथेटिक रसायनों के छिड़काव से न केवल किसान इसकी चपेट में आया बल्की पूरा समाज इसकी चपेट में आरहा है। खेतों में सिंथेटिक रसायनों के प्रयोग से मिट्टी को नुकसान हो रहा है। भूमिगत जल, वायु, जीवित प्राणी जैसे पक्षी, गैर-कीट जीव और जलीय जीवन भी प्रभावित हो रहे हैं। भारत में लगभग २४ प्रतिशत ग्रीनहाउस गैसें धान की खेती, बायोमास जलाने, आंत्रिक किण्वन, खाद की हैंडलिंग और उर्वरकों के उत्सर्जित होने के कारण है। एक और कीटनाशकों के उपयोग से जुड़ी प्रमुख समस्या यह है कि वे खाद्य श्रृंखला में अंदर फैल रहे हैं। हवा और पानी के माध्यम से पर्यावरण को जोखिम में डाल रहे हैं। तथा जोखिम का विस्तार गैर स्थानीय जीवों के लिए भी उत्पन्न कर रहे हैं जिससे रासायनिक प्रतिरोध में भी वृद्धि हुई है। एक कीट जिसके लिए कीटनाशकों के और अधिक उपयोग की आवश्यकता होती है, जो आगे इस समस्या को और जटिल बनाता और पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ता है।

पर्यावरण के साथ-साथ भोजन की सुरक्षा, के संदर्भ में रासायनिक अवशेषों से भी समझौता किया जाता है। भोजन में अवांछित हानिकारक रासायनिक अवशेष जो विषाक्तता पैदा कर रहे हैं, जन्म दोष,तंत्रिका तंत्र क्षति, कैंसर और यहां तक कि मौतें भी। कई सिंथेटिक कीटनाशक जब किसी जीव के शरीर में प्रवेश करते हैं, तब वे शरीर में संचय करते हैं और जब शरीर उन्हें तोड़ने में/ शरीर से बाहर निकालने में असमर्थ हो जाता है। तब वे स्थायी रूप से शरीर के ऊतकों में जमा हो जाते हैं। और कैंसर जैसी भयानक बिमारियों को जन्म देते हैं।

ए.आई.सी.आर.पी.पी.आर. रिपोर्ट, १९९९ के अनुसार - कीटनाशक सुरक्षाः मूल्यांकन और निगरानी ने इस बात पर प्रकाश डाला कि केवल २ प्रतिशत खाद्य वस्तुओं को दुनिया भर में एमआरएल(अधिकतम अनुशंसित लिमिट) से ऊपर पाया गया, लेकिन भारत में यह आंकड़ा २० प्रतिशत से अधिक था। खासकर इन राज्यों में जैसे उत्तर प्रदेश और केरल में खाद्य पदार्थों के नमूने एमआरएल से अधिक क्रमशः ४६ प्रतिशत और ५३ प्रतिशत थे।

रासायनिक कीटनाशकों, पशु चिकित्सा औषधियो (एंटीबायोटिक और कृमिनाशक दवाओं) के अवशेषों और मायकोटॉक्सिन (एफ्लाटहक्सिन या ओक्रैटहक्सिन) का खाद्य पदार्थों जैसे पशु उत्पादों (दूध/दूध उत्पादों, मांस और मांस उत्पादों) में पाया जाना उपभोक्ताओं की जागरूकता का प्रभाव पशुधन उद्योग के लिए एक बड़ी चिंता है। उपभोक्ता अपने उत्पादों में इनपुट के स्रोतों पर अधिक संपूर्ण जानकारी रखने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उपभोक्ता इस बारे में अधिक चिंतित हो रहे हैं। पशु उत्पादों (दूध, मांस और उनके उत्पादों) में अवशेषों को आम तौर पर प्राकृतिक रूप से मौजूद के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, जो मनुष्य के कारण होता है और दूसरा उत्पन्न होता है।

अतीत में, दूध और मांस का अधिकांश संदूषण प्राकृतिक विषाक्त पदार्थों के कारण होता था। हालांकि, समाज को लाभान्वित करते हुए नियमित घरेलू और कृषि पद्धतियों के लिए सिंथेटिक रसायनों के उपयोग ने संभावित संदूषण के नए स्रोत भी प्रदान किए हैं। इन विषैले रासायनिक कीटनाशकों के अवशेषों का स्तर अब कुछ देशों में चिंताजनक स्थिति में है। पशुओं के चारे और पशु उत्पादों में सिंथेटिक दवा अवशेषों (एंटीबायोटिक्स और कृमिनाशक) और मायकोटॉक्सिन (एफ्लाटॉक्सिन या ओक्रैटॉक्सिन) की भी अधिकता पाई गई।

व्यापक अर्थों में इन खतरनाक अवशेषों को खाद्य श्रृंखला या खाद्य वेब में मौजूद अवांछनीय पदार्थों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ये पदार्थ प्रकृति में रासायनिक या जैविक होते हैं और हमेशा कम मात्रा में मौजूद होते हैं या विभिन्न तकनीकी प्रथाओं द्वारा पर्यावरण में पेश किए जा सकते हैं, फ़ीड/खाद्य पदार्थों के गलत भंडारण का परिणाम हो सकते हैं, आधुनिकता के कारण खाद्य श्रृंखला में आ सकते हैं। कृषि/पशुपालन प्रथाओं और इस प्रकार खाद्य पदार्थों में पेश किया गया है या वे पशु उत्पादकता या प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए पशुओं के चारे में शामिल रासायनिक फ़ीड एडिटिव्स के परिणाम हैं।

खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य श्रृंखला पर प्राकृतिक खेती का प्रभावः

ये पर्यावरणीय क्षति और खाद्य श्रृंखला की विषाक्तता, उपभोक्ताओं की चिंताओं को और भी बढ़ावा देती है। इसलिए स्वस्थ्य खाद्य पदार्थो को उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जो प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने का एक स्थायी तरीका है जो खेती के प्राकृतिक तरीके और तकनीकों के उपयोग पर निर्भर करता है जैसे फसल चक्रण, वर्मी कम्पोस्टिंग, जैव उर्वरक, फसल प्रबंधन, पशु खाद, गैर-कृषि जैविक अपशिष्ट, फसल अवशेष आदि जो मिट्टी को जीवित रहने और भोजन को जीवित रहने सुरक्षा देते हैं।

प्राकृतिक खेती तीन कारणों से खाद्य सुरक्षा को बढ़ाती है

प्रमुख कारणः

१) कम नाइट्रोजन अनुप्रयोग (जो नाइट्रेट सांद्रता को कम करता है);

२) द्वितीय कीटनाशक के उपयोग से बचना (जिसके परिणामस्वरूप वस्तुतः कोई कीटनाशक अवशेष नहीं होता है)

३) रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं करना (इनकी कम सांद्रता सुनिश्चित करने के लिए रासायनिक अवशेष)। ये नुकसान पहुचने वाला हानिकारक पदार्थों के प्रभाव की घटनाओं को कम कर सकते हैं, कैंसर और पशु उत्पादन से प्रतिरोध जीन का स्थानांतरण मानव रोगजनकों के लिए कम करना।

स्वस्थ खाद्य पदार्थों से जुड़े सकारात्मक गुणों में शामिल हैंः

स्वस्थ, स्वादिष्ट, प्रामाणिक, प्राकृतिक, कीटनाशकों, एंटीबायोटिक दवाओं से मुक्त और जीएमओ, नाइट्रेट सामग्री में कम, सुरक्षित और प्रमाणित स्वस्थ खाद्य पदार्थ। पिछले वर्षों में किये गए अध्ययन भी सुझाव देते हैं कि स्वस्थ खाद्य पदार्थों का उच्च पोषण मूल्य भी होता है। तथा इनमें संयुग्मित लिनोलिक एसिड, ओमेगा-३ फैटी एसिड, विटामिन ई और कैरोटीनहृयड भी अधिक मात्रा में थे। डेयरी गायों को चराने वाले स्वस्थ चारा और पशु आहार से दूध में वृद्धि हुई। इन यौगिक पोषण की दृष्टि से वांछनीय हैं और हृदय रोग और कैंसर का खतरा कम हुआ। इसके लाभ कि वजह से भारत सरकार ने भी प्राकृतिक खेती को राष्ट्रीय परियोजना के माध्यम से देश में बढ़ावा देना शूरू कर दिया है।

खाद्य पदार्थों एवं खाद्य श्रृंखला में रासायनिक अवशेषों का स्रोतः

दुनिया भर में उपयोग की जाने वाली सभी पशु चिकित्सा फार्मास्यूटिकल्स का लगभग ४२ प्रतिशत फ़ीड एडिटिव्स के रूप में उपयोग किया जाता है, १९ प्रतिशत का उपयोग एंटी-संक्रमण के रूप में किया जाता है, १३ प्रतिशत अंतापरजीवी नाशकों के रूप में, ११ प्रतिशत प्रतिजैविक के रूप में उपयोग किया जाता है और १५ प्रतिशत अन्य फार्मास्यूटिकल्स के रूप में उपयोग किए जाते हैं। उन सभी को या तो इंजेक्शन (इंट्रामस्क्युलर, इंट्रावेनस, और सबक्यूटेनियस) या मौखिक रूप से फ़ीड और पानी में, त्वचा पर, इंट्रा-मैमरी और इंट्रा-यूटेरिन इन्फ्यूजन के रूप में उपयोग किए जाते हैं। विभिन्न शोध पत्रो में पाया गया कि मांस में इन अवशेषों के ४६ प्रतिशत के लिए इंजेक्टेबल जिम्मेदार थे, इसके बाद २० प्रतिशत फ़ीड, पानी या बोलस तथा ७ प्रतिशत इंट्रा-मैमरी इन्फ्यूजन जिम्मेदार थे।

कई अन्य कारकों ने भी अवशेषों की समस्या में योगदान दिया है जैसे कि खराब उपचार रिकार्ड या जानवरों की पहचान करने में विफलता और एक दवा के उपयोग के परिणामस्वरूप उसी तरह से जो लेबलिंग के साथ असंगत है। यह मुख्य रूप से वापसी के समय के साथ-साथ दवाओं के अतिरिक्त-स्तर के उपयोग के लेबल का पालन न करने के कारण होता है। माइक्रोबियल अवशेष ज्यादातर मायकोटहृक्सिन, टहृक्सिजेनिक मोल्ड्स (कवक) के मेटाबोलाइट्स फीडस्टफ में मौजूद होते हैं।

विषाक्तता और स्वास्थ्य जोखिमः

कीटनाशकों का उल्लंघनकारी स्तर अपेक्षाकृत असामान्य है, मांस और मुर्गी उत्पादन में उनके व्यापक प्रसार, पर्यावरण में उनकी दृढ़ता और अलग-अलग विषाक्तता के कारण कम उल्लंघन दर भी एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य विचार है। संयुक्त राष्ट्र ने अनुमान लगाया है कि

हर साल कीटनाशकों से लगभग २ मिलियन जहर विषाक्तता और १०,००० मौतें होती हैं, जिनमें से लगभग तीन-चौथाई विकासशील देशों में होती हैं। उच्च खुराक के तीव्र और दुर्भावनापूर्ण सेवन से मृत्यु हो जाती है, जबकि, लंबे समय तक इनके सेवन से कैंसर का खतरा बढ़ जाता है और शरीर के प्रजनन, प्रतिरक्षा, अंतःस्रावी और तंत्रिका तंत्र में व्यवधान होता है।

पशु एवं मानव चिकित्सा में टेट्रासाइक्लिन के साथ अनुभव इंगित करता है कि टेट्रासाइक्लिन के चिकित्सीय स्तर प्रतिरोधी उपभेदों के उद्भव को प्रेरित करके और माइक्रोफ्लोरा की चयापचय गतिविधि को बदलकर, रोगजनक, अवसरवादी या प्रतिरोधी सूक्ष्मजीव बाधा प्रभाव और इसके पारिस्थितिक संतुलन द्वारा उपनिवेश के प्रतिरोध को बदलकर आंतों के माइक्रोफ्लोरा को खराब कर सकते हैं।

टेट्रासाइक्लिन से संबंधित सुपर-संक्रमण के अलावा जानवरों और मनुष्यों में इम्यूनो-डिप्रेशन और फोटोटॉक्सिसिटी भी हो सकती है। गर्भावस्था के दूसरे महीने के दौरान अहृक्सीटेट्रासाइक्लिन के साथ उपचार भ्रूण के लिए एक टेराटोजेनिक जोखिम प्रस्तुत करता है। जो एक अवांछनीय दुष्प्रभाव के रूप में न केवल प्राथमिक और स्थायी दांतों को फीका कर देता है, बल्कि शिशुओं, गर्भावस्था के अंतिम दो तिमाही के दौरान माताओं और १२ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को दिए जाने पर विकासशील दांतों में हाइपोप्लासिया का कारण बनता है। इसके अलावा सल्फोनामाइड्स (सल्फाडिमिडीन और सल्फामेथोक्साज़ोल) प्रयोगशाला पशुओं में थायरॉयड, एडेनोमा और हाइपरप्लासिया को प्रेरित कर सकते हैं। इसमें संभावित कार्सिनोजेनिक चरित्र भी है। सहक्रियात्मक प्रभाव प्राप्त करने के लिए सल्फोनामाइड्स के बैक्टीरिया प्रतिरोध को कम करने के लिए, ट्राइमेथोप्रिम और ओरिप्रिम जैसे पाइरीमेथामाइन संयोजन में उपयोग किए जाते हैं।

इसी तरह, मांस उत्पादन में डीईएस जैसे हार्मोनल यौगिक के उपयोग को मजबूत कार्सिनोजेनिक प्रभाव के लिए जाना जाता है इसी बजह से खाद्य उत्पादक जानवरों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। दूसरी ओर, बीटा-एड्रीनर्जिक एगोनिस्ट (क्लीब्यूटेरोल, सैल्ब्युटेरोल, सिमेटेरोल) लक्ष्य कोशिकाओं पर रिसेप्टर के लिए बाध्यकारी के माध्यम से कार्य करता है और वसा से दुबला मांस उत्पादन के लिए ऊर्जा को पुनः विभाजित करके कार्य करता है। यह यौगिक अत्यधिक मात्रा में मांस में अवशेष छोड़ देता है और इस प्रकार अस्पताल में उपचार की आवश्यकता वाले उपभोक्ताओं में प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है। इस प्रकार पशु चिकित्सा उत्पादों और उनके मेटाबोलाइट्स के स्वास्थ्य जोखिमों को परिभाषित करना बहुत मुश्किल है और उल्लंघन स्तर से ऊपर की उनकी उपस्थिति अवैध है और कई देशों में वित्तीय दंड के अधीन है।

भारी धातुओं से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव गुर्दे की क्षति, हृदय रोगों, उच्च रक्तचाप की प्रेरण, विकास अवरोध, हीम संश्लेषण में हस्तक्षेप, मस्तिष्क और तंत्रिका कोशिकाओं में अपरिवर्तनीय परिवर्तन और इनमें से कुछ अवशेषों को प्रकृति में कार्सिनोजेनिक के रूप में जाना जाता है। फुफ्फुसीय और तंत्रिका तंत्र और खाल आर्सेनिक संदूषण के मुख्य लक्ष्य अंग हैं।

समाधानः

स्वस्थ खाद्य सुरक्षा और सुरक्षित खाद्य श्रृंखला प्राप्त करने के लिए हमें मध्य मार्ग की आवश्यकता है उसी से प्राकृतिक खेती जैसी जैविक विधियों का उपयोग करके प्राप्त किया जा सकता है फसल अवशेष प्रबंधन, पशु खाद, अहृफ-फार्म जैविक अपशिष्ट प्रबंधन, खनिज ग्रेड रहृक एडिटिव्स और जैविक साथ में पोषक तत्व जुटाने और पौधों की सुरक्षा की प्रणाली, मृदा जांच के बाद आवश्यक मात्रा में प्राकृतिक पशु खाद का उपयोग पोषक तत्वों के असंतुलन को रोकेगा। यह दृष्टिकोण लागत को कम कर सकता है क्योंकि इस में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जा रहा है और सुरक्षित भोजन की सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में भी मदद करेगा। लागत में कमी और अधिक उपज भी किसानों को आकर्षित करेगी, टिकाऊ तरीके से सुरक्षित अनाज उगायिंगे।

वैज्ञानिकों को भी यह सुनिश्चित करना होगा कि यदि खाद्य पदार्थों में कीटनाशक या रासायनिक अवशेष मौजूद हो तो किसान कैसे विभिन्न खाद्य प्रसंस्करण तकनीकों जैसे धुलाई,अवशेषों को तोड़ने के लिए छीलने, थर्मल प्रसंस्करण, बेकिंग आदि को अपनाए और कम लागत में हानिकारक कीटनाशक या रासायनिक अवशेष रहित स्वस्थ खाद्य पदार्थों को अंतरराष्ट्रीय खाद्य बाजार में अच्छे कीमत पर अधिक मुनाफा कमाये तथा स्वस्थ खाद्य सुरक्षा और सुरक्षित खाद्य श्रृंखला सुनिश्चित करने में एवं भारत देश को आगे बढ़ने में अपना योगदान दे।

भारत में किसानों को उनकी मिट्टी के स्वास्थ्य के बारे में कम जानकारी है,स्वस्थ मिट्टी के लिए आवश्यक उर्वरकों की मात्रा,किस को कितना उपयोग करें, मिट्टी की जांच कब और कैसे आदि की जानकारी देना। क्योंकि ऐसा करने से खाद्य संसाधकों को सुरक्षित भोजन की आपूर्ति के लिए निरंतर जिन चुनौती का सामना करना पड़ता है। उन में कमी आएगी। इसके परिणामस्वरूप परीक्षणों और विश्लेषण की लागत में भी कमी आएगी तथा समय, धन, भोजन, ऊर्जा और अन्य की बर्बादी में भी कमी आएगी। इसलिए अगर किसानों को हर खाद्य प्रसंस्करण तकनीकीयों, संसाधनों का बेहतर उपयोग, और अच्छी कृषि पद्धतियों के बारे में अधिक जागरूक बनाना होगा,तभी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना व स्वस्थ खाद्य श्रृंखला को सुरक्षित रखना आसान होगा।

खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम :

सुरक्षित भोजन तक सार्वभौमिक पहुंच के बिना, २०३० एजेंडा तक पहुंचना असंभव होगा। पहले से ही, अनुमानित ६०० मिलियन लोग हर साल बैक्टीरिया, वायरस, विषाक्त पदार्थों या रसायनों से दूषित भोजन खाने से बीमार पड़ते हैं – और उनमें से ४२० ००० मर जाते हैं। जब भोजन सुरक्षित नहीं है, तो बच्चे सीख नहीं सकते हैं और वयस्क काम नहीं कर सकते हैं। स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और भूख को समाप्त करने में सुरक्षित भोजन की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करने के लिए हर साल ७ जून को विश्व खाद्य सुरक्षा दिवस मनाया जाता है। इसका लक्ष्य खाद्य जनित जोखिमों को रोकने, पता लगाने और प्रबंधित करने में मदद करने के लिए ध्यान आकर्षित करना और कार्रवाई को प्रेरित करना है, जिससे खाद्य सुरक्षा, मानव स्वास्थ्य, आर्थिक समृद्धि, कृषि, बाजार पहुंच, और सतत विकास में योगदान मिलता है।

यहां पांच तरीके दिए गए हैं जिनसे हम खाद्य सुरक्षा में निरंतर अंतर ला सकते हैं:

१. सुनिश्चित करें कि भोजन सुरक्षित है

राष्ट्रीय सरकारें यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण हैं कि भोजन सभी के लिए सुरक्षित और पौष्टिक हो। और उनके पास इसका अच्छा कारण है – विश्व बैंक के अनुसार, असुरक्षित भोजन की लागत कम और मध्यम आय वाली अर्थव्यवस्थाओं में सालाना खोई हुई उत्पादकता में लगभग ९५ बिलियन अमेरिकी डहलर है। इस संख्या को कम करने में मदद करने के लिए, नीति-निर्माता स्थायी कृषि और खाद्य प्रणालियों को बढ़ावा दे सकते हैं, सार्वजनिक स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य, कृषि और अन्य क्षेत्रों के बीच सहयोग को बढ़ावा दे सकते हैं। देश कोडेक्स एलिमेंटेरियस कमीशन द्वारा स्थापित अंतर्राष्ट्रीय मानकों का भी पालन कर सकते हैं।

२. सुरक्षित रूप से भोजन उगाएं

वैश्विक स्तर पर सुरक्षित भोजन की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करने के साथ-साथ उनके पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने और जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के लिए, खाद्य उत्पादकों को अच्छी प्रथाओं को अपनाने की आवश्यकता है। जैसे-जैसे खाद्य उत्पादन प्रणालियाँ बदलती हैं और बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होती हैं, किसानों को संभावित जोखिमों को दूर करने के लिए इष्टतम तरीकों पर ध्यान से विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि भोजन सुरक्षित है। उदाहरण के लिए, पौधों और जानवरों के स्वास्थ्य को एकीकृत करने से रोगाणुरोधी प्रतिरोध को हतोत्साहित करने में मदद मिल सकती है और दुनिया भर में हर साल रोगाणुरोधी प्रतिरोधी संक्रमण से मरने वाले ७०० ००० लोगों को कम किया जा सकता है।

३. खाना सुरक्षित रखें

व्यवसाय संचालकों के लिए, निवारक नियंत्रण अधिकांश खाद्य सुरक्षा समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। खाद्य संचालन में शामिल प्रत्येक व्यक्ति- प्रसंस्करण से खुदरा तक- को एचएसीसीपी जैसे कार्यक्रमों का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए, एक प्रणाली जो महत्वपूर्ण खाद्य-सुरक्षा खतरों की पहचान, मूल्यांकन और नियंत्रण करती है। बीमारी की संभावना को कम करने के अलावा, प्रसंस्करण, भंडारण और संरक्षण के लिए अच्छे अभ्यास भी फसल के बाद के नुकसान को कम कर सकते हैं और खाद्य को इसके पोषण मूल्य को बनाए रखने में मदद कर सकते हैं – साथ ही साथ व्यापार को १.६ ट्रिलियन अमेरिकी डहलर के वैश्विक खाद्य व्यापार में उनकी भागीदारी को अधिकतम करने में मदद कर सकते हैं।

४. जांचें कि खाना सुरक्षित है

उपभोक्ताओं के पास सुरक्षित और स्वस्थ भोजन की मांग करने की शक्ति है। खाद्य सुरक्षा की जटिलता को देखते हुए, उपभोक्ताओं को अपने भोजन विकल्पों से जुड़े पोषण और रोग जोखिमों के बारे में समय पर, स्पष्ट और विश्वसनीय जानकारी तक पहुंच की आवश्यकता है। खाद्य सुरक्षा के बारे में उपभोक्ताओं को शिक्षित करने में निवेश से खाद्य जनित बीमारी को कम करने और निवेश किए गए प्रत्येक डालर के दस गुना तक की बचत वापस करने की क्षमता है।

५. सुरक्षा के लिए टीम बनाएं

अंततः, खाद्य सुरक्षा एक साझा जिम्मेदारी है। सरकारों, क्षेत्रीय आर्थिक निकायों, संयुक्त राष्ट्र संगठनों, विकास एजेंसियों, व्यापार संगठनों, उपभोक्ता और उत्पादक समूहों, शैक्षणिक और अनुसंधान संस्थानों और निजी क्षेत्र की संस्थाओं को उन मुद्दों पर मिलकर काम करना चाहिए जो हमें प्रभावित करते हैं। वैश्विक स्तर पर खाद्य जनित बीमारी के प्रकोप का मुकाबला करते समय सरकार के भीतर और सीमाओं के पार वैश्विक स्तर पर, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर सहयोग की आवश्यकता है।

जीरो हंगर की दुनिया तभी हासिल की जा सकती है जब खाया गया भोजन सुरक्षित हो। इस विश्व खाद्य सुरक्षा दिवस, और हर दिन, हमारे पास सुरक्षित भोजन के लिए आभारी रहें और यह सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई करें कि खाद्य सुरक्षा व स्वस्थ खाद्य श्रृंखला हम सभी की जिम्मेदारी भी है और राष्ट्रीय धर्म भी है इसको सत्य निष्ठा के साथ निभायें।

८. गौ-आधारित परम्परागत कृषि पद्धति

ब्रह्म कुमारी संस्था, जम्मू

पृष्ठ भूमि

भारत की ऋषि कृषि परम्परा सर्वाधिक प्राचीन और सारे विश्व के लिए अनुकरणीय रही है । एक समय था, जब, संपूर्ण विश्व के कृषि उपज का आधा हिस्सा केवल भारत में ही पैदा होता था । देश की ८५ प्रतिशत से अधिक आबादी केवल कृषि कार्य में संलग्न थी । भारत कृषि उत्पादों के निर्यात का सबसे बड़ा केंद्र था,जो १९४७ तक घटकर मात्र २प्रतिशत रह गया । हमारी आय का मुख्य श्रोत कृषि ही थी,जिस पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ने से इसका मूल ढांचा आज़ादी के समय तक तहस नहस हो चूका था । सारे विश्व का पेट भरने वाला भारत स्वयं भुखमरी के कगार पर था ।

आज़ादी के बाद हरित क्रांति का नारा देते हुए, हमारे वैज्ञानिको ,नीति निर्धारिको और किसानों के संयुक्त प्रयास से रासायनिक खेती आरम्भ की गयी, जिसके परिणामस्वरूप खाद्यान के उत्पाद में भारत न केवल आत्मनिर्भर हुआ बल्कि अन्न का इतना उत्पादन हो रहा है कि उसके भंडारण के लिए भण्डारगार कम पड़ रहे हैं । वहीं दूसरी ओर, विगत ५० वर्षो में रासायनिक खेती ने मानव स्वास्थ्य, जीव जगत, पर्यावरण ओर मृदा स्वास्थ्य को जो गंभीर क्षति पहँचायी है, उसके दुष्प्रभावों ने हमें अपने अस्तित्व कि रक्षा हेतु नए सिरे से सोचने के लिए विवश किया है । आज यह महसूस किया जा रहा है कि हमें फिर से प्राकृतिक, शास्वत ऋषि-कृषि परम्परा कि ओर लौटना होगा, जो युगों-युगों से जांची परखी होने के साथ ही स्वर्णिम भारत का आधार थी ।

भारतीय कृषि की प्राचीन परम्परा

भारतीय कृषि की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि किसान का धरती माँ, प्रकृति और गौ गोवंश से भावनात्मक रिश्ता हुआ करता था । वेद के अनुसार :''भूमि हमारी माता है, आकाश हमारा पिता है,हम उसके पुत्र हैं । हे ईश्वर हम आपके आभारी हैं जो आपने हमें प्रकृति कि ये अमूल्य निधियां प्रधान की हैं ।

प्राचीन काल में किसान खेती का हर कार्य परमात्मा को ध्यान करके प्रारंभ करते थे।

शास्वत यौगिक खेती

शास्वत यौगिक खेती, वह खेती है, जिसके अंतर्गत, भौतिक ऊर्जा और पराभौतिक ऊर्जा के मध्य कृषि कार्य करने वाला व्यक्ति अपने विचारों के माध्यम से प्रेमपूर्वक, भावनात्मक संबध करता है और सकारत्मक विचार तरंगो का प्रयोग अपनी फसलों और प्रकृति पर करता है ।

सहज राजयोग क्या है

अपने को देह से भिन्न, भृकुटि के मध्य स्थित,ज्योति बिंदु स्वरूप आत्मा निश्चय कर,परम ज्योति,परमपिता से मानसिक संबध जोड़ने की क्रिया को ही राजयोग कहा जाता है ।

खेती में योग का प्रयोग कैसे ?

परमात्मा से योग के माध्यम से मिलने वाली शक्ति का प्रयोग हम न केवल मनुष्यात्माओं बल्कि प्रकृति को सकाश देते हैं । मन ही मन प्रकृति से बातें करते हैं कि, ''हमने आप सभी को बहुत दुःख दिया है .....मैं स्वयं भी दुखी हुआ और आपको भी दुःख पुहंचाया है.... .....अब मुझे सत्य का बोध हो गया है, मैं माफ़ी मांगता हूँ.....आज से मैं प्रकृति के नियमो में कोई बाधा नहीं डालूंगा'' ।

खेती में योग के प्रयोग कि चरणबद्ध प्रक्रिया

१)भूमि उपचार	२) बीज उपचार
३)जल उपचार	४) फसल सुरक्षा
५)सूक्षम पर्यावरण	६)परमात्म ध्वजारोहण
७)कर्मयोग	८)आभार

शास्वत यौगिक खेती के लाभ

सरदार कृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय,गुजरात के वैज्ञानिकों के शोध के पश्चात यह पाया गया कि शास्वत योगिक खेती से बीजों का अनुकरण ७ प्रतिशत तक बढ़ गया । मूंगफली में आयरन और जिंक की मात्रा अैर गेंहू में जिंक और कॉपर की मात्रा भी बढ़ी हुई पायी गयी । शास्वत यौगिक खेती वाले प्लॉट में अन्य प्लॉटों की तुलना में मिटटी के अंदर अधिक माईक्रोबियल गतिविधि पायी गयी ।

सर जगदीश चंन्द्र बोस जी ने अपने शोध में ये सिद्ध किया कि पौधे मनुष्य कि भावनाओं के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं । मनुष्य जो भी विचार या भावना उत्पन्न करता है उसका सीधा प्रभाव पौधों पर पड़ता है ।

दशपर्णी अर्क बनाने कि विधि
(फसल सुरक्षा के लिए)

सामग्री

गोबर --२ किलो	हल्दी पाउडर --१ /२ किलो
पानी--१५० लीटर	गोमूत्र (देशी गाय)--५ लीटर
हरी मिर्च कि चटनी --१ किलो	अदरक चटनी --१ किलो
गेंदे के पौधे --२ किलो	तुलसी के पत्ते --१ किलो
दस प्रकार की वनस्पतयों के प्रति १ किलो पत्ते उपयोग में ले जैसे **कड़वा नीम,कड़वा बादाम,सीताफल,पीपता,धतूरा,सिंघी,कनेर, जाफोतरा,गिलोय**	

अर्क बनाने कि विधि

- २०० लीटर टंकी को छांव में रखे
- सभी सामग्री एकत्रित कर पानी में घोल दे
- टंकी का मुख मोठे कपडे के साथ बांध कर रखे
- रोज़ दो बार मिश्रण कि दिशा में घुमाकर फिर ढककर रखे
- ३० से ४० दिन में अर्क तैयार होता है
- संकर मिश्रण को छांव में रखने से ६ मास तक उपयोग कर सकते हैं
- यह मिश्रण २ से ४प्रतिशतपानी में मिलाकर, जब धूप काम हो तब छिड़काव करने से कीट नियंत्रित होते हैं ।

Comparative Research Data

Method	RiceQ/ha	Wheat Q/Hec
Yogic	43-61	20-55
Organic	33-79	16-63
Chemical	41-21	19-5

हर्बल कुणपजल बनाने की सामग्री

गोबर (देशी गाय)-- १५ किलो	गोमूत्र --१५ लीटर
गुड़ (खराब वाला)--२ किलो	सरसो या नीम खली --२ किलो
खरपतबार (बारीक कटे)--२० किलो	पानी --१० लीटर
धान की भूसी --३ किलो	

हर्बल कुणपजल बनाने की विधि

- २०० लीटर क्षमता वाला ढ़क्कन युक्त प्लास्टिक का ड्रम लें ।
- पहले २ किलो धान की भूसी को ५ लीटर पानी में मिलाकर ३०-४५ मिनट उबाले फिर ठंडा करके छान लें और जिस ड्रम में कुणपजल बना रहे हैं उसमे डाल दें ।
- अब सब सामग्री ड्रम में डालकर १० लीटर पानी भी ड्रम में डाले और लाठी से हिलाकर मिला दें ।
- सामग्री हिलाने के बाद इसमें पानी का आयतन १०० लीटर कर ले तथा ढक्कन बांध करके रख दें ।
- रोज़ दिन में दो बार मोटे डंडे से ड्रम की सामग्री को ठीक से मिलाये और फिर ढ़क्कन बंद करके रख दें । ऐसा गर्मियों में १० -१२ दिन और सर्दीयों में १५ से २५ दिन करें ।
- जिस दिन ड्रम में बुलबुले बनना बंद हो जाएं तब मान लेना चाहिए कि खाद की प्रक्रिया पूर्ण हो गयी है और हर्बल कुणपजल तैयार हो गया है ।
- इसको कपड़े से छान लें और जमीन पर प्रयोग करें । छिड़काब के लिए अच्छी तरह से दो तीन बार छान लें जिससे स्प्रेयर की नोज़ल में अवरोध न हो ।
- इस तरह से तैयार हर्बल कुणपजल को उपयोग हेतु ६-१२ महीने तक आसानी से रख सकते हैं ।

६. सहज कृषि-किसानों के लिए वरदान

भव कुमार सिन्हा, रीना, गुरदेव चंद, परमिंद्र कुमार, प्रदीप कुमार कुमावत, नवीन कुमार

परिचयः

समय की घड़ी से तेज चलती जनसंख्या की घड़ी यह बताने के लिए काफी है कि भारत वर्ष और विश्व की जनसंख्या कितनी तेज विकास की ओर अग्रसर है जो जनसंख्या धरती पर मौजूद है, उसको भोजन, कपड़ा और आवास अवश्य मिलना चाहिए, जनसंख्या बढ़ने से आपस में रोजमर्रा की वस्तुएं की वस्तुओं के लिए स्पर्धा भी बढ़ती है। यही आपस की स्पर्धा नकारात्मकता को जन्म देती है, यही नकारात्मक शक्तियां मानव जीवन के प्रत्येक आयाम को दूषित करती है। नकारात्मक शक्तियां मानव जीवन के अलावा पृथ्वी, पानी, वनस्पति और वातावरण को भी दूषित करते हैं, जो कि हमारे कृषि का मुख्य अंग है, यही नकारात्मक शक्तियां फसलों के विकास उत्पादन, पशुओं के स्वास्थ्य तथा गुणवत्ता, दुग्ध-उत्पादन, पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं, परम पूज्य श्री माताजी निर्मला देवी की असीम कृपा से सहज योग का आरंभ हुआ है और सहज योग से ही नकारात्मक शक्तियों को कम करके कृषि और कृषि से संबंधित सभी क्षेत्रों में अद्‌भुत फायदे देखने को मिले।

सहज कृषि पद्धतिः

- जिस बीज को बोना है उसे एक बर्तन में बीज का थोड़ा भाग ले और उसे श्री माताजी के सामने शाम को ही रख दें यदि बीज की मात्रा कम है तो पूरा बीज रखें एक बाल्टी या लोटे में पानी को रखें।
- श्री माताजी के सामने ध्यान में बैठे और ध्यान पूरा कर लेने के बाद श्री शाकंभरी देवी का मंत्र लेवे ।

"ॐ त्वमेव में साक्षात श्री शाकंभरी देवी साक्षात ।

श्री आदि शक्ति माताजी, श्री निर्मला देवी नमो नमः"।।

- उसके बाद भूमि देवी और जल देवता का मंत्र लेवे।

"ॐ त्वमेव साक्षात श्री आदि भूमि देवी साक्षात ।

श्री आदि शक्ति माताजी, श्री निर्मला देवी नमो नमः"।।

"ॐ त्वमेव साक्षात श्री जल देवता साक्षात ।

श्री आदि शक्ति माताजी, श्री निर्मला देवी नमो नमः"।।

- तत्पश्चात श्री माता जी से प्रार्थना करें कि श्री माताजी आप साक्षात हरियाली एवं जल की देवी है कृपया इस बीज व पानी को अपने चैतन्य मय से आशीर्वादित कीजिए जिससे यह बीज पूर्ण रूप से विकसित एवं उपजमय हो जाए।
- यदि संभव है तो खेत की मिट्टी को भी माताजी के समक्ष रख सकते हैं।
- दूसरे दिन सुबह फिर ध्यान के बाद श्री माताजी से अनुमति लेकर खेत पर जाकर गणेश अथर्वशीर्ष पढ़कर बुवाई कर दे ।
- श्री माता जी से प्रार्थना करें कि आप अपनी सुरक्षा में भेज को अच्छी फसल और उत्पादन का आशीर्वाद दें ।
- बीच-बीच में खेत पर जाकर चारों तरफ घूम कर गणेश अथर्वशीर्ष पढ़ें शाकंभरी देवी का मंत्र कहें और श्री माताजी को सौंप दें कि फसल आपकी सुरक्षा में बिना नुकसान के तैयार कर दें ।
- फसल की परस्पर विकास से फसल के परिपक्व होने तक जो भी पानी खाद डालें उन्हें श्री माताजी के चरण में रखकर चयनित कर के खेत में डालें या छिड़काव करें ।
- खेत की नकारात्मकता समाप्त करने के लिए खेत के चारों तरफ पानी वाला नारियल गणेश अथर्वशीर्ष बोलते हुए स्थापित करें या कपूर हवन करते हुए २४ मंत्र श्री माताजी के सहजयोगी/ योगिनी का सामूहिक ध्यान धारणा कर श्री माताजी से प्रार्थना करना या खेत में सामूहिक हवन करना ।

सहज कृषि की उपलब्धियांः

१. ऑस्ट्रियाः

- वर्ष १९८६ में वीना (ऑस्ट्रिया) के वैज्ञानिक डा. हमिद माईलेनी ने पशुओं मैं चैतन्य मय पानी का उपयोग करके उनके वजन मैं १५ प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई ।
- वर्ष १९८६ में वैज्ञानिक डाक्टर हामिद माइक्लिन बिना आस्ट्रेलिया ने सूरजमुखी एवं मक्का फसल में चैतन्यमय पानी का उपयोग कर अच्छा अंकुरण के साथ २० से २५ प्रतिशत ज्यादा पैदावार प्राप्त की गई ।

२. महाराणा प्रताप कृषि विश्वविद्यालय उदयपुर (राजस्थान) वर्ष २००२ में मूंगफली की फसल में सहज कृषि तकनीक अपनाने से ७० प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि हुई ।

३. दैवीय चैतन्यमय गेहूं का उत्पादन २० से ३० प्रतिशत बड़ा जो कि सन २००२-०३ में जयपुर में अंकित किया ।

४. कृषक श्री अनिल यादव गांव भबराना कोटपूतली के यहां नींबू के पौधों में सहज तकनीकी से २ गुना उत्पादन तथा चमत्कार व दाग धब्बे रहित नींबू प्राप्त किए गए ।

५. राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केंद्र अजमेर में डा लोकेश शेखावत को वाइस चांसलर कृषि विश्वविद्यालय अजमेर द्वारा सहज कृषि प्रदर्शनी में उत्कृष्ट अवार्ड से सम्मानित किया गया ।

६. सहज कृषि के क्षेत्र में महाराष्ट्र राज्य अग्रिम है तथा उल्लेखनीय कार्य हो रहा है ।

- कृषि विश्वविद्यालय राहुरी महाराष्ट्र के प्रोफेसर डाक्टर सेनगरी ने गेहूं व सूरजमुखी की फसलों से सहज कृषि से २ गुना ज्यादा पैदावार प्राप्त की सहजयोग चैतन्य लहरियों से स्वस्थ पशु एवं दुग्ध उत्पादन में ज्यादा वृद्धि देखी गई इस उत्कृष्ट कार्य के लिए उन्हें नेशनल अवार्ड से सम्मानित किया गया ।
- राहुरी कृषि विश्वविद्यालय महाराष्ट्र में कृषि पर शोध कार्य किया गया जिससे उत्साह जनक परिणाम इस प्रकार हैः-

  पौधों की बढ़वारः ०- ४२.९ प्रतिशत तक वढ़ी

  अंकुरण में वृद्धिः ० - २० प्रतिशत

  उत्पादन में वृद्धिः १४.३ से ५० प्रतिशत तक अधिक पैदावार

  पक्षियों के शरीर वजन में वृद्धि, अंडा देने की क्षमता में वृद्धि
- सहजी कृषक श्री पी. आर. टी. बहाड़े श्री कल्याण, श्री कृष्ण एस. शिंदे, श्री गजानंद जिन टकर द्वारा राष्ट्रीय सहज कृषि प्रोजेक्ट के अंतर्गत कृषि परीक्षण किए गए, जिसका परिणाम निम्न हैः-

	उत्पादन क्विंटल प्रति हेक्टर एकड़	
फसल	**चैतन्यमय प्लाट**	**अचैतन्यमय प्लाट**
प्याज	४.०	२.०
कपास	१४.०	१०.०
चना	१०.०	७.०
सोयाबीन	१२(जड़ों का फैलाव एवंघाटों का गठन ज्यादा)	६.५ (जड़ों का फैलाव कमजोर एवं घाटोंका गठन कमजोर)

७. उत्तराखंड में सहजयोग चैतन्य लहरियों का प्रभाव दुग्ध उत्पादन में देखा गया श्रीमती किरण सिंह ग्राम भोगपुर जिला हरिद्वार स्थित महिला भोगपुर दुग्ध उत्पादक सहकारी समिति में सहजयोग की चैतन्य लहरियों को पशुओं को चारा, पानी में देकर दुग्ध की उत्तम गुणवत्ता एवं दुग्ध उत्पादन प्राप्त किया।

- भैंस को चैतन्यमय चारा एवं पानी देने से पशु स्वस्थ्य होने के साथ-साथ दुग्ध उत्पादन में वृद्धि हुई पहले ५ किलो देती थी, फिर धीरे-धीरे १२ किलो तक देने लगी ।
- श्री जगपाल सिंह हरिद्वार ने गेहूं की फसल में चैतन्य पानी एवं बीज का प्रयोग कर दो बुला पैदावार प्राप्त की गन्ना एवं धान में भी ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया ।

- पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय में केशव जी डा. एच. आर. जायसवाल सब्जी वैज्ञानिक द्वारा हर साल गांव में चैतन्यमय बीज वितरण कर सहज कृषकों को अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित किया इसी प्रकार टमाटर, भिंडी, गुलाब, गुलदाउदी, व लौकी में चैतन्य लहरियों का प्रभाव देखा गया था तथा उत्पादन में वृद्धि पाई गई ।

८. नरेंद्र देव कृषि विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश द्वारा धान एवं पपीता में अनुसंधान कार्य किया धान की फसल में चैतन्यमय बीज व पानी का उपयोग करने से ३० प्रतिशत अधिक पैदावार हुई तथा पपीते पपीता बड़े साइज १.५ गुना के प्राप्त हुए, शोध कार्य का परिणाम इस प्रकार हैः-

राष्ट्रीय सहज कृषि परियोजना के अंतर्गत कृषको द्वारा परीक्षण किए गए परिणाम निम्न हैः-

फसल	**चैतन्यमय प्लाट**	**अचैतन्यमय प्लाट (प्रति एकड़ उत्पादन)**
आलू	९२.५	७०.०
धान	४८.०	३५.०
गेहूं	२५.०	१८.०
चना	७०० ग्राम हरे चने प्रति पौधा	२०० ग्राम हरे चने प्रति
	बंदरों ने नुकसान नहीं किया	पौधा बंदरों ने नुकसान किया

९. मध्य प्रदेश में सहायक कृषि श्री विजय पटेल ने चैतन्यमय गन्ना की फसल अंतर्राष्ट्रीय दिवस २१ मार्च २०१४ को गन्ना के १०-१० बंडल लेकर आए जिनके लंबाई करीबन १४-१५ फ़ीट थी, जबकि नियंत्रण खेत में १० से १२ लंबाई फ़ीट पाई गई ।

- श्री शांतिलाल खरगोन जिला मध्य प्रदेश में गन्ने व मक्का की फसल में सूअर नुकसान पहुंचाते थे, जब वहां चैतन्य अनाज व पानी का उपयोग किया तो सूअरों ने नुकसान नहीं पहुंचाया ना ही खेत में आए ।
- कृषि विश्वविद्यालय भुवनेश्वर उड़ीसा में सहजी डा. वी.के. मोहंती प्रोफेसर के अथक प्रयासों से १७०० आदिवासी दर्शकों को आत्म साक्षात्कार देकर सहज कृषि अपनाने का उत्साह जनक कार्य किया तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सहजयोग के केंद्र स्थापित किए गए, राष्ट्रीय सहज कृषि प्रोजेक्ट में अंतर्गत कृषको को खेतों में कृषि परीक्षण धान/ गेहूं फसलों में आयोजित किए गए तथा उत्साह जनक परिणाम प्राप्त हुए । श्री माताजी का सपना था कि सहज योग - सहज कृषि गांव-गांव में फैलाएं, आओ हम सब मिलकर मां का सपना साकार करें ।

१०. भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग का दायरा और मानक

प्रणव कुमार, प्रहलाद एस स्लाथिया, प्रेम कुमार, ए.के. पाठक और मनिंदर सिंह

परिचय

भारत में पशुधन क्षेत्र एक परिवार की सूक्ष्म अर्थव्यवस्था से लेकर राष्ट्र की वृहद अर्थव्यवस्था तक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में ग्रामीण जीवन आर्थिक और खाद्य सुरक्षा दोनों के लिए पशुधन पर निर्भर करता है। गांवों में उत्पन्न पशुधन उत्पादों को शहरी क्षेत्रों में ले जाया जाता है। इस प्रक्रिया में न केवल पशुधन उत्पादों बल्कि एंटीबायोटिक और अन्य रासायनिक अवशेषों को भी ले जाया जाता है। पशुधन क्षेत्र में एंटीबायोटिक दवाओं के लगातार और व्यापक उपयोग के परिणामस्वरूप मानव आबादी में एंटीबायोटिक प्रतिरोध का विकास हुआ है। एंटीबायोटिक उपयोग की डिग्री इतनी व्यापक है कि प्रतिरोध मुख्य रूप से मानव शरीर में एक ही एंटीबायोटिक के जैव-संचय से बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप विषाक्त लक्षणों की एक श्रृंखला होती है और अंततः घातक हो जाती है। इसका मतलब है कि हमें एंटीबायोटिक दवाओं और अन्य सिंथेटिक फ़ीड एडिटिव्स और दवाओं के उपयोग को बंद कर देना चाहिए। लेकिन जब कोई जानवर बीमार हो जाए तो उसे क्या करना चाहिए? इसका सरल उत्तर है मूल बातों की ओर लौटना, यानी पारंपरिक डेयरी फार्मिंग से स्थानीय रूप से उपलब्ध प्राकृतिक जड़ी-बूटियों, चारा और चारे को रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से मुक्त करना, एक ऐसा तरीका जो जैविक डेयरी खेती को बढ़ावा देता है। जड़ी-बूटियाँ रोग की स्थिति को ठीक कर देंगी, और उनके अवशेष पशुधन उत्पाद में मौजूद नहीं होंगे (कुमार, २०१६)। सिंथेटिक रसायनों और दवाओं से उपचारित पौधे और पशु उत्पाद मनुष्यों के लिए धीमे जहर का काम करते हैं, जो धीरे-धीरे हमारे स्वास्थ्य और आने वाली पीढ़ियों को मारते हैं। इसलिए, दुनिया भर में, दुनिया के १८७ देश (FiBLऔर IFOAM ईयर बुक, २०२१) रासायनिक मुक्त खेती, यानी जैविक खेती की ओर लौट रहे हैं। इस प्रकार, जैविक खेती स्थिरता के लिए प्रयास करती है, फसलों और पशुधन उत्पादन को सुनिश्चित करती है, जिसमें कोई हानिकारक अवशेष नहीं होता है, और उद्यम के तरीके जो टिकाऊ होते हैं और प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखते हैं (डार्नहोफर एट अल., २०१०)।

जैविक पशुपालन

भोजन का उत्पादन पशुपालन का मूल लक्ष्य है। कुछ का दावा है कि हम भोजन के लिए जीते हैं, जबकि अन्य तर्क देते हैं कि जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है। जो कुछ भी है, याद रखने वाली सबसे आवश्यक बात यह है कि "जैसा भोजन है, वैसा ही मन है, जैसा मन है, वैसा ही विचार है, जैसा विचार है, वैसा ही कर्म है।" जीवन सबसे पहले समुद्र में अस्तित्व में आया; समुद्र में ७२ प्राकृतिक तत्व होते हैं, साथ ही जानवरों, पौधों और मनुष्यों में ७२ ट्रेस तत्व होते हैं। इसलिए भोजन में प्राकृतिक तत्व होने चाहिए। प्रकृति मानव जाति की जननी है। जीवन जैविक प्रक्रियाओं के हिस्से के रूप में विकसित हुआ है। यह मानवता के अस्तित्व को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैविक पशुपालन एक ऐसी प्रणाली है जिसे पशुओं को उनकी प्राकृतिक आवश्यकताओं का पालन करते हुए आरामदायक और तनाव मुक्त जीवन प्रदान करने के लिए डिज़ाइन किया गया है जो पशु पोषण, पशु स्वास्थ्य, पशु आवास और प्रजनन के संदर्भ में पर्यावरण से प्रमाणित जैविक और बायोडिग्रेडेबल इनपुट के उपयोग को बढ़ावा देता है। जानवरों के कल्याण को सुनिश्चित करते हुए सिंथेटिक इनपुट जैसे ड्रग्स, फीड एडिटिव्स और आनुवंशिक रूप से इंजीनियर प्रजनन इनपुट के उपयोग से बचा जाता है। जैविक पशुपालन उन क्षेत्रों में से एक है जहां जैविक किसानों के कौशल आवश्यक हैं और सबसे अधिक मांग की जाती है (सिंह, २०२०)। पशुधन, विशेष रूप से जुगाली करने वाले, फसलों और घास के मैदानों की उर्वरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैविक पशुधन उत्पादन के मूल सिद्धांतों को भूमि आधारित गतिविधि (घर में उगाई जाने वाली चारा; खाद उसी भूमि पर लौटाया जाता है जो चारा पैदा करती है), अच्छा पशु स्वास्थ्य और कल्याण (बाहरी, मुक्त-सीमा, चारागाह आदि तक पूर्ण पहुंच, उत्पादन को अधिकतम करने के बजाय अनुकूलन (उपज या विकास दर के अलावा अन्य लक्षणों के लिए प्रजनन, प्रजातियों-विशिष्ट आहार आदि को खिलाना), पारंपरिक प्रणालियों की तुलना में कम स्टहकिंग घनत्व और उत्पादन स्तर, के रूप में संक्षेपित किया जा सकता है। (एस.ओ.एम, २०१५) .

जैविक डेयरी फार्मिंग

जैविक डेयरी फार्मिंग का अर्थ है जैविक फ़ीड पर जानवरों को पालना (यानी, उर्वरकों या कीटनाशकों के उपयोग के बिना खेती की जाने वाली चरागाह), एंटीबायोटिक दवाओं और हार्मोन के प्रतिबंधित उपयोग के साथ-साथ चारागाह या बाहर तक पहुंच है। जैविक डेयरी फार्म से प्राप्त उत्पाद जैविक डेयरी उत्पाद हैं। जैविक खेती एक उत्पादन प्रणाली है, लक्ष्य-आधारित नियमों का एक समूह है जो किसानों को जैविक अखंडता को बनाए रखते हुए अपनी विशेष परिस्थितियों को व्यक्तिगत रूप से प्रबंधित करने की अनुमति देता है (ओरुगंती, २०११)।

भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग का दायरा और संभावनाएं

ग्रामीण भारत में पारंपरिक और एकीकृत कृषि प्रणाली के करीब होने और स्वस्थ खाद्य उत्पादों के लिए घरेलू और विदेशी बाजार में बढ़ती उपभोक्ता जागरूकता और मांग को देखते हुए, जैविक खेती भारतीय किसानों के लिए एक आशीर्वाद हो सकती है। पारंपरिक फसल खेती क्षेत्र के विपरीत, विकासशील देशों और भारत में डेयरी उत्पादन अत्यधिक गहन नहीं है, जैसा कि डेयरी में अन्य विकसित देशों के साथ है (आर्टिज़ और ह्यू, २००७; वोल्डे और तामिर, २०१६)। भारत में कुछ कृषि-जलवायु क्षेत्र जैविक दूध उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त हैं। इन क्षेत्रों में राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश के वर्षा आधारित क्षेत्र शामिल हैं; हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, जम्मू और कश्मीर, तमिलनाडु और पूरे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के पहाड़ी इलाके। देश के कुछ क्षेत्र (विशेषकर पर्वतीय क्षेत्र) और समुदाय (कुछ जनजातियाँ) जहाँ अभी तक हरित क्रांति प्रौद्योगिकियाँ नहीं पहुँची हैं और उन्होंने कृषि-रसायनों के उपयोग को नहीं अपनाया है। इन क्षेत्रों को "जैविक क्षेत्र" (सिंह, २००७) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में भी रासायनिक आदानों के कम से कम उपयोग के कारण जैविक खेती की उच्च संभावना है। अनुमान है कि १८ मिलियन हेक्टेयर ऐसी भूमि उपलब्ध है, जिसका व्यवस्थित जैविक उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है (घोष, २००६)। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के कुछ हिस्सों के गंगा के मैदानी इलाकों में सघन फसल चक्रों और अकार्बनिक उर्वरकों और कृषि-रसायनों के भारी उपयोग के माध्यम से फसल पालन में सबसे अधिक तीव्रता देखी गई है। हालांकि, डेयरी फार्मिंग में बहुत अधिक तीव्रता नहीं आई है, जैसा कि इस क्षेत्र और अन्य क्षेत्रों में भी उन्नत देशों के साथ हुआ है। इसलिए, यह थोड़े प्रयास से जैविक में परिवर्तित होने योग्य है। देश में जैविक डेयरी फार्मिंग का एक अच्छा दायरा है क्योंकि यह छोटे धारक का कम इनपुट, फसल अवशेष चारा आधारित उत्पादन प्रणाली है जो देश के कुल दूध उत्पादन में ७० प्रतिशत का योगदान करती है (कुमार एट अल., २००५)। इस प्रकार इन प्रणालियों से कम इनपुट के आधार पर अधिक लाभदायक और टिकाऊ उत्पादन प्रणाली की पेशकश करने की उम्मीद है(हर्मेन्सन, २००३) । लेकिन इस क्षेत्र में छोटे धारक और भूमिहीन डेयरी किसान की प्रधानता भी जैविक डेयरी खेती के लिए संभावित चुनौती का एक स्रोत है, मुख्य रूप से प्रमाणन कठिनाइयों, खुली चराई भूमि आदि के कारण। ये छोटे किसान अज्ञानता और जैविक उत्पादों के लिए स्थानीय बाजार की अनुपलब्धता के कारण वे इसे जैविक दूध के रूप में विपणन नहीं कर सकते हैं। हालांकि, सहकारी संगठन जैविक दूध को प्रमाणित, खरीद, प्रसंस्करण और विपणन करके इन आंतरिक ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक डेयरी खेती को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। दूसरी ओर, प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने के लिए घरेलू बाजार में जैविक उत्पादों की कम मांग को देखते हुए, किसानों को निर्यात बाजार पर निर्भर रहने की जरूरत है (विलर और किलचर, २०११)। जैविक डेयरी फार्मिंग प्रणाली के तहत जानवरों के कल्याण का भी प्रमुख महत्व (चंदर एट अल., २०१३; चंदर और सुभ्रामहेश्वरी, २०१३) है। जैविक डेयरी फार्मिंग एक उत्पादन प्रणाली है, जो लक्ष्य-आधारित नियमों का एक समूह है जो किसानों को अपनी जैविक अखंडता का प्रबंधन करने की अनुमति देता है। (सुंदरम, २००१; ओरुगंती, २०११; वोल्डे और तामीर, २०१६)। जैविक डेयरी फार्मिंग की दिशा में प्रगति के लिए भारत के कई फायदे हैं, जैसेगुणवत्ता वाली स्वदेशी नस्लों की उपलब्धताः जैविक डेयरी फार्मिंग प्रणाली के तहत नस्ल की आवश्यकता अत्यधिक स्थान-विशिष्ट है(एनपीओपी, २०१५) । भारत जैसे विविध देश में, डेयरी पशु की एक नस्ल न तो उतनी सफल है और न ही अनुशंसित। लेकिन भारत में, विदेशों के विपरीत, प्रत्येक विशिष्ट क्षेत्र के लिए बहुत अच्छी गुणवत्ता वाली स्थानीय नस्लें उपलब्ध हैं। साहीवाल, गिर, लाल सिंधी, राठी, मवेशियों के थारपारकर जैसी नस्लें; भैंस की मुर्रा, सुरती, नीली-रवी, जाफराबादी, मेहसाणा सबसे अच्छी स्थानीय दूध उत्पादक नस्ल है (देवेंद्र, २००३)। प्राकृतिक और एकीकृत कृषि प्रणालीः जैविक खेती के लिए कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र की जटिलता और फसल विविधता की आवश्यकता होती है। भारत में अच्छी तरह से विविध पशुधन आबादी के साथ एकीकृत फसल-पशुधन खेती प्रणाली जैविक पशुधन खेती के लिए आदर्श है। अधिकांश भारतीय किसान अभी भी सीमित बाहरी इनपुट उपयोग के साथ प्राकृतिक खेती के करीब अभ्यास कर रहे हैं, जिसमें पशु उत्पादन और अधिकतम कृषि निर्भरता शामिल है, जो इसे जैविक खेती के और करीब ला रहा है। विभिन्न फसलों और जानवरों का यह एकीकरण फसल और डेयरी उद्यमों के लिए इनपुट उपलब्धता और उप-उत्पादों के कुशल पुनर्चक्रण को सुनिश्चित करता है। यह उनके व्यक्तिगत प्रभावों के योग की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण कुल योगदान के साथ सहक्रियात्मक बातचीत भी प्रदान करता है (बटरवर्थ एट अल.,२००३; देवेंद्र, २००३)। जैविक पशुपालन, एक से अधिक पशुधन प्रजातियों का एकीकरण, और फसल के साथ पशुधन एक संतुलित और टिकाऊ कृषि प्रणाली का आधार हो सकता है, जिससे पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण और प्रभावी संसाधन उपयोग की अनुमति मिलती है (सुब्रह्मण्येश्वरी और चंदर, २००८)। गहन पशुधन उत्पादन की तुलना में जैविक पशुधन खेती के लिए संभावनाएं उज्ज्वल दिखाई देती हैं, विशेष रूप से भारत के शुष्क भूमि क्षेत्रों में (चंदर एट अल., २००७)। वर्षा आधारित क्षेत्रों में, मुख्य रूप से स्थानीय पशुधन लाखों भारतीय छोटे पैमाने के किसानों का मुख्य आधार है। फसलें खराब हो सकती हैं, लेकिन पशुधन गरीब किसानों के जीवन का निर्वाह करता है। संकर पशु की तुलना में देशी पशुधन की रखरखाव लागत कम है। इस प्रकार की मिश्रित कृषि प्रणाली भारत में व्यापक रूप से प्रचलित है। किसानों को खेतों के

जैविक कृषि प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक और व्यवस्थित दृष्टिकोण के बारे में पता नहीं है (तिवारी और तिवारी, २००७)। इसलिए जैविक किसानों को तकनीकी जानकारी के रूप में इनपुट प्रदान करना आवश्यक है ताकि उनकी पशुधन प्रणाली को प्रमाणित करने के लिए संशोधित किया जा सके, जो जैविक उत्पादन प्रणालियों में अनिवार्य है(सुब्रह्मण्येश्वरी और चंदर, २००८) ।

रोगों का प्रतिरोधः भारतीय डेयरी पशु नस्लों में बीमारी, तनाव और अनावश्यक एलोपैथिक दवा/एंटीबायोटिक्स के प्रति कम संवेदनशील होते हैं, जो उन्हें जैविक प्रबंधन के तहत पालने के लिए आदर्श बनाते हैं। स्वास्थ्य समस्याओं के मामले में, होम्योपैथिक या आयुर्वेदिक दवा का इस्तेमाल किया जा सकता है। भारतीय महाद्वीप की समृद्ध जैव विविधता और किसानों के बीच समृद्ध स्वदेशी ज्ञान आधार स्वास्थ्य समस्याओं के मामले में जानवरों के कुशल उपचार और आरोग्य प्राप्ति को सुनिश्चित कर सकता है।

पशु कल्याणः भारत में डेयरी फार्मिंग मुख्य रूप से प्रकृति में व्यापक या अर्ध व्यापक है, जहां जानवरों को व्यावसायिक वाहनों के रूप में नहीं देखा जाता है जैसे कि विकसित देशों में पशु उत्पादन के कारखाने के प्रकार आम हैं (चंदर, २०१४)। नैतिक दायित्व और धार्मिक प्रतिबंधों के कारण, सामान्य भारतीय किसान पशु कल्याण से बहुत अधिक समझौता नहीं करते हैं।

स्वदेशी तकनीकी ज्ञानः प्राचीन काल से भारतीय लोग विभिन्न रोगों के इलाज के लिए जड़ी-बूटियों का उपयोग करते रहे हैं। भारत ऐसी कई जड़ी-बूटियों से समृद्ध भूमि है। रोगों के उपचार में उनका उपयोग अच्छी तरह से स्थापित किया गया है, चाहे वह मनुष्यों में हो या जानवरों में। भारत खेती के हर पहलू के लिए विविध पारंपरिक मूल्यवान ज्ञान का गढ़ है। इस प्रकार, किसान पशु स्वास्थ्य देखभाल के लिए आयुर्वेदिक और अन्य स्थानीय जड़ी-बूटियों पर आधारित स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों का व्यापक रूप से उपयोग करते हैं (देवेंद्र, २००३)।

जैविक पशुपालन (आर्गेनिक एनिमल हस्बैंड्री) मानक

IFOAMके बुनियादी मानकों (२०१४) और NPOP मानकों (२०१५) के अनुसार,''जैविक पशुपालन का मतलब न केवल जैविक भोजन खिलाना और सिंथेटिक खाद्य योजकों से बचना है, बल्कि खेत जानवरों की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने पर भी ध्यान देना है। पशुओं का अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण मुख्य उद्देश्यों में से हैं। कटे-फटे, स्थायी टेदरिंग, या झुंड के जानवरों के अलगाव के कारण पीड़ित होने से जितना संभव हो बचा जाना चाहिए। खेत जानवरों के प्रबंधन, शेडिंग / आवास, भोजन, पशु चिकित्सा उपचार, प्रजनन, खरीद, परिवहन और वध को विनियमित करने वाले मानकों की एक श्रृंखला है।

जैविक पशुपालन के लिए उत्पत्ति और रूपांतरण अवधि

- भूमिहीन किसानों (जिनके पास व्यवस्थित रूप से आर्गेनिक प्रबंधित भूमि नहीं है) को जैविक पशुपालन अभ्यास करने की अनुमति नहीं है
- अनुमतिः भूमिहीन किसान (जिसके पास व्यवस्थित रूप से आर्गेनिक प्रबंधित भूमि नहीं है) लेकिन जिसने चारा एवं आवास और अन्य जैविक मानकों की आवश्यकताओं के लिए किसी अन्य प्रमाणित जैविक किसान/ऑपरेटर के साथ लिखित सहयोग (पट्टे पर) समझौता किया है, वह अपनी जैविक खेती शुरू कर सकता है।
- पशुपालन प्रणाली जो परंपरागत से जैविक उत्पादन में परिवर्तित होती हैं, उन्हें रूपांतरण अवधि की आवश्यकता होती है।
- नए जैविक डेयरी फार्म के लिए ३६ महीने के भीतर जमीन और जानवरों को एक साथ परिवर्तित किया जा सकता है।
- डेयरी पशु की संतान को जैविक तभी माना जा सकता है जब उसकी माँ को गर्भावस्था के दौरान व्यवस्थित रूप से आर्गेनिक प्रबंधित किया गया हो ।
- दूध को केवल तभी जैविक माना जा सकता है जब दुग्धपान से पहले की गर्भावस्था के दौरान डेयरी पशु का व्यवस्थित रूप से आर्गेनिक प्रबंधन किया गया हो।
- डेयरी उत्पादन इकाई के लिए भोजन के मामले में जैविक उत्पादन में रूपांतरण अवधि १२ महीने है।
- जहां भूमि और डेयरी इकाई का जैविक स्थिति में रूपांतरण एक साथ नहीं होता है और अकेले भूमि जैविक स्थिति में पहुंच गई है, तो डेयरी जानवरों को उनके उत्पादों (दूध और दूध उत्पादों) को जैविक के रूप में बेचने से पहले ६ महीने के लिए जैविक रूप से पाला जाना चाहिए।

जैविक पशुपालन के लिए नस्ल एवं प्रजनन प्रबंधन

- जैविक डेयरी खेती के लिए पालन के लिए चुनी गई डेयरी नस्लों को रोग प्रतिरोधक क्षमता, रखरखाव. लागत और अनुकूलन क्षमता के संदर्भ में स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।
- जैविक डेयरी खेती में जहां तक संभव हो शुद्ध नस्लों को बनाए रखा जाना चाहिए।

- जैविक डेयरी खेती में प्रजनन प्रणाली उन नस्लों पर आधारित होगी जो प्राकृतिक परिस्थितियों में सफलतापूर्वक प्रजनन कर सकती हैं।
- जैविक डेयरी खेती में कृत्रिम गर्भाधान की अनुमति है।
- जैविक डेयरी खेती में भ्रूण स्थानांतरण तकनीक (ई.टी.टी) और क्लोनिंग निषिद्ध है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में हार्मोन को ओव्यूलेशन और जन्म को प्रेरित करने के लिए प्रतिबंधित किया जाता है जब तक कि इसे चिकित्सा कारणों से और पशु चिकित्सा पर्यवेक्षण के तहत अलग-अलग जानवरों पर लागू नहीं किया जाता है।
- जैविक खेती प्रणाली में उच्च पूंजी गहन नस्लों जैसे आनुवंशिक रूप से इंजीनियर नस्लों की अनुमति नहीं हैप
- शुरुआती (नए डेयरी उद्यमी) पारंपरिक डेरी से ४ सप्ताह के बछड़ों को खरीद सकते हैं, जिन्हें कोलोस्ट्रम और पूरा दूध आहार मिला है।
- आर्गेनिक डेयरी फार्मिंग के तहत सालाना पारंपरिक फार्मों से अधिकतम १० प्रतिशत प्रजनन स्टॉक लाया जा सकता है।
- जैविक डेयरी खेती के तहत पशु उत्पादन रिकॉर्ड अनिवार्य हैं।

जैविक पशुपालन के लिए पशु आवास प्रबंधन

- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत पर्याप्त प्राकृतिक बिस्तर सामग्री की आवश्यकता होती है।
- बिस्तर सामग्री जो आमतौर पर जानवरों द्वारा खाई जाती है वह जैविक होनी चाहिए।
- अत्यधिक धूप और बारिश से बचाने के अलावा पर्याप्त मुक्त आवाजाही और ताजी हवा और प्राकृतिक दिन के उजाले तक पहुंच आवश्यक है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत जानवरों को उनकी पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए हर समय स्वच्छ ताजा पानी उपलब्ध होना चाहिए।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत झुंड के जानवरों को अलग-अलग नहीं रखा जाना चाहिए।
- अहर्गेनिक डेयरी फार्मिंग में आमतौर पर किसी डेयरी जानवर को खूँटे (रस्सी या जंजीर) से बांधने की अनुमति नहीं है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में भी पशुओं को विशिष्ट कारणों से सीमित किया (खूंटे-रस्सी या जंजीर से बांधा) जा सकता है जैसे दूध दोहने, कुछ चिकित्सीय प्रक्रियाओं के लिए नियंत्रित चराई, रात के समय और पशुओं के स्वास्थ्य, सुरक्षा और भलाई के लिए।
- जैविक डेयरी खेती में जहां तक संभव हो स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का उपयोग डेयरी पशु आवासों के निर्माण के लिए किया जा सकता है।
- जैविक डेयरी खेती में स्वच्छता और जैव सुरक्षा का रखरखाव आवश्यक है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग मानकों के अनुसार दो अलग-अलग प्रजातियों के जानवरों को एक साथ नहीं रखा जाएगा।
- देशी डेयरी गाय को ढके हुए और खुले क्षेत्र के रूप में क्रमशः ३.५ और ७ वर्ग मीटर प्रति हेड फ्लोर स्पेस की आवश्यकता होती है।
  - भैंस/संकर नस्ल की गायों को ढके हुए और खुले क्षेत्र के रूप में क्रमशः ४ और ८ वर्ग मीटर प्रति हेड फ्लोर की आवश्यकता होती है।
- जैविक डेयरी खेती के तहत एक शेड में अधिकतम ५० गाय/भैंस को पाला जा सकता है।
- जैविक डेयरी खेती के तहत एक शेड में अधिकतम १२ युवा बछड़ों को पाला जा सकता है।
- जैविक डेयरी खेती के तहत एक शेड में अधिकतम ३० पुराने बछड़ों को पाला जा सकता है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत एक ब्रीडिंग सांड को कवर्ड और खुले क्षेत्र के रूप में प्रति हेड फ्लोर स्पेस के लिए क्रमशः १२ और २० वर्ग मीटर की आवश्यकता होती है।

जैविक पशुपालन के लिए डेयरी पशु पोषण मानक

- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत डेयरी पशुओं को उनकी पोषण संबंधी आवश्यकताओं को जैविक चारे से ही पूरा करना चाहिए।

- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत डेयरी पशुओं को या तो घर में उगाई जाने वाली जैविक फ़ीड या अच्छी गुणवत्ता का अहृर्गेनिक प्रमाणित रेडीमेड कंसंट्रेट चारा खिलाया जाना चाहिए।
- अहृर्गेनिक डेयरी फार्मिंग के तहत गैर-जैविक फ़ीड का प्रतिशत प्रति जुगाली करने वाले सूखे पदार्थ के १०प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।
- अपवादः जैविक डेयरी किसान विशिष्ट परिस्थितियों में गैर-जैविक फ़ीड का एक सीमित प्रतिशत (प्रति जुगाली करने वाले १०प्रतिशत से अधिक शुष्क पदार्थ) खिला सकते हैं जैसे कि ऐसे क्षेत्र जहां जैविक कृषि विकास के प्रारंभिक चरण में है/जब जैविक फ़ीड की उपलब्धता नहीं है, मौसमी प्रवास के दौरान गैर-जैविक घास या वनस्पति की अपर्याप्त मात्रा या गुणवत्ताप
- अनुमतिः एक डेयरी किसान विशिष्ट परिस्थितियों में सीमित समय के लिए गैर-जैविक फ़ीड का उच्च प्रतिशत (प्रति जुगाली करने वाले १०प्रतिशत से अधिक शुष्क पदार्थ) खिला सकता है जैसे कि चरम और असाधारण मौसम की स्थिति / मानव निर्मित या नियंत्रण से परे प्राकृतिक आपदाएं।

निषिद्धः

- जैविक डेयरी फार्मिंग में डेयरी पशुओं को कृषि पशु अपशिष्ट और उपोत्पाद (जैसे बूचड़खाने का कचरा) खिलाना प्रतिबंधित है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में डेयरी पशुओं को गोबर या अन्य खाद सहित सभी प्रकार के मलमूत्र खिलाना प्रतिबंधित है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में डेयरी पशुओं को यूरिया और अन्य सिंथेटिक नाइट्रोजन यौगिक जैसे अमीनो एसिड खिलाना प्रतिबंधित है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में डेयरी पशुओं को प्रसंस्करण सहायता के रूप में उपयोग किए जाने को छोड़कर परिरक्षकों (प्रेसेवातिवेस) को खिलाना प्रतिबंधित है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में दुधारू पशुओं को कृत्रिम वृद्धि प्रवर्तक या उत्तेजक पदार्थ खिलाना प्रतिबंधित है।
- अनुमति
- जैविक डेयरी खेती के तहत पशुओं को प्राकृतिक स्रोतों से विटामिन. ट्रेस तत्व और पूरक आहार दिया जा सकता है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत कृत्रिम विटामिन, खनिज और पूरक आहार दिया जा सकता है जब प्राकृतिक स्रोत पर्याप्त मात्रा और गुणवत्ता में उपलब्ध नहीं होते हैं।
- जैविक डेयरी फार्मिंग मानकों के अनुसार डेयरी पशुओं के युवा स्टॉक (बछड़ों) को उनकी अपनी प्रजाति से मातृ दूध या जैविक दूध उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत डेयरी पशुओं के युवा स्टॉक (बछड़ों) को न्यूनतम ३ महीने की अवधि के बाद ही छुड़ाना चाहिए ।

जैविक पशुपालन के लिए पशु स्वास्थ्य देखभाल अभ्यास

- अहृर्गेनिक डेयरी फार्मिंग में होम्योपैथी, आयुर्वेदिक दवा और एक्यूपंचर सहित प्राकृतिक दवाओं और विधियों को पहली प्राथमिकता दी जाएगी और जोर दिया जाएगा।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत बीमार पशुओं के उपचार में जातीय-पशु चिकित्सा पद्धतियां (स्वदेशी तकनीकी ज्ञान) आवश्यक घटक हैं।
- टीका
- जैविक डेयरी फार्मिंग में टीके का प्रयोग तभी किया जाएगा जब रोग ज्ञात हों या क्षेत्र में एक समस्या होने की आशंका हो और अन्य प्रबंधन तकनीकों द्वारा रोगों को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में टीकाकरण की अनुमति तब दी जाती है जब टीकाकरण कानूनी रूप से आवश्यक हो।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में पीड़ा को कम करने के लिए जहां उपयुक्त हो वहां एनेस्थेटिक्स का उपयोग किया जाएगा।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में दूध के लेट-डाउन के लिए अहृक्सीटोसिन का उपयोग करने की अनुमति नहीं है जैविक डेयरी खेती में हार्मोनल गर्मी उपचार और प्रेरित जन्म की अनुमति नहीं है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में योनि प्रत्यारोपण के उपयोग की अनुमति नहीं है।
- जैविक डेयरी खेती में बेहतर/वैज्ञानिक प्रबंधन प्रथाओं के माध्यम से स्वास्थ्य समस्याओं और बीमारियों को रोकने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

निषिद्ध

- जैविक डेयरी खेती में किसानों को निवारक एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग नहीं करना चाहिए।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में उत्पादन को प्रोत्साहित करने या प्राकृतिक विकास को दबाने के लिए उपयोग किए जाने वाले सिंथेटिक मूल के पदार्थ निषिद्ध हैं।
- एंटीबायोटिक दवाओं से उपचारित बीमार पशुओं के दूध का सेवन दवा वापसी की अवधि के बाद किया जा सकता है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में किसी भी संक्रामक रोग के कारण किसी जानवर की मृत्यु के बाद अच्छे उपायों का पालन करना चाहिए।

जैविक पशुपालन के लिए पशु रोग की रोकथाम और नियंत्रण

रोगों की रोकथाम और उपचारः प्रबंधन प्रथाओं को जानवरों की भलाई के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए, रोगों के खिलाफ अधिकतम प्रतिरोध प्राप्त करना और संक्रमण को रोकना चाहिए। बीमार और घायल पशुओं को शीघ्र और पर्याप्त उपचार दिया जाना चाहिए। होम्योपैथी. आयुर्वेदिक दवाओं और एक्यूपंक्चर सहित प्राकृतिक दवाओं और विधियों पर जोर दिया जाना चाहिए। जब बीमारी होती है तो इसका उद्देश्य प्रबंधन प्रथाओं को बदलकर भविष्य के प्रकोपों का पता लगाना और भविष्य के प्रकोप को रोकना होना चाहिए।

- यदि कोई बीमारी होती है तो किसान को इसका कारण जानने का प्रयास करना चाहिए और भविष्य के प्रकोप को रोकने के लिए प्रबंधन प्रथाओं को बदलना / हेरफेर करना चाहिए
- जैविक डेयरी खेती में जब कोई अन्य विकल्प उपलब्ध न हो तो पारंपरिक चिकित्सा (एलोपैथिक) का उपयोग किया जा सकता है।

अपवादः

- यदि पशु वर्ष में बाद में दो बार एलोपैथिक उपचार पर है तो वह उस वर्ष के लिए अपनी जैविक स्थिति खो देता है
  निषिद्ध
- जैविक डेयरी में आनुवंशिक रूप से उत्पादित टीके निषिद्ध हैं।
- जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत दवाओं पर निर्भर रहने के बजाय पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत किया जाना चाहिए ताकि प्रतिरक्षा प्रणाली काम कर सके।

जैविक पशुपालन के लिए पशु कल्याण प्रथाओं

- जानवरों को जंगली और जंगली जानवरों के शिकार से बचाने की जरूरत है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में डेयरी जानवरों का नियमित रूप से दौरा, निगरानी और निरीक्षण किया जाना चाहिए।
- जब डेयरी फार्मों में कल्याण और स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं, तो उचित प्रबंधन समायोजन को लागू करने की आवश्यकता होती है (उदाहरण के लिए स्टहकिंग घनत्व को कम करना)।
- जानवरों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिए जिससे कम से कम संभव तनाव और पीड़ा हो।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में किसी भी बीमार जानवर को काम पर नहीं लगाया जाना चाहिए।
- जैविक डेयरी खेती में बाल श्रम की अनुमति नहीं है।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में, दुधारू पशुओं का परिवहन से पहले या परिवहन के दौरान सिंथेटिक ट्रैंक्विलाइज़र या **उत्तेजक के साथ इलाज नहीं किया जाएगा।**
- जैविक डेयरी फार्मिंग में प्रत्येक डेयरी पशु को टैग के रूप में विशिष्ट पहचान संख्या देनी होगी।
- जैविक डेयरी फार्मिंग में जानवरों पर उपयोग किए जाने वाले पहचान उपकरणों को कान टैग आरएफआईडी टैग बारकोड या कोई अन्य उपयुक्त टैग मुद्रित किया जा सकता है जो स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

विकृति

- जैविक डेयरी खेती में कुछ अपवादों को छोड़कर सामान्य रूप से अंग-भंग करना प्रतिबंधित है।

अपवाद

- जैविक डेयरी फार्मिंग में बधियाकरण और डीहहर्निंग जैसे विकृति की अनुमति केवल तभी दी जाती है जब जानवरों की पीड़ा को दर्दनाशक दवाओं और एनेस्थेटिक्स द्वारा कम से कम किया जाता है, जहां भी उपयुक्त हो।

११. कम लागत मे पर्यावरण अनुकूल टिकाऊ कृषि तकनीकें

आर. पुनिया, बी. सी. शर्मा, विकास शर्मा, बी. आर. बजाया और अंकित

किसानों के जीवन स्तर का फसल की अच्छी उपज से सीधा संबंध है। किसान की आय बढ़ाना और साथ ही साथ सुरक्षित पौष्टिक भोजन की आपूर्ति और स्वास्थ्य जोखिम को कम करना एक बड़ी चुनौती है। किसान की आय दो तरह से बढ़ाई जा सकती है। एक फसल उत्पादकता को अधिकतम करना है और दूसरा अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए खेती की लागत को कम करना है। बढ़ती लागत के कारण कृषि दिन-व-दिन महंगी होती जा रही है। साथ ही किसान उत्पाद की लाभकारी कीमत के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अधिकांश किसान फसलों की खेती के लिए अधिक उत्पादन सामग्री का उपयोग कर रहे हैं ताकि अच्छी उपज हो सके जो पर्यावरण की गुणवत्ता को खराब करती है और उत्पादन की लागत में वृद्धि करती हैं जिसके कारण प्रति यूनिट क्षेत्र प्रति यूनिट समय में लाभ कम आ रहे हैं। खेती में जुताई और फसल कैसे लगाना हैं जिसका फसल की उत्पादन लागत पर सीधा प्रभाव पड़ता है। खेती की लागत खेती में शामिल उत्पादन सामग्री, भूमि और ऊर्जा की लागत पर निर्भर करती है।

पिछले कुछ वर्षों में किए तकनीकी हस्तक्षेपों और अनुभवों ने फसलों की उपज से समझौता किए बिना अधिक कुशल तकनीकों को विकसित करके उत्पादन की लागत को कम करने के कई तरीके और साधन तैयार किए है। ऐसी तकनीक को कृषि में मौद्रिक और गैर-मौद्रिक आदानों के संबंध में कम लागत वाली प्रौद्योगिकी के रूप में पहचाना गया और जिसके कारण अतिरिक्त लाभ में वृद्धि हुई। इसलिए, ऐसे परिदृश्य में कम लागत वाली प्रौद्योगिकियों को अपनाना किसानों की लाभ प्रदता में सुधार के लिए आवश्यक हो गया है। कुछ पर्यावरण के अनुकूल कम लागत वाली टिकाऊ कृषि प्रौद्योगिकियों का प्रलेखन यहां किया गया है जो उच्च लाभ लागत अनुपात के साथ फसलों की उत्पादकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

क. खेत की तैयारी

१. लेजर लैंड लेवलिंगः

लेजर लैंड लेवलर एक विशेष प्रकार का कृषि यंत्र है। यह यंत्र परंपरागत विधियों से एकदम हटकर एक अत्याधुनिक तकनीक से बना हुआ कृषि यंत्र है। इस यंत्र को ट्रैक्टर के साथ जोडकर चलाना जाता है। यह मशीन किसानों के लिए बेहद उपयोगी है। विशेषकर ऐसे किसानों के लिए जिनके खेत पूर्ण रूप से समतल नहीं है। उबड़-खाबड़ है। जिससे उन्हें फसल बोने, उवर्रक व पानी देने आदि कार्यों में काफी परेशानी होती है। ऐसे खेतों को खेती लायक बनाने का काम इस लेजर लैंड लेवलर मशीन की सहायता से किया जाता है। इस मशीन का काम भूमि को समतल बनाना है ताकि उस भूमि पर खेती करना आसान हो जाए। लेजर लैंड लेवलर से खेत को समतल बनाया जाता है। जिसके कारण खेत में खड़ी फसल पर समान रूप से सिंचाई होती है जिससे पानी की बचत होती है। इसके साथ ही खाद और ईंधन की भी बचत होती है। लेजर लैंड लेवलिंग, लेजर से लैस ड्रैग बकेट का उपयोग कर के भूमि की सतह (२ सेमी) को उसकी औसत ऊंचाई से समतल करने की एक प्रक्रिया है। यह तकनीक भूमि समतलन में उच्च स्तर की सटीकता प्राप्त करने के लिए की जाती है जिससे पानी की बचत, सिंचाई में कम समय और अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

ख. फसल स्थापना के तरीके

१. धान की सीधी बुवाई (डी.एस.आर):

धान की सीधी बुवाई से तात्पर्य नर्सरी से रोपाई के बजाय खेत में सीधे बीजों से फसल को स्थापित करने की प्रक्रिया से है। धान की सीधी बुवाई तीन बुनियादी कार्यों से बचती है, जैसे कद करना, रोपाई और पानी की परत को बनाए रखना । धान की खेती में ज्यादा संसाधन जैसे पानी, श्रम तथा ऊर्जा की आवश्यकता होती है एवं धान उत्पादन क्षेत्र में इन संसाधनों की कमी आती जा रही है। धान उत्पादन में जहाँ पानी खेतों मं भर कर रखा जाता है जिसके कारण मीथेन गैस उत्सर्जन भी बढ़ता है जो की जलवायु परिवर्तन का एक मुख्य कारण है। रोपण पद्धति के लिए खेतों में पानी भरकर उसे ट्रैक्टर से मचाया जाता है जिससे मृदा के भौतिक गुण जैसे मृदा संरचना, मिट्टी संघनता तथा अंदरूनी सतह में जल की पारगम्यता आदि खराब हो जाती है जिससे आगामी फसलों की उत्पादकता में कमी आने लगती है। जलवायु परिवर्तन, मानसून की अनिश्चितता, भू-जल संकट, श्रमिकों की कमी और धान उत्पादन की बढ़ती लागत को देखते हुए हमें धान उपजाने की परंपरागत पद्धति-सीधी बुआई विधि को पुनः अपनाना होगा तभी हम आगामी समय में पर्याप्त धान पैदा करने में सक्षम हो सकते है। रोपण विधि से धान की खेती करने में पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अनुमान है की १ किलो धान पैदा करने के लिए लगभग

४००० - ५००० लीटर पानी की खपत होती है। धान की सीधी बुआई दो विधिओं से की जाती है। पहला विधि में खेत तैयार कर ड्रिल द्वारा बीज बोया जाता है। जिसक लिए बुआई के समय खेत में पर्याप्त नमीं होना आवश्यक है। दूसरी विधि में खेत में लेव लगाकर अंकुरित बीजों को ड्रम सीडर द्वारा बोया जाता है। बुवाई से पूर्व धान के खेत को यथासंभव समतल कर लेना चाहिए। धान की सीधी बुवाई करते समय बीज को २-३ से.मी. गहराई पर ही बोना चाहिए। मशीन द्वारा सीधी बुवाई में कतार से कतार की दूरी २० से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी ५-१० से.मी. होनी चाहिए।

धान की सीधी बुवाई तकनीक से लाभ

१. धान की कुल सिंचाई की आवश्यकता का लगभग २० प्रतिशत पानी रोपाई हेतु खेत मचाने (लेव) में प्रयुक्त होता है। सीधी बुआई तकनीक अपनाने से २० से २५ प्रतिशत पानी की बचत होती है क्योंकि इस विधि से धान की बुवाई करने पर खेत में लगातार पानी बनाए रखने की आवश्यकता नही पड़ती है।

२. सीधी बुआई करने से रोपाई की तुलना में २५-३० श्रमिक प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। इस विधि में समय की बचत भी हो जाती है क्योंकि इस विधि में धान की पौध तैयार और रोपाई करने की जरूरत नहीं पड़ती है।

३. धान की नर्सरी उगाने, खेत मचाने तथा खेत में पौध रोपण का खर्च बच जाता है। इस प्रकार सीधी बुआई में उत्पादन व्यय कम आता है।

४. रोपाई वाली विधि की तुलना में इस तकनीक में उर्जा व इंधन ३५-४० लीटर प्रति हेक्टेयर डीजल की बचत होती है।

५. समय से धान की बुआई संपन्न हो जाती है इससे इसकी उपज अधिक मिलने की संभावना होती है।

६. धान की खेती रोपाई विधि से करने पर खेत की मचाई (लेव) करने की जरूरत पड़ती है जिससे भूमि की भौतिक दशा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जबकि सीधी बुवाई तकनीक से मिट्टी की भौतिक दशा पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

७. इस विधि से किसान भाई जीरो टिलेज मशीन में खाद व बीज डालकर आसानी से बुवाई कर सकते हैं। इससे बीज की बचत होती है और उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ती है।

८. सीधी बुआई का धान रोपित धान की अपेक्षा ७-१० दिन पहले पक जाता है जिससे रबी फसलों की समय पर बुआई की जा सकती है।

२. धान गहनता प्रणाली (एसआरआई):

एस. आर. आई. भूमि, बीज, पानी, पोषक तत्वों और मानव श्रम के उपयोग के तरीके को बदल कर संसाधनों के व्यापक प्रबंधन और संरक्षण के लिए एक पद्धति है, धान गहनता की प्रणाली में जितना संभव हो उतना जैविक खाद के साथ धान की खेती करना शामिल है, जो एक वर्ग पैटर्न में व्यापक दूरी पर अकेले लगाए गए पोध रोपण से शुरू होता है । जिसमे कम सिंचाई जो मिट्टी को नम रखे लेकिन जलमग्न नहीं, और वीडर के साथ लगातार अंतर खेती जो मिट्टी को सक्रिय रूप से हवा देती रहे । जिसमे खेती के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है, इसमें कम खर्च होता है और अधिक पैदावार होती है। इस प्रकार यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए फायदेमंद है। एस आर आई पद्धति में बीजों की कम मात्रा-३ किग्रा प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है साथ ही २०-५० प्रतिशत या उससे अधिक पैदावार और ३० प्रतिशत तक पानी की बचत शामिल है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होती है और धान की खेती की लाभ प्रदता में वृद्धि होती है।

३. शून्य जुताई:

शून्य जुताई न्यूनतम जुताई का एक चरम रूप है। इसमें प्राथमिक जुताई से पूरी तरह बचा जाता है और जुताई केवल पंक्ति क्षेत्र में बीज बोने तक ही सीमित है। जीरो टिल मशीन एक ऑपरेशन में तीन काम पूरा करती है: बीज डालने के लिए मिट्टी की संकरी रेखा को खोलना, बीज और खाद डालना और बीज को अच्छी तरह से ढक देना शामिल है । यह वह प्रक्रिया है जिसमें फसल के बीज को बिना पूर्व भूमि की तैयारी के जीरो टिल मशीन के माध्यम से बोया जाएगा जिससे खेती की लागत लगभग ४०००-५,००० रुपये प्रति हेक्टेयर कम हो जाती है। जीरो टिलेज फसल की पानी की आवश्यकता को कम करता है और अह्क्सीकरण द्वारा कार्बनिक कार्बन की हानि को कम करता है। अवशिष्ट नमी का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है और सिंचाई की संख्या को कम किया जा सकता है।

४. संरक्षण कृषि (सी.ए.):

संरक्षण कृषि वह पद्धति है जिसमें कृषिगत लागत को कम रखते हुए अत्यधिक लाभ व टिकाऊ उत्पादकता लाई जा सकती है। साथ में प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल, वातावरण व जैविक कारकों में संतुलित वृद्धि होती है। इसमें कृषि क्रियाओं उदाहरणार्थ शून्य कर्षण या अति न्यून कर्षण के साथ कृषि रसायनों एवं अकार्बनिक व कार्बनिक स्त्रोतों का संतुलित व समुचित प्रयोग होता है ताकि कृषि की विभिन्न

जैव क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव न हो। संरक्षित खेती में न्यूनतम जुताई एवं जीरो टिलेज किया जाता है जिससे फसल अवशेष मृदा की सतह पर बने रहते हैं। इससे मृदा क्षरण बहुत कम हो जाता है। सामान्यतः, ३० प्रतिशत तक फसल अवशेषों द्वारा मृदा का ढंका रहना आवश्यक है। संरक्षित खेती में फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र अपनाना अति आवश्यक है। सामान्यतः किसान एक ही प्रकार की फसल चक्र कई वर्षों तक अपनाते हैं। उदाहरण के लिए धान-गेहूं फसल प्रणाली वर्षों से किसान एक ही खेत में लगा रहे हैं जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर सीधा असर पड़ता है। फसल विविधीकरण मिट्टी की उर्वरता बनाए रखता है तथा फसल संबंधित कीटों एवं रोग व्याधि को भी कम करता है। इस खेती के सिद्धांतों को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए कई संसाधन संरक्षण तकनीकें अपनाई जाती हैं जैसे लेजर लेवलर, बैड प्लान्टर, हैप्पी सीडर टर्बो सीडर से शून्य जुताई, बूंद-बूंद सिंचाई आदि जिससे फसल संसाधनों का प्रबंधन सुचारू रूप से किया जा सके। ये सभी तकनीकें संसाधनों की कुशलता बढ़ाती हैं।

हैप्पी सीडरः वर्तमान मे फसल कटाई श्रमिकों की कमी के कारण कम्बाइन हार्वेस्टर से की जा रही है। इससे खेत में काफी भूसा (पैराली) निकलता है जिसे किसान आग लगाकर समाप्त करते हैं। हैप्पी सीडर मशीन के द्वारा बिना पैराली जलाए एवं कटाई उपरांत सीधे गेहूं की बुवाई की जाती है। वर्तमान में इसका सबसे ज्यादा उपयोग संरक्षित खेती में हो रहा है। यह एक ९ कतारी मशीन है जिसकी कार्यक्षमता ०. ४१ हेक्टेयर प्रति घंटा है। इसमें इनवर्टेड-टी प्रकार के फरो ओपनर लगे होते हैं। हैप्पी सीडर से बुवाई करने पर श्रम व लागत के साथ-साथ १५ से २० दिन की बचत होती है। कम्बाइन हार्वेस्टर से कटाई के उपरांत पैराली खेत में रह जाती है। हैप्पी सीडर में घूमने वाली लोहे की पट्टी लगी होती है जो बोई जाने वाली कतार के सामने के पैराली को काटकर बिछा देती है तथा इसमें लगी हुई जीरो टिलेज से बुवाई जाती है। संरक्षण खेती को वृहद स्तर पर लागू करने के लिए इससे मिलने वाले लाभों के प्रति जागरूकता बढ़ानी होगी। इससे मिलने वाले लाभ निम्न प्रकार हैंः

(क) संरक्षण खेती को अपनाकर पारम्परिक खेती की तुलना में २५-३० प्रतिशत तक समय, ईंधन व मजदूरी की बचत की जा सकती है। संरक्षण खेती में बुआई पर होने वाले खर्च को ५००० रुपये प्रति हैक्टेयर तक आसानी से कम किया जा सकता है।

(ख) मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल को समुचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कार्बनिक पदार्थ का मृदा के भौतिक गुणों जैसेः मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाने में मुख्य भूमिका है। संरक्षण खेती के अन्दर किसान का मित्र कहे जाने वाले केंचुए की संख्या में वृद्धि होती है।

(ग) प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं समुचित उपयोग संरक्षण खेती प्रणाली को अपनाने से पर्यावरण एवं संसाधन दोनों का संरक्षण होता है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष का स्थायी आवरण तथा फसल विविधिकरण अपनाने से मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता और फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ती है। फसल अवशेष जैव विविधता, जैविक गतिविधियों एवं वायुवीय गुणवता में बढ़ोत्तरी करते हैं। फसल अवशेष मृदा सतह से पानी का वाष्पीकरण कम करने में सहायक होते हैं जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है।

(घ) संरक्षण खेती आधारित फसल प्रणालियों को अपनाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है तथा साथ ही उपलब्ध संसाधनों को समुचित उपयोग में भी लाया जा सकता है। संरक्षण खेती में हैप्पी सीडर तथा रोटरी डिस्क ड्रिल की मदद से गेहूं को धान के अवशेषों के मध्य सफलतापूर्वक बोया जा सकता है।

(ङ) सतह पर अवशेषों को रखने से मिट्टी में नमी का संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। अवशेषों को मिट्टी पर बनाए रखने से न केवल मृदा सुधार होगा बल्कि सूक्ष्म वातावरण भी फसल के अनुकूल होगा।

ग. पोषक तत्व प्रबंधन

१. लीफ कलर चार्ट (एलसीसी)

लीफ कलर चार्ट एक प्लास्टिक, स्केल के आकार की पट्टी है जिसमें ५-६ पैनल होते हैं जिनका रंग पीले हरे से गहरे हरे रंग तक होता है। हरियाली को एक संकेतक के तौर पर प्रयोग किया जाता है। धान की पत्तियों का रंग कितना गहरा या कितना हल्का है ये तय करता है कि फसल को नाइट्रोजन की उचित मात्रा जमीन से मिल पा रही है या नही । खेतो में धान की पत्तियों के रंग को इन रंगो से मिलान कराने पर यदि पत्तियां डार्क ग्रीन है तो खेतों में यूरिया की मात्रा कम प्रयोग करने, ग्रीन है तो उससे अधिक करने, धानी है तो उससे अधिक करने तथा एलोग्रीन है तो सबसे अधिक करने की सलाह दी गई है। लीफ-कलर-चार्ट के कलर के हिसाब से प्रति हेक्टेयर यूरिया की मात्रा निर्धारित की गई है। इस चार्ट के इस्तेमाल से आप धान की फसल को अनावश्यक यूरिया देने से बच जाएंगे । इससे यूरिया की बचत होगी यानी आपकी लागत कम होगी। इससे १० से १५ किलोग्राम प्रति एकड़ नाइट्रोजन बचाया जा सकता है। जिससे आपके खेतों की उर्वरता बनी रहेगी।

२. जैव उर्वरक

रसायनिक खादों के लगातार व असंतुलित प्रयोग से हमारी कृषि हेतु जमीन व वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । मिट्टी में जीवांश की मात्रा घटने से उसकी उपजाऊ शक्ति घटती जा रही है । हमारे जलाशय तथा जमीन के नीचे का पानी प्रदूषित हुआ हैं । जैविक उर्वरकों के प्रयोग से इस प्रदूषण को काफी हद तक कम किया जा सकता है । पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए तथा रसायनिक खादों के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए खेत पर उपलब्ध सभी तरह के पदार्थ जैसे कि गोबर की खाद, केचुए की खाद, हरी खाद व जैविक खाद का प्रयोग करें और रसायनिक खादों पर निर्भरता कम करें । जैविक उर्वरकों का प्रयोग रसायनिक खादों के साथ पूरक के रुप में करें । जैविक उर्वरक लाभकारी जीवाणुओं के वह उत्पाद है जो मिट्टी व हवा से मुख्य पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन व फास्फोरस का दोहन कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं । जैव उर्वरक कम लागत में बनाए जा सकते है और इनको बनाने की विधि सरल है । जैव उर्वरक बहुत सस्ते होते हैं जिससे फसल उत्पादन की लागत घटती है । जैव उर्वरकों के प्रयोग से नाईट्रोजन व घुलनशील फास्फोरस की फसल के लिए उपलब्धता बढती हैं इससे रासायनिक खाद का प्रयोग कम हो जाता है जिससे भूमि की मृदा संरचना मृदा उर्वरक शक्ति बढ़ती है ।

३. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन प्रणाली से अभिप्राय यह हैं कि मृदा उर्वरता को बढ़ानें अथवा बनाए रखनें के लिये पोषक तत्वों के सभी उपलब्ध स्त्रोंतों से मृदा में पोषक तत्वों का इस प्रकार सामंजस्य रखा जाता हैं । जिससे मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव डाले बगैर लगातार उच्च आर्थिक उत्पादन लिया जा सकता हैं । अब एकीकृत पौध पोषक तत्व प्रणाली का महत्व इसलिये हैं, कि बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति केवल लगातार खाघान्न की बढ़ोतरी से ही संभव हैं । इसलिये प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि करनी होगी जिसके लिये प्रति हेक्टेयर अधिक पौषक तत्वों की आवश्यकता हैं अब यह बात समझ में आ गई हैं, कि देश में उर्वरक उत्पादन का स्तर पर्याप्त नहीं हैं जिससे कि वर्तमान में पौधों की कुल पौषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति हो सकें । खाद और उर्वरक पर किये गये परीक्षणों से यह बात स्पष्ट हो गई कि केवल रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से किसी भी फसल या फसल प्रणाली से अधिक उपज प्राप्त नहीं की जा सकती हैं । अतः यह निर्विवाद सत्य हो गया हैं, कि कार्बनिक खादों के साथ - साथ रासायनिक खादों से न केवल अधिक उपज ली जा सकती हैं, बल्कि लम्बें समय तक इनके प्रयोग से भूमि की उर्वरता स्तर में भी सुधार होता हैं । सघन खेती में उर्वरक समन्वित पौध पोषण आपूर्ति प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक हैं । रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई हैं लेकिन फसलों द्वारा उर्वरकों की उपयोग क्षमता लगभग ५० प्रतिशत या इससे भी कम हैं तथा शेष मात्रा विभिन्न प्रकार की हानि प्रक्रियाओं द्धारा नष्ट हो जाती हैं. भारतीय मृदाओं में जैविक कार्बन की सर्वत्र कमी हैं । कार्बनिक खाद जैसें गोबर की खाद, हरी खाद, जैव उर्वरक तथा कम्पोस्ट मृदा उर्वरता बनाये रखनें, उत्पादन को स्थिर रखनें एंव पोषक तत्वों का सही परिणाम प्राप्त करनें के लिये आवश्यक हैं ।

कृषि में एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन से लाभ

- अधिकतम पैदावार प्राप्त करना ।
- पोषक तत्वों को बर्बादी से बचाना ।
- फसल उत्पादन लागत में भी कमी आती है।
- मृदा की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य बनाये रखना।
- गुणात्मक उत्पादन।
- वातावरण की विपरीत परिस्थितियों से बचाव।

१२. नक्षत्र वाटिका - धार्मिक और वैज्ञानिक महत्व

एल एम गुप्ता, मीनाक्षी गुप्ता, पुनीत चौधरी और कुलदीप जोशी

परिचय

ज्योतिष एक पारंपरिक विज्ञान है जो मानव जीवन पर आकाशीय पिंडों के प्रभाव का अध्ययन करता है। ऐसा माना जाता है कि किसी व्यक्ति के जन्म के समय सितारों और ग्रहों की स्थिति जीवन की घटनाओं को प्रभावित कर सकती है। वैदिक ज्योतिष के अनुसार, ग्रह आकाशीय पिंड हैं जो एक वृत्ताकार पथ में पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हैं। इस वृत्ताकार पथ को राशियां (राशि) बनाने के लिए ३०° के कोण में विभाजित किया जाता है, जो आगे चलकर १३°२०' कोण में विभाजित होकर एक नक्षत्र बनाता है। नक्षत्र आकाश में तारों के समूह द्वारा बनाई गई एक पौराणिक आकृति है। ९ ग्रह, १२ राशियाँ और २७ नक्षत्र हैं। इनमें से प्रत्येक ग्रह/राशि/नक्षत्र को एक देवता, वृक्ष, पशु और पक्षी दिए गए हैं। प्राचीन भारत में, अच्छे और बुरे दशाओं (प्रभाव की अवधि) के साथ उसके स्वभाव और भविष्य का विश्लेषण और भविष्यवाणी करने के लिए जन्म कुंडली तैयार की जाती थी। सत्तारूढ़ देवता की पूजा की जाती थी और उनके राशि या नक्षत्र को सौंपे गए पेड़, पशु या पक्षी का ध्यान रखा जाता था ताकि बुरे प्रभावों को कम किया जा सके और सौभाग्य लाया जा सके।

हमारी भारतीय संस्कृति ने प्रकृति की जड़ों में हमेशा महत्व पाया है, जिस पर आज के समय में शायद ही कभी ध्यान दिया जाता है। बच्चे के जन्म अवसर पर समय संबंधित जन्म नक्षत्र को सौंपा गया एक पेड़ लगाने की भारतीय परंपरा है। साथ ही बच्चे से अपेक्षा की जाती है कि वह पौधे की देखभाल करेगा और उसे अपने बच्चे के रूप में लाएगा, क्योंकि इससे भलाई और खुशी मिलेगी। यद्यपि आप इस अवधारणा से आंखें मूंद लेते हैं, इसे एक रूढ़िवादी अनुष्ठान मानते हुए, आप इसके प्राचीन वैज्ञानिक महत्व को जानने के बाद उत्सुकता से इसका पालन कर सकते हैं। भारतीय ज्योतिष के अनुसार, इस पृथ्वी पर जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष नक्षत्र और राशि (चंद्र राशि) से संबंधित है। कुल २७ नक्षत्र होते हैं और जिस नक्षत्र में आपका जन्म होता है वह जन्म तिथि और जन्म समय पर तय होता है। तो, प्रत्येक नक्षत्र को एक पेड़ या एक पौधा आवंटित किया जाता है।

हमारे पूर्वजों और बुद्धिजीवियों ने नक्षत्र, ग्रहों और विशेष तिथि पर पैदा हुए व्यक्तियों पर उनके प्रभावों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि किसी व्यक्ति को होने वाली बीमारी या बीमारियों की भविष्यवाणी करना संभव है। उदाहरण के लिए, भरणी नक्षत्र में जन्म लेने वाले लोगों को नेत्र रोग जैसे नेत्र संक्रमण, सूजन, दोषपूर्ण नेत्र दृष्टि आदि होने का खतरा होता है। आंवला इस नक्षत्र में पैदा हुए लोगों को आवंटित वृक्ष है, जो दृष्टि में सुधार के लिए बहुत उपयोगी है। औषधीय उपयोगों के अलावा, यह पौधा अपनाने का विचार भी हमारे पूर्वजों द्वारा संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए तैयार की गई एक स्मार्ट रणनीति है। रॉबर्ट बॉल्ट ने कहा था, ''अपने बच्चों को चमत्कार समझाने की कोशिश क्यों करें जब आप उन्हें सिर्फ एक बगीचा लगा सकते हैं''। जातक के नक्षत्र के अनुसार पेड़ या पौधे की पूजा करने से व्यक्ति को सर्वोच्च पुण्य की प्राप्ति होती है। जातकों द्वारा नियमित रूप से उस पेड़ और/या पौधे को पानी देना, उसके चारों ओर कुछ चक्कर लगाना और उसकी पूजा करना सभी मनोकामनाओं को पूरा करता है और जीवन की सभी बाधाओं को दूर करता है। प्रत्येक वृक्ष की पूजा करते समय मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए। इस वरदान के पीछे यह विचार था कि अगर किसी चीज की पूजा की जाती है तो उसका कोई नुकसान नहीं हो सकता।

हिंदू मान्यता के अनुसार सभी वनस्पतियां - पेड़, पौधे और जड़ें भगवान ब्रह्मा के बालों से उत्पन्न हुई हैं और उपयोगी हैं। वास्तव में, पेड़ों की तुलना रुद्र भगवान शिव से की गई है। जिस प्रकार भगवान शिव ने विष का सेवन किया और मनुष्यों को अमृत प्रदान किया, उसी प्रकार पेड़ भी कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग करते हैं और हमें आक्सीजन प्रदान करते हैं। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता माना गया है और उस पर रहने वाले लोग उसके पुत्रों का प्रतीक हैं। वेदों में पेड़-पौधों को माता-पिता के रूप में सम्मान देने का निर्देश दिया गया है। पेड़ हमें प्राण वायु या ऑक्सीजन प्रदान करते हैं; वे न केवल पर्यावरण को शुद्ध करते हैं बल्कि पृथ्वी और आकाश के बीच सामंजस्य भी बनाए रखते हैं। **वेद एक वृक्ष को दस पुत्रों के समान मानते हैं।**

विभिन्न नक्षत्रों से संबंधित पेड़ों के धार्मिक और वैज्ञानिक महत्व को ध्यान में रखते हुए, जम्मू के शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में **''संजीवनी तपोवन'' में एक ''नक्षत्र वाटिका''** की स्थापना की गई है। इस वाटिका का उद्देश्य समाज के लाभ के लिए विशेष रूप से छात्रों और कृषक समुदाय के लिए संरक्षण, प्रदर्शन और शिक्षा है।

शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू में ''संजीवनी तपोवन" में नक्षत्र वाटिका का ख़ाका

नक्षत्र पौधों का महत्व

२७ नक्षत्रों के अनुसार पूजे जाने वाले वृछ और उनके लाभ नीचे दिए गए हैं:

१. अश्विनीः अरुसा

यह नक्षत्र दिव्य जुड़वां चिकित्सक, अश्विनी कुमारों द्वारा संचालित होता है जो प्रकाश और चेतना का नेतृत्व करते हैं। यह घोड़े के सिर जैसा दिखता है। अश्विनी नक्षत्र एक मजबूत तंत्रिका तंत्र प्रदान कर सकता है। यह पूरे भारत में और हिमालय की निचली श्रेणियों में उगता है। ब्रोंकाइटिस, तपेदिक और अन्य फेफड़े और ब्रोन्किओल विकारों के इलाज में उपयोगी है। वासका के पत्तों का काढ़ा खांसी और सर्दी के अन्य लक्षणों में मदद करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। सुखदायक क्रिया गले में जलन में मदद करती है और एक्सपेक्टोरेंट वायुमार्ग में जमा कफ को ढीला करने में मदद करेगा। वासाका की पत्तियों का पुल्टिस घावों पर उनके जीवाणुरोधी और विरोधी भड़काऊ गुणों के लिए लगाया जा सकता है।

२. भरणीः आंवला (भारतीय करौंदा)

भरणी नक्षत्र पर शुक्र ग्रह का शासन है और पीठासीन देवता भगवान यम, ''मृत्यु के देवता" हैं। भरणी नक्षत्र का पौधा आंवला है। यह विटामिन सी (एक संभावित एंटीऑक्सीडेंट) में समृद्ध है। आंवला के फलों का उपयोग दस्त, पीलिया और सूजन के इलाज के लिए किया जाता है और यह एक संभावित टॉनिक है। किसी भी रूप में आंवला का दैनिक सेवन स्वास्थ्य में सुधार करेगा। इसमें मधुमेह विरोधी और गैस्ट्रोप्रोटेक्टिव गुण भी होते हैं। यह आंखों की रोशनी बढ़ाने में बहुत उपयोगी है और बालों की सभी प्रकार की समस्याओं के लिए सबसे अच्छा उपाय है।

३. कृतिकाः अंजीर (क्लस्टर अंजीर)

कृतिका नक्षत्र सात सितारों के समूह द्वारा चिह्नित है जिसे प्लेडियस के नाम से जाना जाता है। सत्तारूढ़ देवता ''अग्नि के देवता" हैं। कृतिका नक्षत्र ऊर्जा और शक्ति का स्रोत है। क्लस्टर अंजीर इस नक्षत्र से जुड़ा हुआ है। यह भारत के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाने वाला एक सदाबहार पेड़ है। इसके पत्ते, फल, छाल, लेटेक्स और जड़ के रस का औषधीय महत्व है। इसमें हाइपोग्लाइकेमिक, रेडियो सुरक्षात्मक, कीमो-निवारक, विरोधी भड़काऊ, एनाल्जेसिक, एंटीट्यूसिव एंटी-डायरियल, हाइपोटेंसिव और घाव भरने वाले गुण हैं। इसका व्यापक रूप से पित्त विकारों, पीलिया, पेचिश, मधुमेह, दस्त और सूजन की स्थिति के उपचार में उपयोग किया गया है।

४. रोहिणीः जामुन (जावा बेर)

रोहिणी नक्षत्र में पांच तारों वाले रथ का आकार है। यह नक्षत्र सर्वोच्च विकास और सच्चे उत्थान की अभिव्यक्ति है। जामुन मधुमेह के इलाज के लिए एक बेहतरीन औषधि है। सूखे जामुन के बीज के पाउडर का नियमित सेवन मधुमेह को ठीक कर सकता है। इसमें एंटी-एच. आई.वी, एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटी-माइक्रोबियल, एंटी-फर्टिलिटी, गैस्ट्रो-प्रोटेक्टिव और एंटी-अल्सरोजेनिक गुण होते हैं।

५. मृगशिराः खैर

मृगशिरा ओरियन का एक नक्षत्र है। इस नक्षत्र पर मंगल ग्रह का शासन है और इसके अधिष्ठाता देवता सोम हैं। यह वृष और मिथुन राशि का हिस्सा है। यह मृग के सिर का प्रतीक है। मृगशिरा नक्षत्र को खोज का तारा कहा जाता है। खैर एक पर्णपाती वृक्ष है जो शुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। पत्तियों से निकाली गई काली डाई और तने से लाल-भूरे रंग की डाई का उपयोग प्राकृतिक रंग एजेंटों के रूप में किया

जाता है। हर्टवुड से निकाली गई कथा का उपयोग दर्दनाक गले और खांसी, त्वचा की जलन, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, पेट के दर्द, पेचिश और फोड़े के इलाज के लिए किया जाता है।

६. आर्द्राः चंदन

आर्द्रा नक्षत्र बेटेलगेस के साथ जुड़ा हुआ है। पीठासीन देवता रुद्र हैं। इस नक्षत्र का स्वामी ग्रह राहु है। आद्रा बौद्धिक भावना और भावुक सोच प्रस्तुत करती है। हर्टवुड से निकाले गए चंदन के तेल का उपयोग साबुन, सौंदर्य प्रसाधन और इत्र में सुगंध के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग सामान्य सर्दी, खांसी, ब्रोंकाइटिस, बुखार और मुंह और गले में खराश के इलाज के लिए किया जाता है।

७. पुनर्वसुः बांस

पुनर्वसु नक्षत्र पर बृहस्पति ग्रह का शासन है। अदिति इसकी पूजा की देवता है। यह पुनरुद्धार, नवीनीकरण और बहाली से संबंधित है। बांस का उपयोग मृदा संरक्षण, उद्योगों, सजावटी और ईंधन के प्रयोजनों के लिए किया जाता है। इसमें कई औषधीय गुण होते हैं जिनका उपयोग मिर्गी और बुखार के रोगों में किया जाता है। बांस के पाउडर का इस्तेमाल त्वचा की देखभाल में एक्सफोलिएटर और क्लीन्ज़र के रूप में किया जाता है। यह प्रकृति में मूत्रवर्धक, मीठा, शीतलक और जीवाणुरोधी है। इसका उपयोग हीट स्ट्रोक में भी किया जाता है।

८. पुष्यः पीपल

पुष्य नक्षत्र को तिष्य भी कहा जाता है। यह कर्क राशि के अंतर्गत आता है। यह शनि की ग्रह शक्तियों और बृहस्पति की दिव्य शक्ति द्वारा शासित है। इसके अधिष्ठाता देवता जीव हैं। पुष्य को सबसे प्यारे नक्षत्रों में से एक माना जाता है। पीपल का बड़ा पौराणिक, धार्मिक और औषधीय महत्व है। इसमें एंटीकहृन्वेलसेंट, एंटी डायबिटिक और एंटी इंफ्लेमेटरी गुण होते हैं। इसने घाव भरने वाले जीवाणुरोधी गुणों को भी दिखाया है। यह श्वसन और गैस्ट्रिक विकारों के उपचार में फायदेमंद है।

९. आश्लेषाः नागकेसर

अश्लेषा नक्षत्र को क्लिंगिंग स्टार/हाइड्रा के नाम से भी जाना जाता है। ग्रह स्वामी बुध हैं और अधिष्ठाता देवता नाग हैं। यह कुंडलित नाग का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक तीक्ष्ण नक्षत्र माना जाता है। नागकेसर (मेसुआ) वृक्ष एक सदाबहार माध्यम से लेकर बड़े आकार का सजावटी वृक्ष है। इस पेड़ की छाल, फूल, पत्ते, जड़, पुंकेसर और बीज में औषधीय गुण होते हैं। इसमें ज्वरनाशक, रोगाणुरोधी, कैंसर रोधी, वायुनाशक, मूत्रवर्द्धक और कफ निस्सारक गुण होते हैं। सूखे फूलों के चूर्ण को एक चौथाई चम्मच की मात्रा में गर्म पानी के साथ सेवन करने से खूनी बवासीर ठीक हो जाती है।

१०. मघाः बरगद

भारतीय ज्योतिष के अनुसार मघा एक महत्वपूर्ण नक्षत्र है। यह स्टार रेगुलस से मेल खाता है। इस नक्षत्र का स्वामी ग्रह केतु है और यह सिंह और कन्या राशियों से होकर गुजरता है। मघा नक्षत्र पितृ द्वारा शासित है। यह नेतृत्व गुणों का आशीर्वाद देता है। बरगद के पेड़ को आमतौर पर बरगद या वात वृक्ष के नाम से जाना जाता है। बरगद का पेड़ लंबे जीवन काल, शक्ति और समृद्धि का प्रतीक है। इसका उपयोग पेचिश, दस्त, ल्यूकोरिया, मेनोरेजिया और तंत्रिका संबंधी विकारों के इलाज के लिए किया जाता है। छाल और दूधिया रस छाल और लेटेक्स में मधुमेह विरोधी गतिविधि होती है। बीजों का उपयोग शीतलक और टानिक के रूप में किया जाता है।

११. पूर्वाफाल्गुनीः पलाश

पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र को भगद्वैत के नाम से भी जाना जाता है। यह सिंह नक्षत्र के माध्यम से घूमता है और तैराकी झूला का प्रतीक है। यह तारा आनंद और सृजन का प्रतीक है। इसे सौभाग्य और सौभाग्य लाने वाला माना जाता है। पलाश अग्निदेव, 'अग्नि के देवता' का वृक्ष रूप है। पलाश के फूल, पत्ते, तने की छाल, जड़ और गोंद का पारंपरिक रूप से औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है। इस पवित्र वृक्ष के फूल बलि की रस्मों में रक्त के स्थान पर चढ़ाए जाते हैं। पूजा के दौरान पवित्र अग्नि बनाने के लिए सूखे तने का उपयोग किया जाता है। पलाश के फूलों का उपयोग मस्तिष्क उत्तेजक के रूप में किया जाता है और बढ़े हुए प्लीहा और मासिक धर्म संबंधी विकारों के इलाज में उपयोग किया जाता है।

१२. उत्तराफाल्गुनीः रुद्राक्ष

उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र सूर्य के ग्रह बल द्वारा शासित है। इसमें दो तारों के साथ बेड-स्टेड के पैरों का आकार है। यह अपने शासी देवता आर्यम 'ईश्वर के देवता' से अपनी दिव्य शक्ति प्राप्त करता है। रुद्राक्ष एक सदाबहार वृक्ष है जो हिमालय की तलहटी में गंगा के मैदान में पाया जाता है। हिंदू अक्सर रुद्राक्ष की माला का उपयोग प्रार्थना और ध्यान, और मन, शरीर और आत्मा को पवित्र करने के लिए करते हैं। रुद्राक्ष की माला पहनने वाले शिव के साथ संबंध होने के कारण, भारत में, विशेष रूप से शैव धर्म के भीतर, १०८ रुद्राक्ष की माला

पहनने की एक लंबी परंपरा है। इसका उपयोग लोक चिकित्सा में तनाव, चिंता, अवसाद, धड़कन, तंत्रिका दर्द, मिर्गी, माइग्रेन, एकाग्रता की कमी, अस्थमा, उच्च रक्तचाप, गठिया और यकृत रोगों के उपचार में किया जाता है।

१३. हस्तः रीठा

हस्त नक्षत्र को कोरवी के नाम से भी जाना जाता है। अधिष्ठाता देवता सूर्य है और अधिपति ग्रह चंद्रमा है। यह बंद हाथ का प्रतीक है। यह एक हल्का या तेज नक्षत्र है। यह कन्या राशि के केंद्र में है। यह मुट्ठी के शक्तिशाली प्रतीक द्वारा सीमांकित है। यह अपने चमकदार शक्ति क्षेत्र को अपने देवता सूर्य से प्राप्त करता है। हस्त पूर्ण और तत्काल तरीके से लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता देता है। रीठा, जिसे साबुन के रूप में जाना जाता है, औषधीय रूप से एक कफोत्सारक, इमेटिक, गर्भनिरोधक के रूप में और अत्यधिक लार, मिर्गी, क्लोरोसिस और माइग्रेन के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। यह आयुर्वेदिक शैंपू और क्लीन्ज़र में एक लोकप्रिय घटक है। इनका उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक्जिमा, सोरायसिस के उपचार और झाईयों को दूर करने के लिए किया जाता है।

१४. चित्राः बेल

चित्रा नक्षत्र को एक ही तारे द्वारा दर्शाया जाता है और इसे अवसर के सितारे के रूप में भी जाना जाता है। सत्तारूढ़ देवता त्वास्त्र (ब्रह्मांड के ब्रह्मांडीय शिल्पकार) हैं और सत्तारूढ़ ग्रह मंगल है। यह समृद्धि का नक्षत्र है। चित्रा का अर्थ है बड़े, चमकीले चमकते गहना। यह कन्या और तुला राशि के अंतर्गत आता है। भारत में बेल के पेड़ का आध्यात्मिक और धार्मिक महत्व है। फल में चिकित्सीय प्रभावों की विस्तृत श्रृंखला होती है जिसमें एंटीऑक्सिडेंट, जीवाणुरोधी, एंटीवायरल, एंटी-डायरियल, गैस्ट्रोप्रोटेक्टिव, एंटी-अल्सरेटिव कोलाइटिस, एंटी-डायबिटिक और कार्डियो सुरक्षात्मक गुण शामिल हैं। बेल का उपयोग पीलिया, दस्त, चेचक और अस्थमा के इलाज के लिए भी किया जाता है। जड़ और छाल का काढ़ा बुखार के उपचार में प्रयोग किया जाता है। बेल के फलों का उपयोग आहार पूरक के रूप में मुरब्बा, हलवा और जेली के रूप में किया जाता है। खाली पेट पत्तियों को चबाने से मधुमेह को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

नक्षत्रो की विशेषताएं

नक्षत्रो की विशेषताएं					
क्रमांक	**शीर्षक**	**स्वामी**	**दिशा**	**लक्ष्य**	**शक्ति**
१.	अश्विनी	केतु	दक्षिण	धर्म	स्वास्थ्यप्राद
२.	भरणी	शुक्र	पश्चिम	**अर्थ**	निवारक
३.	कृतिका	सूर्य	उत्तर	**काम**	प्रज्वलित
४.	रोहिणी	चंद्र	पूरब	**मोक्ष**	वर्धिष्णु
५.	मृगशिरा	मंगल	दक्षिण	**मोक्ष**	सत्कार
६.	आर्द्रा	राहु	पश्चिम	**काम**	साधना
८.	पुनर्वसु	गुरु	उत्तर	**अर्थ**	पुनर्जन्म
७.	पुष्य	शनि	पूरब	धर्म	आध्यात्मिक ऊर्जा
९.	आश्लेषा	बुध	दक्षिण	धर्म	नष्ट,आध्यात्मिक ऊर्जा को बाधित करता है
१०.	मघा	केतु	पश्चिम	**अर्थ**	मृत्यु,आध्यात्मिक पुनर्जन्म
११.	पूर्वाफाल्गुनी	शुक्र	उत्तर	**काम**	जनमाना
१२.	उत्तराफाल्गुनी	सूर्य	पूरब	**मोक्ष**	समृद्धिशाली
१३.	हस्त	चंद्र	दक्षिण	**मोक्ष**	सुशिक्षित
१४.	चित्रा	मंगल	पश्चिम	**काम**	स्थापन, आध्यात्मिकता
१५.	स्वाती	राहु	उत्तर	**अर्थ**	रूपांतरित
१६.	विशाखा	गुरु	पूरब	धर्म	लुनाई
१७.	अनुराधा	शनि	दक्षिण	धर्म	प्रचुरता
१८.	ज्येष्ठा	बुध	पश्चिम	**अर्थ**	पराक्रम
१९.	मूल	केतु	उत्तर	**काम**	शोधन
२०.	पूर्वाषाढा	शुक्र	पूरब	**मोक्ष**	स्फूर्तिदायक
२१.	उत्तराषाढा	सूर्य	दक्षिण	**मोक्ष**	विजय
२२.	श्रवण	चंद्र	उत्तर	**अर्थ**	संलग्न
२३.	धनिष्ठा	मंगल	पूरब	धर्म	संयोजन
२४.	शतभिषा	राहु	दक्षिण	धर्म	उपचारात्मक
२५.	पूर्वा भाद्रपदा	गुरु	पश्चिम	**अर्थ**	विद्रोह
२६.	उत्तरा भाद्रपदा	शनि	उत्तर	**काम**	स्थिरीकरण
२८.	रेवती	बुध	पूरब	**मोक्ष**	पुष्टिकारक

१५. स्वातीः अर्जुन

स्वाती नक्षत्र को सेल्फ गोइंग स्टार के रूप में जाना जाता है। यह नक्षत्र तुला राशि में आता है। सत्तारूढ़ ग्रह राहु है और सत्तारूढ़ देवता वायु, 'हवा के देवता' हैं। यह रचनात्मकता, कला और स्वतंत्रता का प्रतीक है। आयुर्वेद में वर्णित अर्जुन वृक्ष एक महत्वपूर्ण कार्डियो-सुरक्षात्मक एजेंट है। छाल के काढ़े का उपयोग अल्सर के लिए माउथवॉश के रूप में किया जाता है और यह सबसे अच्छा एंटासिड है। सांप के काटने और बिच्छू के काटने के लिए छाल की राख शक्तिशाली उपाय है। दूध के साथ पेड़ की छाल का नियमित सेवन करने से सभी प्रकार के हृदय रोग ठीक हो जाते हैं। दर्द से राहत पाने के लिए पत्तों के रस को कान की बूंद के रूप में प्रयोग किया जाता है।

१६. विशाखाः पारिजात

विशाखा नक्षत्र तोरण के आकार में चार सितारों का प्रतीक है। यह बृहस्पति ग्रह द्वारा शासित है और देवता इंद्राग्नि हैं। यह शक्ति, स्थिति और अधिकार का प्रतीक है। यह तुला और वृश्चिक राशि के अंतर्गत आता है। पारिजात कई हिंदू धार्मिक कहानियों में प्रकट होता है और अक्सर कल्पवृक्ष से संबंधित होता है। पारिजात के पत्ते बुखार, गठिया, साइटिका में उपयोगी होते हैं और रेचक के रूप में भी उपयोग किए जाते हैं।

१७. अनुराधाः मोलसरी

अनुराधा नक्षत्र छत्र या कमल के फूल के रूप में दो तारों से बनता है। शासन करने वाला ग्रह शनि है और शासक देवता मित्र, 'दोस्ती के देवता' हैं। यह बड़ी कठिनाइयों में खिलने की क्षमता और दृढ़ संकल्प का प्रतीक है। बकुल एक मध्यम आकार का सदाबहार पेड़ है। इसे पवित्र माना जाता है और यह प्रेम और सुंदरता का प्रतीक है। विभिन्न मानव रोगों के इलाज के लिए पत्तियों, फूलों, फलों, छाल और गोंद का उपयोग दवा में किया जाता है। यह जीवाणुरोधी, ज्वरनाशक, एनाल्जेसिक, एंटीयूरोलिथिक, कृमिनाशक और घाव भरने को दर्शाता है। सूखे फूल के पाउडर का उपयोग ब्रेन टानिक के रूप में किया जा सकता है। मसूढ़ों से खून आना, दांतों की सड़न, मुंह की सूजन को ठीक करने के लिए छाल के काढ़े का उपयोग किया जा सकता है। फलों का गूदा महिलाओं में प्रजनन क्षमता में सुधार करता है और प्रसव को आसान बनाता है।

१८. ज्येष्ठः चीड़

ज्येष्ठा नक्षत्र एक बड़ा तारा है जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। ज्येष्ठ का अर्थ है बड़ा या पुराना। यह कान की अंगूठी के रूप में लाल रंग का नक्षत्र है। इसकी अध्यक्षता भगवान इंद्र करते हैं। यह नक्षत्र लक्ष्य प्राप्ति की शक्ति से संपन्न होता है। चीड़ उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में पाया जाता है और इसका उपयोग लकड़ी के लिए किया जाता है। यह राल के लिए व्यावसायिक रूप से भी उपयोग किया जाता है। आसवन पर, राल एक आवश्यक तेल पैदा करता है, जिसे आमतौर पर तारपीन और गैर-वाष्पशील रसिन के रूप में जाना जाता है। तारपीन का उपयोग मुख्य रूप से दवा की तैयारी, इत्र उद्योग, सिंथेटिक पाइन तेल, कीटाणुनाशक, कीटनाशकों और विकृतीकरण के निर्माण में विलायक के रूप में किया जाता है। रोसिन का उपयोग मुख्य रूप से कागज, साबुन, सौंदर्य प्रसाधन, पेंट, वार्निश, रबर और पहलिश उद्योगों में किया जाता है।

१९. मूलः साल

धनु राशि में मूल नक्षत्र रहता है। सत्तारूढ़ देवता देवी नीती हैं। यह विनाश और विनाश की शक्ति देता है। शासक ग्रह बृहस्पति है। यह जीवन में अधिकतम इच्छा शक्ति का उपयोग करने की क्षमता का आशीर्वाद देता है। यह शेर की पूंछ के आकार में ग्यारह सितारों के समूह का प्रतीक है। साल हिमालय क्षेत्र में पाया जाने वाला मध्यम से धीमी गति से बढ़ने वाला पेड़ है। साल भारत में दृढ़ लकड़ी लकड़ी के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। साल के बीज और फल दीपक के तेल और वनस्पति वसा के स्रोत हैं। साल बटर रूखी त्वचा के लिए एक बेहतरीन प्राकृतिक मास्चराइजर और साफ्टनर की तरह काम करता है। साल बटर बालों के लिए डीप कंडीशनर की तरह काम करता है और उन्हें रूखा होने से रोकता है

२०. पूर्वाषाढा : अशोक

पूर्वाषाढा नक्षत्र को जल नक्षत्र भी कहा जाता है। इसमें दो तारे होते हैं जो हाथी के दांतों की आकृति बनाते हैं। इस नक्षत्र का अधिपति देवता जल है और इसका स्वामी ग्रह शुक्र है। पूर्वाषाढा का अर्थ है अपराजेय। अशोक का पेड़ अपने सुंदर पत्ते और सुगंधित फूलों के लिए बहुमूल्य है। सरका असोका पारंपरिक रूप से भारतीय प्रणाली में गर्भाशय, जननांग और महिलाओं में अन्य प्रजनन विकारों, बुखार, दर्द और सूजन के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है।

२१. उत्तराषाढा : कटहल

उत्तराषाढा नक्षत्र चार सितारों से मिलकर एक मंच का आकार बनाता है। इसे आकाश में उत्तर दिशा में देखा जा सकता है। स्वामी ग्रह शुक्र है और देवता विश्वदेव हैं। यह व्यक्ति को अच्छी चीजें सीखने की क्षमता प्रदान करता है। कटहल के पेड़ को गरीबों के भोजन के रूप में जाना जाता है। फलों और बीजों का उपयोग मानव उपभोग या पशु आहार के लिए किया जाता है, छाल का उपयोग लकड़ी या जलाऊ लकड़ी के रूप में किया जाता है और पत्तियों का उपयोग पर्यावरण के अनुकूल प्लेट या कटोरे बनाने के लिए किया जाता है। इसमें एंटी-बैक्टीरियल, एंटी-फंगल, एंटी-मलेरिया, एंटी-कैंसर, एंटीहाइपरटेन्सिव गतिविधियों जैसे औषधीय गुण भी होते हैं।

२२. श्रवणः आक

श्रवण नक्षत्र को अश्वथ के नाम से भी जाना जाता है। यह मकर राशि के अंतर्गत आता है। इस नक्षत्र के देवता विष्णु हैं और इसका स्वामी ग्रह चंद्रमा है। इसमें तीन तारे होते हैं जो भगवान विष्णु के तीन चरणों के आकार के माने जाते हैं। श्रवण नक्षत्र प्रसिद्धि, लोकप्रियता और सुनने की क्षमता का आशीर्वाद देता है। आक एक सामान्य झाड़ी है जो उष्णकटिबंधीय भारत में हर जगह पाई जाती है। इसके फूल और पत्तियों का उपयोग मंदिरों में पूजा के लिए किया जाता है। औषधीय प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने वाले भाग पत्ते, फूल, सूखी जड़ें और जड़ की छाल हैं। इस पौधे के लेटेक्स में बहुत अधिक औषधीय मूल्य हैं। इसमें उच्च रक्तचाप, रोगाणुरोधी, दस्त-रोधी, ज्वरनाशक, मलेरिया-रोधी, सूजन-रोधी और दर्दनिवारक गुण होते हैं।

२३. धनिष्ठाः शमी

धनिष्ठा नक्षत्र को वैकल्पिक रूप से श्रविष्ठ, 'सिम्फनी का सितारा' कहा जाता है। स्वामी ग्रह मंगल है, आकार वृत्त है और अधिपति देवता अष्ट वास हैं। यह धन और वैभव की स्थिति को दर्शाता है। शमी भारत के शुष्क क्षेत्रों में पाए जाने वाले शंक्वाकार कांटों वाला एक सदाबहार वृक्ष है। यह विभिन्न औषधीय उपयोगों वाला एक मध्यम आकार का फलीदार बहुउद्देशीय वृक्ष है। तने की छाल का उपयोग गठिया, सामान्य सर्दी और बवासीर के इलाज के लिए किया जाता है। फूलों का उपयोग त्वचा रोगों पर रक्त शोधक और शीतलक के रूप में किया जाता है। इसके औषधीय लाभों के अलावा; यह पेड़ हिंदू धर्म में अनुष्ठानों का एक हिस्सा है और ईंधन और लकड़ी का एक उत्कृष्ट स्रोत है।

२४. शतभिषाः कदम

शतभिषा नक्षत्र का अर्थ है, 'सौ तारे'। यह कुंभ राशि के अंतर्गत आता है। यह भगवान वरुण 'बारिश के देवता' द्वारा शासित है और शासक ग्रह राहु है। कदम वृक्ष संस्कृत साहित्य में वर्णित एक शुभ वृक्ष है। औषधीय प्रयोजनों के लिए पत्ते, जड़, फल और छाल त्वचा का उपयोग किया जाता है। पत्ते घाव भरने वाले गुण दिखाते हैं और इसलिए इसका बाहरी रूप से घावों और अल्सर को ठीक करने के लिए उपयोग किया जाता है। ताजे फलों के रस का उपयोग बुखार में प्यास बुझाने के लिए किया जाता है और स्तनपान कराने वाली मां के दूध की गुणवत्ता में सुधार करता है। छाल की त्वचा का उपयोग त्वचा रोगों के इलाज के लिए किया जाता है और यह प्रकृति में ज्वरनाशक और विरोधी भड़काऊ है। बुखार और पेट दर्द होने पर इसकी जड़ें बच्चों के लिए अनुकूल होती हैं।

२५. पूर्वा भाद्रपदाः आम

पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र को यमल सद्रीश के नाम से भी जाना जाता है। इसमें दो तारे होते हैं जो जुड़वाँ की तरह दिखते हैं। शासक ग्रह बृहस्पति है और देवता अज एकपाद हैं। आम का पेड़ दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण फलों में से एक है। भारत में आम के फल को फलों का राजा माना जाता है। आम फाइबर और विटामिन से भरपूर होता है। पेड़ के सभी भागों का औषधीय महत्व है और यह एंटीऑक्सीडेंट, घाव भरने वाले, रेचक और मूत्रवर्धक के रूप में कार्य करता है। यह प्रकृति में मधुमेह विरोधी, एंटीसेप्टिक और एंटीडिजेनरेटिव है। तने की छाल में एंटी-एलर्जी और एंटीहेल्मिन्थिक गुण होते हैं।

२६. उत्तरा भाद्रपदाः नीम

उत्तरा **भाद्रपदा** नक्षत्र में बिस्तर के आकार में दो तारे होते हैं। इसकी स्थिति मीन राशि में है। शनि और देवता में अधिपति ग्रह अहिरबुद्ध्य है। इसे सबसे भाग्यशाली नक्षत्रों में से एक माना जाता है क्योंकि यह मोक्ष और शांति का आशीर्वाद देता है। नीम के पेड़ का रोगों के इलाज और सूत्रीकरण में चिकित्सीय निहितार्थ इस तथ्य पर आधारित है कि नीम का उपयोग विभिन्न रोगों के इलाज के लिए भी किया जाता है। छाल और पत्ती के अर्क में सूजन-रोधी और घाव भरने वाले गुण होते हैं। बीज में ज्वरनाशक क्रिया होती है। आयुर्वेद में जड़ की छाल और पत्ती का अर्क एक महत्वपूर्ण मधुमेह विरोधी एजेंट है।

२७. रेवतीः महुआ

रेवती नक्षत्र २१ छोटे नक्षत्रों के योग से बनता है और आकाश में 'मृदंग' की आकृति बनाता है। यह नक्षत्र मीन राशि के अंतर्गत आता है। यह बुध ग्रह द्वारा शासित है। महुआ के पेड़ को भारतीय मक्खन के पेड़ के रूप में जाना जाता है। एक मध्यम आकार के बड़े पर्णपाती पेड़ के साथ एक बड़े गोल मुकुट के साथ। महुआ का बीज उच्च गुणवत्ता वाला वसा देता है जिसे व्यावसायिक रूप से 'महुआ मक्खन' के रूप में जाना जाता है जो कोकोआ मक्खन या घी का विकल्प होता है और इसे बायोडीजल के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। महुआ के पेड़ का औद्योगिक अनुप्रयोग भी है। इसका उपयोग कपड़े धोने के साबुन और स्नेहक के निर्माण में किया जाता है। इसमें कीटनाशक और कीटनाशक गुण भी होते हैं। पौधे के विभिन्न भागों में विरोधी भड़काऊ, यकृत-सुरक्षात्मक, रोगाणुरोधी, एंटी-ऑक्सीडेंट और ज्वरनाशक गुण होते हैं।

निष्कर्ष

प्रत्येक मनुष्य की काया उनके ज्योतिषीय कारकों के आधार पर भिन्न होगी जो पेड़ों से निकटता से संबंधित हैं। यदि वह अपने जन्म नक्षत्र के आधार पर पेड़ के पास रहता है तो तीन नाड़ियाँ (कपम, वाथम, पीथम) बराबर हो जाएँगी जो प्रतिरोध का प्रमुख कारक है और शरीर की स्थिति को तय करती है। पेड़-पौधों द्वारा छनी हुई हवा में सांस लेने से उनके शरीर में प्रतिरोधक क्षमता का विकास इस तरह से होता है। नवग्रह/राशि/नक्षत्र वाटिका, ज्योतिषीय रूप से संरचना किए गए उद्यान पहले पूजा स्थलों के पास और अच्छे स्वास्थ्य के लिए देवता को प्रसन्न करने के लिए स्थापित किए गए थे। ऐसे नक्षत्र/राशि/ग्रह से जुड़े पौधों के औषधीय सहित अनेक उपयोग हैं। अब इस तरह के ग्रेडों को सार्वजनिक स्थानों पर स्थापित किया जाना चाहिए ताकि हमारे पारंपरिक ज्ञान को मजबूत किया जा सके और जैव विविधता का संरक्षण किया जा सके।

१३. प्राकृतिक खेती का प्रमाणन, विपणन एवं संवर्धन

राकेश शर्मा, पवन कुमार शर्मा और सुमति शर्मा

भारत में कृषि कोई व्यवसाय नहीं बल्कि यह जीवन का एक तरीका है। परंपरागत रूप से भारतीय कृषि प्राकृतिक प्रथाओं पर आधारित रही है। जलवायु परिवर्तन कृषि के लिए खतरा पैदा कर रहा है और प्राकृतिक खेती को अपनाना इससे बचने का एक प्रभावी तरीका है। पारंपरिक कृषि प्रथाएं पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ-साथ मिट्टी के स्वास्थ्य तथा पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने में भी मदद करती हैं। इसलिए टिकाऊ खेती के संदर्भ में प्राकृतिक प्रथाओं को वर्तमान पीढ़ी तक पहुंचाना आज अनिवार्य हो गया है। ख़ासकर छोटे किसानों के लिए टिकाऊ तरीके से उत्पादकता बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। जैविक तथा प्राकृतिक खेती के अत्यधिक मूल्यवान गुणों एवं व्यापक अनुप्रयोगों को बढ़ावा देने के लिए एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

भारत में महत्वपूर्ण पारंपरिक कृषि प्रौद्योगिकियों के कई उदाहरण हैं लेकिन दुर्भाग्यवश ये छोटी स्थानीय प्रणालियों तक ही सीमित रहे। इसलिए यह जरूरी है कि ऐसी प्रौद्योगिकियों को एकत्र, प्रलेखित और विश्लेषण किया जाए ताकि वैज्ञानिक सिद्धांतों, आधारों तथा तथ्यों से इन्हें उचित रूप से समझा जा सके। ऐसा करने से इन प्रौद्योगिकियों को लोकप्रिय बनाना तथा बढ़ावा देना आसान हो जाएगा।

वैदिक कृषि, होमोथेरेपी, जैव गतिशील अभ्यास, ऋषि कृषि, ब्रह्मांडीय ऊर्जा, काउडंग और मूत्र, जैव उर्वरक, वर्मिन-कंपोस्ट, मिट्टी की उर्वरता सुनिश्चित करने के लिए कीड़े-धोने और कीटों के नियंत्रण के लिए जैव एजेंटों और जैव कीटनाशकों के उपयोग के सिद्धांतों को शामिल करते हुए जैविक खेती की स्वदेशी अवधारणा को अपनाया जा सकता है। लेकिन इन प्रौद्योगिकियों के विस्तार के लिए निम्नलिखत बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक हैः

फसलों का चयनः

शुरुआत में केवल उन फसलों का चयन किया जाना चाहिए जो कम उर्वरक गहन करने वाली तथा निर्यातयोग्य हों, जैसे कि बासमती चावल, फल और सब्जियां, और औषधीय जड़ी बूटी। उपभोक्ताओं के बीच बढ़ती जागरूकता के परिणामस्वरूप गुणवत्ता वाले भोजन की मांग में वृद्धि हो रही है। इस तरह प्राकृतिक खेती अंतरराष्ट्रीय बाजारों में कृषि उत्पादों के लिए अधिक दाम प्राप्त करने में मदद कर सकती है।

प्राकृतिक क्षेत्रों का चयन

पारंपरिक क्षेत्र को एक बार में जैविक या प्राकृतिक खेती में बदलना मुश्किल है। इसके लिए जैविक कृषि क्षेत्रों की पहचान की जानी चाहिए, जैसे कुछ पहाड़ी क्षेत्र जहां वर्तमान में रासायनिक उर्वरक का उपयोग बहुत कम है यां जो प्राकृतिक रूप से ही जैविक हैं। इस तरह हम कृषि में बेहतर उत्पादन तथा आर्थिक लाभ को सुनिश्चित कर सकते हैं।

सरकारी नीति का निर्माणः

प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए एक सक्षम संस्थागत तंत्र स्थापित किया जा सकता है । जैविक खेती के तहत अधिसूचित चयनित समूहों/क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की खरीद को गैरकानूनी बनाने के लिए एक सरकारी नीति बनाई जानी चाहिए ।

जैविक वस्तु बोर्ड की स्थापनाः

जैविक तथा प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए जैविक वस्तु बोर्ड की स्थापना एक प्रमुख कदम हो सकता है। इसके अतिरिक्त वस्तु विशिष्ट समूहों की स्थापना कर उन्हें जैविक कृषि पर तकनीकी जानकारी प्रदान कर सशक्त किया जाना चाहिए।

सुनिश्चित और लाभकारी विपणन के अवसर विकसित करनाः

निजी संस्थाओं और व्यापारियों को बढ़ावा देना जो जैविक उत्पादों के प्रसंस्करण और विपणन में खर्च कर सकते हैं उन्हें प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिए। जैविक उत्पादों की सीधी बिक्री के लिए खरीदार विक्रेता बैठकों का आयोजन भी किया जाना चाहिए। इसके अलावा जैविक हाटों, प्रदर्शनियों और आउटलेटों की उपलब्धता भी सुनिश्चित करवानी चाहिए ताकि किसान अपने जैविक उत्पाद सीधे उपभोक्ताओं को बेच सकें।

इसके अतिरिक्त सरकार प्राकृतिक तरीके से उगाए हुए उत्पादों को खरीद कर कल्याणकारी योजनाओं जैसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.), एकीकृत बाल विकास सेवाएं (आई.सी.डी.एस.), मध्याह्न भोजन आदि से जोड़ कर प्रारंभिक बाजार सुनिश्चित करवा सकती है। जैविक तथा प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रावधान अन्य से २० से २५ प्रतिशत तक किया जा सकता है।

प्रमाणन प्रक्रियाओं को बढ़ावा देनाः

जैविक प्रमाणन प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए। प्रमाणन प्रक्रियाओं को किसान हितैषी और किफायती बनाया जाना चाहिए। बेरोजगार ग्रामीण युवाओं को जैविक खाद उत्पादन इकाइयां, जैव उर्वरक और जैव कीटनाशक इकाइयां स्थापित करने, पशु मूत्र और गोबर का संग्रह, जैविक उत्पादों का प्रसंस्करण और मूल्य वर्धन करने के लिए सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

सत्यापन के लिए बहु-स्थान परीक्षणः

महडलों के दीर्घकालिक प्रभाव और व्यवहार्यता को मान्य बनाने के लिए बहु-स्थान अध्ययन की आवश्यकता होती है। प्रौद्योगिकी के विस्तार से पहले, विभिन्न कृषि-पारिस्थितिक स्थितियों में इष्टतम संयोजन खोजने के लिए स्थान विशिष्ट अनुसंधान सुनिश्चित किए जाने चाहिए।

अनुसंधान, विस्तार और विपणन के क्षेत्रों में संस्थागत सहायताः

जैविक तथा प्राकृतिक खेती के बारे में किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए क्षेत्र प्रयोगों के आधार पर अनुसंधान कार्य को बढ़ावा देना चाहिए। इसके लिए संस्थागत सहायता तथा पर्याप्त धन कृषि अनुसंधान, विस्तार एवं विपणन के लिए प्रदान किया जाना चाहिए जो वर्तमान में अपर्याप्त है।

जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजनः

पर्यावरण और स्वास्थ्य लाभों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए किसानों को जैविक तथा प्राकृतिक खेती के बारे में शिक्षित करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए। महंगे और हानिकारक रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के विकल्प के तौर पर जैविक उर्वरकों के इस्तेमाल को बढ़ावा देना चाहिए। जैविक उर्वरकों को खेत में पैदा करने से जुड़े तरीकों की जानकारी भी किसानों को दी जानी चाहिए जिससे कृषि से जुडी कीमतों को कम किया जा सके। जैविक कृषि का प्रशिक्षण देने के लिए कृषि विज्ञान केंद्रों को सुसज्जित किया जाना चाहिए। किसान-से-किसान शिक्षा को कृषि स्कूलों के माध्यम से सुविधाजनक बनाने का प्रबंध भी किया जाना चाहिए। किसानों को सब्सिडी एवं ऋण आधारित वित्तीय सहायता भी दी जानी चाहिए जिससे वह जैविक उर्वरकों तथा जैव कीटनाशकों की उपलब्ध्ता को सुनिश्चित कराने में सक्षम हों।

प्राकृतिक तथा जैविक उत्पादों का प्रमाणन एवं विपणन

प्राकृतिक तथा जैविक उत्पादों का प्रमाणन बाजार में कार्बनिक खाद्य की पहचान में मदद करता है। जबकि प्रमाणन किसानों को खरीदारों को खोजने में मदद करता है, यह उपभोक्ताओं को मूल और गुणवत्ता वाले कार्बनिक उत्पादों की बिक्री भी सुनिश्चित करता है। चूंकि देश में जैविक फसलों और खाद्य उत्पादों का बाजार बढ़ रहा है, इसलिए भारत सरकार ने किसानों को प्रमाणन प्राप्त करने में मदद करने के लिए कदम उठाए हैं, जिससे यह सत्यापित हो सके कि किसान का उत्पाद जैविक उत्पादन के राष्ट्रीय मानकों (एन.एस.ओ.पी.) के अनुरूप है। भारत में निर्यात तथा घरेलू बाजार के लिए दो अलग-अलग जैविक प्रमाणन प्रणालियां हैं। दोनों प्रणालियां सामान्य राष्ट्रीय मानकों पर आधारित हैं लेकिन सत्यापन और प्रलेखन के लिए विभिन्न दृष्टिकोण अपनाती हैं।

१. निर्यात के लिए राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (एन.पी.ओ.पी.)

२. घरेलू और स्थानीय बाजारों के लिए भारत के लिए भागीदारी गारंटी प्रणाली (पी.जी.एस.-इंडिया)

एन.पी.ओ.पी. प्रमाणीकरण

एन.पी.ओ.पी. प्रमाणन एक तृतीय-पक्ष प्रमाणन है, जिसमें कृषि उपज का खेत या प्रसंस्करण एक मान्यता प्राप्त कार्बनिक प्रमाणन एजेंसी द्वारा राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय कार्बनिक मानकों के अनुसार प्रमाणित होता है। एन.पी.ओ.पी. प्रमाणन की सुविधा कृषि प्रसंस्कृत खाद्य एवं निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) द्वारा दी जाती है, जो भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के तहत कार्य करता है।

भागीदारी गारंटी प्रमाणीकरण

भागीदारी गारंटी स्थानीय रूप से केंद्रित गुणवत्ता आश्वासन प्रणाली हैं, जो विश्वास, सामाजिक नेटवर्क और ज्ञान विनिमय की नींव पर बने हैं। जैविक कृषि के मामले में, पी.जी.एस. एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समान स्थितियों में लोग (इस मामले में उत्पादक) एक दूसरे के उत्पादन प्रथाओं का आकलन, निरीक्षण और सत्यापन करते हैं और सामूहिक रूप से समूह की पूरी होल्डिंग को जैविक घोषित करते हैं। पी.जी.एस. -इंडिया को भारत सरकार के कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा अपने राष्ट्रीय जैविक खेती केंद्र (एनसीओएफ), गाजियाबाद के माध्यम से सुविधा प्रदान की जाती है।

PGS-INDIA GREEN PGS-INDIA ORGANIC

बाजार में जैविक खाद्य की पहचान करने का एकमात्र तरीका इसके प्रमाणीकरण और गुणवत्ता चिह्न (LOGO) को सत्यापित करना है, खाद्य सुरक्षा और मानक (जैविक खाद्य पदार्थ) विनियमों की आवश्यकता के अनुसार, सभी जैविक खाद्य पदार्थों को अपने प्रमाणन चिह्न के साथ एक 'जयविक भारत' का चिह्न होना भी अनिवार्य है।

जैविक खेती प्रमाणन प्राप्त करने के लिए प्रक्रिया

कृषि उपज के लिए जैविक खेती प्रमाणन प्राप्त करने के लिए देख रहे किसी भी व्यक्ति को शुल्क और पूर्ण क्षेत्र सत्यापन के साथ अपेक्षित प्रारूप में एक आवेदन प्रस्तुत करना होगा। आवेदन जमा करने से पहले आवेदक या किसान के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि उसका खेत जैविक फसल उत्पादन के लिए राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (एनपीओपी) द्वारा निर्धारित मानक के अनुरूप हो ।

जैविक खेती की आवश्यकताएं

कोई भी खेत जो जैविक कृषि प्रमाणन प्राप्त करने का प्रस्ताव करता है, उसे राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (एनपीओपी) द्वारा निर्धारित निम्नलिखित मानकों के अनुरूप होना चाहिए। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना भी ज़रूरी है:

- हर साल एक कार्बनिक उत्पादन योजना तैयार करें, लागू करें और अपडेट करें।
- कम से कम ५ साल तक लागू की हुई जैविक पद्धतियों का संदर्भ संरक्षित रखें।
- जब भी आवश्यक हो जैविक प्रमाणन निरीक्षकों और अन्य उच्च अधिकारियों को क्षेत्र, संरचनाओं तथा उत्पादन के निरीक्षण की अनुमति प्रदान करें।
- जैविक खेती मान्यता के लिए ली जाने वाली निर्धारित फीस का भुगतान निर्धारित समय में करें।

प्रभावी विपणन रणनीति ही प्राकृतिक उत्पादों की मांग पैदा करने में सहायक सिद्ध हो सकती है जिससे किसानों की आमदनी बढ़ाने तथा वातावरण को साफ़ रखने में मदद मिल सकेगी। सामाजिक मान्यता और बेहतर फायदा ही किसानों को प्राकृतिक खेती अपनाने के लिए प्रेरित कर सकता है।

१४. वर्मी कम्पोस्ट- काला सोना

बलबीर धोत्रा और विकास शर्मा

वर्मी कम्पोस्ट क्या है ?

वर्मी कम्पोस्ट एक तरह का ''जैविक खाद'' है इसे केचुँआ खाद भी कहा जाता है। इस खाद को किसान अपने घर पर आसानी से तैयार कर सकता है बगैर किसी लागत के। वर्मी कम्पोस्ट केंचुँए आदि कीड़े को विघटित करके एवं वन्य पदार्थों और भोजन पदार्थों को विघटित करके बनाया जाता है।सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि यह वातावरण के अनुकूल होता है एवं इससे किसी भी तरह का प्रदूषण नहीं फैलता है। जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है एवं बंजर से बंजर जमीन भी वर्मी कंम्पोस्ट के उपयोग से ऊपजाउ बन जाती है। केंचुओं द्वारा कचरा खाकर जो कास्ट निकलती है उसे एकत्रित रूप से वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं।

केंचुओं का महत्त्व

केंचुआ मिट्टी में पाये जाने वाले जीवों में सबसे प्रमुख है। ये अपने आहार के रूप में मिट्टी तथा कच्चे जीवांश को निगलकर अपनी पाचन नलिका से गुजारते हैं जिससे वह महीन कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने शरीर से बाहर छोटी-छोटी कॉस्टिंग्स के रूप में निकालते हैं। इसी कम्पोस्ट को वर्मी कम्पोस्ट कहा जाता है। केंचुओं का प्रयोग कर व्यापारिक स्तर पर खेत पर ही कम्पोस्ट बनाया जाना सम्भव है। इस विधि द्वारा कम्पोस्ट मात्र ४५ दिन में तैयार हो जाता है। केंचुओं का पालन 'कृमि संवर्धन' या 'वर्मी कल्चर' कहलाता है। अब तक केंचुओं की ४५०० प्रजातियों विश्व के विभिन्न भागों में बताई जा चुकी हैं। केंचुए दो प्रकार के हैं- जलीय व स्थलीय। आज केंचुओं की कुछ ऐसी प्रजातियाँ विकसित कर ली गई हैं जिनको पालकर आप प्रतिदिन के कूड़ा-करवट को अच्छी खाद 'वर्मी कम्पोस्ट' में बदल सकते हैं। यह खाद इतनी शक्तिशाली होती है कि इसमें पौधों द्वारा चाहे गए कभी पोषक तत्व भरपूर मात्रा में मौजूद होते हैं तथा पौधे इनको तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट कितने दिन में तैयार होता है ?

वर्मी कम्पोस्ट दो महीने के अंदर तैयार हो जाता है। इसमें पोषक तत्व के साथ-साथ, ३ प्रतिशत नाइट्रोजन, २ प्रतिशत फास्फोरस और २ प्रतिशत तक पोटाश पाया जाता है।प्रत्येक महीने यदि आप एक टन खाद प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको १०० वर्गफुट आकार के नर्सरी बेड की आवश्यकता होगी।वर्मी कम्पोस्ट खाद २ टन मात्रा प्रति हेक्टेयर आवश्यक होती है।

वर्मीकम्पोस्ट में विभिन्न तत्वों की मात्रा

वर्मीकम्पोस्ट में साधारण मृदा की तुलना में ५ गुना अधिक नाइट्रोजन, ७ गुना अधिक फॉस्फेट, ७ गुना अधिक पोटाश, २ गुना अधिक मैग्नीशियम व कैल्शियम होते हैं। प्रयोगशाला जाँच करने पर विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा इस प्रकार पाई जाती है!

वर्मीबैड बनाना

इस पर सब प्रकार के मिश्रित कचरे, जिसमें सूखा कचरा, हरा कचरा, किचन वेस्ट, घास, राख इत्यादि मिश्रित हो, उसकी करीब ४ इंच मोटी परत बिछा दें। इस पर अच्छी तरह पानी देकर उसे गीला कर दें। इसके ऊपर सड़ा हुआ अथवा सूखे गोबर के खाद की ३-४ इंच मोटी परत बिछा दें। इसे भी पानी से गीला कर दें। पानी का हल्का-हल्का छिड़काव करना है बहुत अधिक पानी डालना आवश्यक नहीं। इस पर १ वर्गमीटर में १०० के हिसाब से स्थानीय अथवा एक्सोटिक प्रजाति के जो भी केंचुए उपलब्ध हो वे छोड़े जा सकते हैं। इसके ऊपर पुनः हरी पत्तियों का २-३ इंच पतला परत देकर पूरे वर्मीबैड को सूखी घास अथवा टाट की बोरी से ढँक दिया जाता है। मेंढक, मुर्गियों अथवा अन्य पक्षियों एवं लाल चीटिंयों से वर्मीबैड को बचाना आवश्यक है। करीब ४०-६० दिन बाद जब पहले वर्मीबैड खाद तैयार हो जाता

है, तब उसमें पानी देना बन्द कर देते हैं व कल्चर बहक्स की तरह ही इसमें से धीरे-धीरे ऊपर का खाद निकाल लिया जाता है। नीचे की तह खाद जिसमें सारे केंचुए होते हैं उसे दूसरे वर्मीबैड पर डाल दिया जाता है ताकि उसमें वर्मीकम्पोस्ट की क्रिया आरम्भ हो जाये। ताजे निकाले गए वर्मीकम्पोस्ट के ढेर को भी वर्मीबैड के नजदीक ही रखा जाता है व उसमें पानी देना बन्द कर देते हैं। नमी की कमी की वजह से उसमें से केंचुए धीरे-धीरे नजदीक के वर्मीबैड में चले जाते हैं वर्मीकम्पोस्ट खेत में डालने के लिये तैयार हो जाता है। इस खाद में जो केंचुए के छोटे-छोटे अंडे व बच्चे होते हैं उनसे जमीन में प्राकृतिक रूप से केंचुओं की संख्या बढ़ती है।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

वर्मी कम्पोस्ट एक अच्छी किस्म की खाद है तथा साधारण कम्पोस्ट या गोबर की खाद से ज्यादा लाभदायक साबित हुई है। इसके प्रयोग करने में निम्नलिखित लाभ हैं-

१. वर्मी कम्पोस्ट को भूमि में बिखेरने से भूमि भुरभुरी एवं उपजाऊ बनती है। इससे पौधों की जड़ों के लिये उचित वातावरण बनता है। जिससे उनका अच्छा विकास होता है।

२. भूमि एक जैविक माध्यम है तथा इसमें अनेक जीवाणु होते हैं जो इसको जीवन्त बनाए रखते हैं इन जीवाणुओं को भोजन के रूप में कार्बन की आवश्यकता होती है। वर्मी कम्पोस्ट मृदा से कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि करता है तथा भूमि में जैविक क्रियाओं को निरन्तरता प्रदान करता है।

३. वर्मी कम्पोस्ट में आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर व सन्तुलित मात्रा में होते हैं। जिससे पौधे सन्तुलित मात्रा में विभिन्न आवश्यक तत्व प्राप्त कर सकते हैं।

४. वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है जिससे उसमें पोषक तत्व व जल संरक्षण की क्षमता बढ़ जाती है व हवा का आवागमन भी मिट्टी में ठीक रहता है।

५. वर्मी कम्पोस्ट क्योंकि कूड़ा-करकट, गोबर व फसल अवशेषों से तैयार किया जाता है अतः गन्दगी में कमी करता है तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखता है।

६. वर्मी कम्पोस्ट टिकाऊ खेती के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है।

७. रासायनिक खाद का उपयोग ना होने से खेती में लगने वाले बड़े रकम जो खाद पर खर्च हो जाती है उसकी बचत होगी एवं जमीन बंजर होने से बच जाएगी। आपको पता होगा, सरकार ने खेत में यूरिया की मात्रा कम डालने का निर्देश दिया था यूरिया ज्यादा मात्रा में प्रयोग करने पर जमीन बंजर हो जाती है।

८. सरकार भी जैविक खाद तैयार करने और उसको प्रयोग करने पर जोर दे रही है। आप इसे तैयार करने के लिए वर्मी कम्पोस्ट में दिए जाने वाले सरकारी लाभ भी ले सकते हैं

९. यदि वर्मी कम्पोस्ट आप अपने खेतों में होनेवाले उपयोग से ज्यादा मात्रा में तैयार करते हैं तो आप इसे बेचकर भी अच्छा-खासा पैसा कमा सकते हैं।

उपयोग विधि

वर्मी कम्पोस्ट जैविक खाद का उपयोग विभिन्न फसलों में अलग-अलग मात्रा में किया जाता है। खेती की तैयारी के समय २.५ से ३.० टन प्रति हेक्टेयर उपयोग करना चाहिए। खाद्यान्न फसलों में ५.० से ६.० टन प्रति हेक्टेयर मात्रा का उपयोग करें। फल वृक्षों में आवश्यकतानुसार १.० से १० किग्रा./पौधा वर्मी कम्पोस्ट उपयोग करें तथा किचन, गार्डन और गमलों में १०० ग्राम प्रति गमला खाद का उपयोग करें तथा सब्जियों में १०-१२ टन/हेक्टेयर वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग करें।

१५. वैदिक खेती में कृषि तकनीक, उपकरण और सिंचाई की पद्धति का उपयोग

सुष्मिता एम. दाधीच, जे. पी. शर्मा और आर. के. श्रीवास्तव

परिचय

वर्तमान युग विज्ञान तकनीक का युग है। प्राचीन भारत में भी विज्ञान के विविध क्षेत्रों का विकास देखा गया है। मानव की तकनीकी प्रगति में विभिन्न चरणों में धातु के चलन को एक महत्वपूर्ण घटना माना है। भारत में १२०० से १००० ईसा पूर्व का काल जिसमें सीमित मात्रा में लोह औजार का उपयोग रहा है (जैसे भाला, बान, कील आदि)। सिंधु घाटी की सभ्यता के बाद भारत में लौह युग का प्रारंभ होता है। कृषि कार्य में लोहे के उपयोग के फल स्वरूप भारत में सफलता पूर्वक खेती करना संभव हो सका था। गंगा क्षेत्र के किनारे वनों को साफ करके धान, गन्ना, कपास, गेहू तथा जौ आदि की खेती पैमाने पर होने लगी। बुद्ध काल के आते-आते भारत में लोह का प्रयोग किया जाने लगा । पहले-पहले युद्ध सम्बंधित अस्त्र शस्त्र बनाये गए किंतु बाद में कृषि सम्बन्धी उपकरण जैसे हसिया, खुर्पी आदि का निर्माण किया जाने लगा । लोग राजस्व अनाज के रूप में चुकाते थे, ऐसा अनुमान पुरातत्वविद् मोहन जोदड़ो की खुदाई में मिले बडे बडे कोठरों के आधार पर करते हैं। वहाँ से उत्खनन में मिले गेहूँ और जौ के नमूनों से यह प्रमाण मिलता है उस समय में उन दिनों इनकोबोया जाता था। वहाँ से मिले गेहुँ के दाने ट्रिटिकम कंपैक्टम (*Triticum compactum*) अथवा ट्रिटिकम स्फेयरोकम (*Triticum sphaerococcum*) जाति के हैं। इन दोनो ही जाति के गेहूँ की खेती आज भी पंजाब में होती है। यहाँ से मिला जौ हाडियम बलगेयर (*Hordeum vulgare*) जाति का है। कपास जिसके लिए सिंध की आज भी ख्याति है उन दिनों भी प्रचुर मात्रा में पैदा होता था।

आर्य (भारत के निवासी) कृषिकार्य से पूर्णतया परिचित थे, यह वैदिक साहित्य से स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऋगवेद और अर्थर्ववेद में कृषि संबंधी अनेक ऋचाएँ है जिनमे कृषि संबंधी उपकरणों का उल्लेख तथा कृषि विधा का परिचय है। अथर्वेद में श्याम अशय का अर्थ लौह धातु से है। वाजसनिय संहिता में लौह एवं श्याम का अर्थ तांबे एवं लोहे से लिया गया है। साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर ये निष्कर्ष निकाला जाता है कि उत्तर वैंदिक काल के ईसा पूर्व आठवी शताब्दी में भारतीयों को लोहे का ज्ञान प्राप्त हो गया था। भारत के कई स्थानों में जैसे की मथुरा, रोपड़, श्रावस्ती इत्यादि स्थानों की खुदाई से लौह युगीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए है। इन स्थानों से लोहे के औजार तथा उपकरण जैसे भाला, तीर, खुरपी, चाकू, कटार इत्यादि मिले है। इसलिए इस लेख में प्राचीन से वर्तमान तक विभिन्न प्रकार के कृषि तकनीक, उपकरण एवं सिचाई पद्धति को बताने की कोशिश की गई है।

प्राचीन काल में कृषि तकनीक, उपकरण और सिंचाई की पद्धति

भारत में कृषि की उत्पत्ति के कई तथ्य है। संभवतया भारत में कृषि का इतिहास नौ हजार साल पुराना है। कच्छ के कई क्षेत्र में ७००० हजार साल पूर्व गेहूं और जौ की खेती होती थी। बुवाई से पहले कुदाल और फावड़े से जमीन की गुड़ाई की जाती थी (चित्र संख्या ०१)। संभवतया रबी एवं खरीफ दोनो फसल ली जाती थी । सिंधु घाटी सभ्यता में खेत को जोतने के लिए बैल का प्रयोग किया जाता था। कई प्रकार के उपकरण जैसे की खेत जोतने के लिए हल एवं पत्थर के फलक तथा अलकतरा की मूठवाले हसिया का उपयोग ५००० हजार साल पहले से फसल काटने में किया जाता था (चित्र संख्या ०२)।

चित्र संख्या १: फावड़ा एवम कुदाल

सिंचाई के लिए नहर का प्रयोग किया जाता था। खेत को हल से जोत कर बीज बोए जाते थे, फसल को सिंचाई और पकने के बाद दरांती से काट कर खलिहान में लाया जाता था उसके पश्चात मँढ़ाई कर भूसा और अनाज को अलग अलग किया जाता था। यजुर्वेद में भी कृषि की सभी मुख्य क्रियाओं जैसे जुताई, बुवाई, फसल कटाई एवं मँढ़ाई वर्णन है।

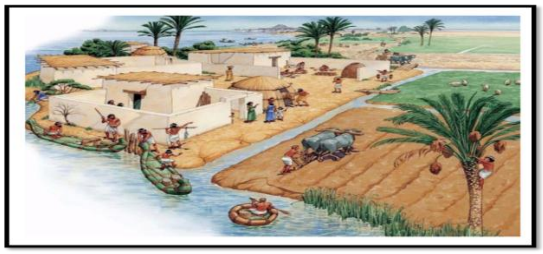

चित्र संख्या २,३ : सिंधु सभ्यता दौरान उपयोग में आने वाले कृषि उपकरण और सिंचाई के लिए नहर का प्रयोग

मौर्य युग में भूमि के उर्वरता के अनुसार कृषि का वर्गीकरण किया गया था। बड़े हल को हली या जित्था कहते थे। कृषकों ने नदी एवं तालाब से नहर निकाल कर भूमि को उपजाऊ बना दिया था। किसान वर्षा पर निर्भर थे लेकिन नहर और कुआँ के उपयोग से एवं नवीन उपकरण की सहायता से कृषि का विकास हो रहा था। हल से खेत के अतरिक्त कोनों को जोतने के लिए कुदाल और फावड़े का उपयोग किया जाता था। सिंचाई के लिए रहट, चक्र इत्यादि का उपयोग किया जाता था।

जैन ग्रंथ एवं बौद्ध धर्म में भी कृषि कार्यों का वर्णन है जैसे की भूमि जोतना, बीज बोना, सिंचाई, पाक जाने पर फसल को काट कर गट्ठर बांध कर बैलगाड़ी से खलिहान तक लेकर जाता था। जहां पर भूसा एवं अन्न अलग किया जाता था।बौद्ध ग्रंथ में सिंचाई के तीन साधन माने है वो है ढेकुला, रहट या चक्र तथा चरसा।मौर्य काल में बावड़ी, जलाशय, कुआं इत्यादि कृत्रिम जल श्रोतो का वर्णन है।इस काल में कोल्हू यंत्र शाला की भी चर्चा है । मनुस्मृति में तालाब , पोखर एवं नहरों का उल्लेख है जिसे सिंचाई में उपयोग लिया जाता था। महाभारत में भी वर्षा के जल को सुरक्षित रखने और उसे धान की खेती तक पहुंचाने के लिए नहरों का वर्णन है। बाण भट्ट महाकवि ने भी झूम खेती एवम कुदाल से खेती का वर्णन किया है। मध्यकालीन भारत में दो प्रकार से सिंचाई का वर्णन है: प्रथम बांध बनाकर तालाबों के पानी को रोका जाता था और फिर छोटी छोटी नहरों से पानी खेत तक पहुंचाया जाता था। दूसरा लंबी नहरों का निर्माण किया । शाहजहाँ ने २४० कि मी लम्बी नहर बनाई थी। इन तथ्यों के आधार पर प्राचीन भारत ने वेदिक खेती के प्रक्रिया की स्पष्ट समझ थी। कृषि के विकास के लिए नई नई फसल की प्रजाति ,सिंचाई के नए तरीकों एवं कृषि यंत्रों को अपनाया था।

वैदिक एवं आधुनिक कृषि उपकरण

१.भूमि की तैयारी के उपकरण (जुताई के उपकरण)

देसी हल : दो बेल या ४ बेल या भैंसे या ऊंट से चलने वाला लकड़ी का बना उपकरण जिससे भूमि की जुताई करते थे। अभी यह कार्य ट्रैक्टर से चलने वाले अलग अलग प्रकार के हल से करते है जिसमें की डीजल की खपत होती है।

चित्र संख्या ४ : देसी हल

चित्र संख्या ५ : ट्रैक्टर एवम जुताई के कृषि उपकरण

पाटा/पटेला : लकड़ी से बना मोटा आयताकार लट्ठा जिसको पशुओं की सहायता से खींचकर ढेलो को तोड़ने और मिट्टी को समतल बनाने में किया जाता था। आजकल ट्रेक्टर के साथ मिट्टी समतल करने का उपकरण लगा दिया जाता है।

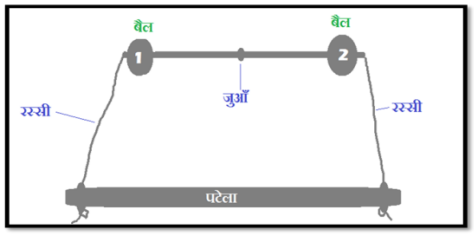

चित्र संख्या ६ : प्राचीन एवं वर्तमान में भूमि को समतल करने में प्रयोग में आने वाले यंत्र

बुवाई के उपकरण :

एक नाली वाली नई : ये एक खोखले बांस से बनी सरंचना होती है जिसके ऊपर बांस से बना एक कीप लगा होता है। इसे देसी हल के पीछे बांध कर चलाने वाला व्यक्ति एक हाथ से बीज डालता था। आजकल ये काम ट्रैक्टर से चलने वाले या मशीन से चलने वाले उपकरण से किया जाता है।

दो या अधिक नाली वाली नई : ये एक खोखले बांस से बनी सरंचना होती है जो नीचे से अलग होती है और एक जंकशन से जुड़ी होती है । जिसके ऊपर बांस से बना एक कीप लगा होता है। इसे देसी हल के पीछे बांध कर चलाने वाला व्यक्ति एक हाथ से बीज डालता था और दो या अधिक नालियों में एक साथ बुवाई होती थी नाली बनाने वाला भाग भी उसी अनुपात में होता था। आजकल ये काम ट्रैक्टर से चलने वाले या मशीन से चलने वाले उपकरण से किया जाता है।

चित्र संख्या ७ : प्राचीन एवं वर्तमान में बीज रोपण प्रयोग में आने वाले यंत्र

निराई गुड़ाई के उपकरण :

खुरपी : लोहे से बना लकड़ी के हत्थे वाला छोटा उपकरण जिससे खरपतवार निकालते है। आज भी इसका उपयोग किया जाता है।

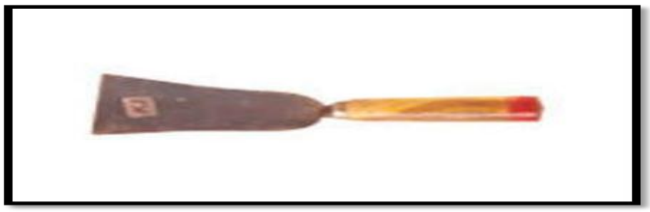

चित्र संख्या ८ : प्राचीन एवं वर्तमान में निराई गुड़ाई के उपकरण (खुरपी)

कुदाली : लोहे से बना लकड़ी के लंबे हत्थे वाला उपकरण जिससे गुड़ाई की जाती थी आज भी इसका प्रयोग किया जाता है।

चित्र संख्या ९ : प्राचीन एवं वर्तमान में निराई गुड़ाई के उपकरण (कुदाली)

कुल्पा या डोरा : बेल से चलने वाला उपकरण जो खरपतवार को हटाता था और मिट्टी चढ़ाने के काम आता था। कहीं कहीं इसे बख्खर भी कहते है। एक बार डोरा कुल्पा निकल गया तो खेत से खरपतवार साफ । इस प्रकार के खेतों में खरपतवार नाशक दवाई डालने की कहां जरूरत होती है? आज भी उपयोग किया जाता है । आजकल बेल की जगह मोटरसाइकिल या ट्रैक्टर का इस्तेमाल बेलों की जगह किया जाता है।

चित्र संख्या १० : प्राचीन एवं वर्तमान में निराई गुड़ाई के उपकरण (कुल्पा या डोरा)

सिंचाई के उपकरण :

चरस : चमड़े या लोहे से बनी होती थी इसे बड़ी बाल्टी की तरह समझ सकते हैं ।बेलों से चलती थी और किसान दिन भर कुएं से पानी खींच खींच कर सिंचाई करते थे।आपसी भाईचारे को बढ़ाने में चड़स से पानी निकालने की प्रक्रिया ने ग्रामीणों को एक- दूसरे से जोडने़ का जो काम किया है वह पूरे समाज की सांस्कृतिक विरासत का खजाना था क्योंकि इसके माध्यम से मल्हार गीत गाये जाते थे, उनके माध्यम से हमारी संस्कृति का जो संरक्षण हुआ है वह अपने आप में किसी विरासत से कम नहीं है।

चित्र संख्या १० : प्राचीन समय में सिंचाई के उपकरण (चरस)

रहट : सामान्य रहट की तरह एक बड़े लकड़ी के पहिए पर मटके या डिब्बे की माला लगी होती थी ।बेलों से पहिया घुमाने पर माला के मटके कुएं से भरकर बाहर आते और खाली हो जाते थे और इस पानी से दूसरा आदमी सिंचाई करता था।आज कृषि में सिंचाई के कामों के लिए आधुनिकता का बोल-बाला है, डीजल इंजन से लेकल सोलर पंप तक तमाम आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल हो रहा है।रहट सिंचाई एक ऐसा सिंचाई पद्धति थी जिसमें न ही ईंधन और न ही बिजली का प्रयोग होता था। इस तकनीक को दो बैलों की मदद से चलाया जाता था।

चित्र संख्या ११ : प्राचीन समय में सिंचाई के उपकरण (रहट)

ढेंकली : कम गहरे कुएं में प्रयुक्त होती है लकड़ी की एक बड़ी बल्ली के एक सिरे पर बाल्टी और दूसरे सिरे पर भारी पत्थर लगा होता है। बाल्टी को पानी में डुबोकर छोड़ने से भरी हुई बाल्टी पत्थर के वजन से ऊपर आ जाती है । जिसे खाली कर सिंचाई की जाती है।किसानों को मानना है कि धीरे-धीरे ये तकनीक इस लिए खत्म हो गई क्योंकि रखरखाव के बढ़ते खर्च के चलते बैलों को रखना बंद होता जा रहा है साथ ही इस तकनीक से सिंचाई में समय भी बहुत लगता है। वहीं दूसरी ओर मुफ्त मिलती बिजली और पंपों पर मिलती सब्सिडी ने भी किसानों को ये अतिरिक्त मेहनत करने से विमुख कर दिया।

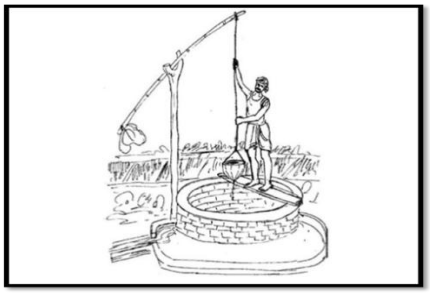

चित्र संख्या १२ : प्राचीन समय में सिंचाई के उपकरण (ढेंकली)

चित्र संख्या १२ : आधुनिक सिंचाई पद्धति (ड्रिप, स्प्रिंकलर एवं सोलर इरिगेशन पद्धति)

काटने के उपकरण :

दरांती : हंसिया के नाम से जानते है। और आज भी अधिकांश जगह इसका उपयोग किया जाता है।आधुनिक अनाज-कटाई मशीनों में भी पाया जाता है।

चित्र संख्या १३ : कल और आज कटाई के उपकरण

निष्कर्ष

सामान्यता वैदिक खेती में भी कृषि उपकरण का उपयोग होता है पर आधुनिक खेती में उपयोग होने वाले उपकरणों का एक बड़ा हिस्सा वैदिक खेती में उपयोग नहीं किया जा सकता। आधुनिक ज़माने के खेती में आने वाले उपकरण परोक्ष और अपरोक्ष तरीके से मृदा, पर्यावरण, मनुष्यों, जानवरों और पक्षियों पर हानिकारक असर डालते हैं। ट्रैक्टर के आने से खर्चा अवश्य कम हुआ है और काम भी जल्दी होता है। ट्रैक्टर के साथ थ्रेशर जो जल्दी अनाज निकाल देती है; ट्रॉली जो ज्यादा लदान जल्दी लाती है; कल्टीवेटर आदि उपकरण से खेती को आधुनिक बनाया पर पालतू जानवरों को किसान से दूर कर दिया है। आज हमारे पास समय कम है। पैसा है, तकनीक है परंतु पर्यावरण का दोहन हो रहा है। जिससे हमारे भूमि की उर्वरकता कम हो रही है। जब ये ट्रैक्टर इत्यादि न थे किसान पैदल ज्यादा चलते थे। शारीरिक रूप से स्वस्थ थे।

इसीलिए वैदिक खेती के लिए नीतियों में प्राथमिकता देकर व उसके लिए सघन कार्यक्रम चलाकर ही देश की भूमि-किसान-उपभोक्ता को स्वस्थ व आर्थिक रूप से मजबूत बनाकर स्थाई विकास व खुशहाली लाने का सपना साकार किया जा सकता है।

१६. पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली, पशुधन और किसान की आय के परिपेक्ष्य में

नृप किशोर पंकज, नीलेश शर्मा, ए. के. पाठक और पी. के. वर्मा

भारत एक अनूठा देश है और यहां अच्छी तरह से तैयार की गई चिकित्सा प्रणाली है जो सदियों से प्रचलित है। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति ने ३००० ईसा पूर्व के वैदिक ग्रंथ लिखे हैं) जिसमें औषधीय गुणों वाले पौधे शामिल हैं। भारत में आयुर्वेद) चिकित्सा की सबसे पुरानी संगठित प्रणालियों में से एक है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के तत्व दुनिया में लगभग सभी पारंपरिक और आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों की मूल में पाए जाते हैं। इसकी विशिष्ट अवधारणाएं प्राचीन भारत में २५०० और ५०० ईसा पूर्व के बीच परिपक्व हुई प्रतीत होती हैं। दवाओं और रोगों का सबसे पहला संदर्भ ऋग्वेद और अथर्ववेद में पाया जाता है) जो २००० ईसा पूर्व का है। ६५९९ सूक्तों और ७०० गद्य पंक्तियों से युक्त अथर्ववेद को आयुर्वेद का अग्रदूत माना जाता है। साक्ष्य बताते हैं कि भारत में विकसित आयुर्वेद शायद सबसे प्रारंभिक चिकित्सा प्रणाली है) और ऋग्वेद) मानव ज्ञान का सबसे पुराना दस्तावेज) ४५०० और १६०० ईसा पूर्व के बीच लिखा गया है) जिसमें मनुष्यों और जानवरों के उपचार में औषधीय पौधों के उपयोग का उल्लेख है। इसी अवधि के दौरान लिखी गई ''नकुल संहिता" शायद जड़ी-बूटियों के साथ जानवरों के इलाज पर पहला ग्रंथ था। पशुपालन से संबंधित अध्याय जैसे ''मैनेजमेंट एंड फीडिंग" प्राचीन पुस्तकों जैसे स्कंध पुराण) देवी पुराण) हरित और अन्य में दिखाई देते हैं। पालकप्या (१००० ईसा पूर्व) और शालिहोत्रा (२३५० ईसा पूर्व) प्रसिद्ध पशु चिकित्सक थे जो हाथियों और घोड़ों के इलाज में विशेषज्ञता रखते थे । राजा अशोक (२७४-२३६ ईसा पूर्व) ने बीमार और वृद्ध जानवरों के इलाज में उपयोग के लिए जड़ी-बूटियों को उगाने के लिए लोगों को लगाया था। संहिता या चिकित्सा का विश्वकोश) उत्तर वैदिक युग के दौरान लिखे गए थे) और इसमें चरक संहिता (९०० ईसा पूर्व) सुश्रुत संहिता(६०० ईसा पूर्व) और अष्टांग हृदय(१००० सी.ई) शामिल हैं। बाद में कई और ग्रंथ तैयार किए गए और औषधीय पौधों के उपयोग का वर्णन ७ वीं और १६ वीं शताब्दी के बीच निघंटू ग्रंथ में भी किया गया है।

आयुर्वेद का मूल विचार

आयुर्वेद की सबसे बुनियादी अवधारणा यह है कि सभी जीवित प्राणी तीन आवश्यक कारकों (तीन दोषों) से अपना निर्वाह प्राप्त करते हैं) अर्थात् वात, पित्त और कफ, जो एक साथ काम करते हैं। यह मान्यता है कि शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और अंतरिक्ष सहित जीवित और निर्जीव वातावरण से बना है। बीमारी विभिन्न तत्वों के बीच असंतुलन का परिणाम है और इस संतुलन को बहाल करना उपचार का लक्ष्य है। आयुर्वेदिक दवाएं उन रोगों के लिए भी अधिक ध्यान आकर्षित कर रही हैं जिनके लिए आधुनिक चिकित्सा में उपचार के लिए कोई या पर्याप्त दवाएं नहीं हैं । जैसे कि चयापचय और अपक्षयी विकार। इन रोगों में से अधिकांश में बहुक्रियात्मक कारण होते हैं और इस बात का अहसास बढ़ रहा है कि ऐसी स्थितियों में) दवाओं का एक संयोजन एक साथ कई लक्ष्यों पर काम करता है इसीलिए, एक लक्ष्य पर काम करने वाली दवाओं की तुलना में अधिक प्रभावी होने की संभावना है। आयुर्वेदिक दवाएं जो अक्सर बहु-घटक होती है, ऐसी स्थितियों के लिए एक विशेष संबंध रखती हैं। विभिन्न कारणों से, आयुर्वेद ने आधुनिक विज्ञान/वैज्ञानिक उपकरणों को शामिल नहीं किया है। बहु-घटक आयुर्वेदिक औषधियों की जैविक गतिविधि की जांच आयुर्वेद को वैज्ञानिक अनुसंधान की मुख्यधारा में लाएगी।

भारत में चिकित्सा प्रणाली के दो स्तर हैं- आयुर्वेद सिद्ध और यूनानी की शास्त्रीय प्रणालियॉ । जिनमें पाठ्य पुस्तकें हैं कॉलेजों में पढ़ाया जाता है । चिकित्सकों को डिग्री प्रदान करता है और आधिकारिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में शामिल किया जाता है। लोक चिकित्सा की दूसरी प्रणाली अनौपचारिक है और समुदायों में मौजूद है। यह पीढ़ी से पीढ़ी तक मौखिक रूप से प्रेषित होता रहा है। ये प्रणालियाँ अपने सामान्य उपयोग और आबादी के संबंधित सांस्कृतिक विश्वासों के कारण हजारों वर्षों से जीवित हैं।

पश्चिमी देशों में पशुओं की विभिन्न बीमारियों में औषधीय पौधों का उपयोग

१९८० में क्वेशुआ स्टॉकराइज़र के बीच प्रथम शोध के साथ-साथ उभरते साहित्य की समीक्षा के आधार पर दक्षिण अमेरिका में पौधों और जानवरों के बीच ऐतिहासिक संबंध एथनोवेटरिनरी को अंततः १९८६ में वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विकास के एक वैध क्षेत्र के रूप में संहिताबद्ध किया गया था। इसके तुरंत बाद एथनोवेटरिनरी और संबंधित विषयों पर एक व्याख्यात्मक ग्रंथ केवल ''ग्रे साहित्य" के रूप में उपलब्ध था। फिर भी यह उच्च मांग में था। एक प्रमुख प्रोत्साहन विश्व स्वास्थ्य संगठन की वैध मानव-जातीय चिकित्सा तकनीकों को शामिल करने की परियोजना थी और डब्ल्यूएचओ के "सभी के लिए बुनियादी स्वास्थ्य सेवा" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्थानीय चिकित्सा चिकित्सकों को वास्तविक दुनिया की रणनीतियों में शामिल करना थी । एथनोवेटरिनरी पशुधन के लिए भी ऐसा ही करना चाहता है। उदाहरण के लिए, समुदाय-आधारित पशु चिकित्सा पैराप्रोफेशनल (ILD Group,२००३) के संवर्गों के निर्माण के माध्यम से जो आदर्श रूप से पारंपरिक और

जातीय-विकल्प दोनों प्रदान करते हैं। जिसमें ऐसी स्वास्थ्य सेवाएं जानवरों और मनुष्यों दोनों को संयुक्त रूप से वितरित की जाती हैं । विशेष रूप से गरीब और / या दूरदराज के क्षेत्रों में आदर्श रूप से पारंपरिक और नृवंशविज्ञान दोनों विकल्प प्रदान करते हैं।

हर्बल दवा का उपयोग उन तरीकों से किया जाता है जो पारंपरिक औषधीय दवाओं के उपयोग के तरीकों से भिन्न होते हैं। क्योंकि जड़ी-बूटियों में पोषक तत्व होते हैं और क्योंकि फार्मास्युटिकल तत्व एक दूसरे के साथ बहुसंकेतन रूप से परस्पर क्रिया करते हैं- नैदानिक प्रभाव ड्रग थेरेपी में देखे गए लोगों की तुलना में अधिक गहराई और व्यापक हो सकते हैं। रोगी के नुस्खे औषध विज्ञान और जड़ी-बूटियों के लिए पारंपरिक संकेत दोनों पर आधारित होते हैं। कई कारणों से पशु चिकित्सक फिर से हर्बल दवा का उपयोग कर रहे हैं। अहस्ट्रिया जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड में २६७५ पशु चिकित्सकों के एक हालिया सर्वेक्षण ने सुझाव दिया कि उन देशों में लगभग तीन चौथाई पशु चिकित्सक हर्बल दवाओं का उपयोग कर रहे हैं, खासकर पुरानी बीमारियों के लिए और सहायक चिकित्सा के रूप में । अमेरिकी मूल-निवासी जो अपने पालतू जानवरों पर निर्भर थे । उन्हें अन्य जनजातियों की तुलना में पादप चिकित्सा का अधिक ज्ञान था। हर्बलिस्ट पौधों की दवाओं की वैज्ञानिक जांच की प्रतीक्षा करते हैं लेकिन स्तनधारी पौधों के बीच प्राचीन और विकसित संबंधों को स्वीकार करते हुए स्वयं पौधों से सीखते हैं।

एथनोवेटरिनरी दवा और वायरल रोगः कुक्कुट उत्पादन

''आंगन के पक्षी" अंडे और मांस के रूप में ३० प्रतिशत तक घरेलू प्रोटीन का सेवन प्रदान करते हैं। वायरस दुनिया भर में पोल्ट्री की बीमारी में सबसे बड़े पैमाने पर और व्यापक आर्थिक नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं विशेष रूप से पारिवारिक और कृषि-औद्योगिक पोल्ट्री उद्यमों में। विकासशील देशों में न्यू कैसल रोग विशेष रूप से मुक्त पक्षियों के लिए विनाशकारी है । जहां यह हर साल ७० से ८०प्रतिशत बिना टीकाकरण वाले पक्षियों को मारता है। न्यू कैसल रोग की पहली बार १९२६ में न्यूकैसल-ऑन-टाइन इंग्लैंड में और साथ ही जावा, इंडोनेशिया में पहचान की गई थी। न्यू कैसल रोग पैरामाइक्सोविरिडे परिवार के एक आर.एन.ए वायरस के कारण होता है। यह पक्षियों की कम से कम २४१ प्रजातियों को संक्रमित कर सकता है। मुर्गियां विशेष रूप से अतिसंवेदनशील होती हैं। आज, न्यू कैसल रोग का वर्णन कई पैथोटाइप के संदर्भ में किया गया है। वेलोजेनिक स्ट्रेन सबसे अधिक खतरनाक होता है और दो उपप्रकारों-विसेरोट्रोपिक और न्यूरोट्रॉफिक के रूप में होता है। पूर्व की विशेषता दस्त, चेहरे की सूजन, नाक से निर्वहन औरअक्सर अचानक मृत्यु से होती है। उत्तरार्द्ध मे श्वसन और बाद में तंत्रिका संबंधी संकेतों के रूप में प्रकट होता है। साथ ही जठरांत्र संबंधी घावों के बिना उच्च मृत्यु दर के साथ होता है। हालांकि न्यू कैसल रोग के खिलाफ एक थर्मोस्टेबल वैक्सीन मौजूद है। अफ्रीका में परिवार के मुर्गियों को शायद ही कभी पहले न्यू कैसल रोग के लिये प्रतिरक्षित किया जाता है। इसके बजाय पारिवारिक स्तर के उत्पादक अपने स्थानीय/स्वदेशी ज्ञान और संसाधनों पर निर्भर होते हैं और सामान्य तौर पर, पोल्ट्री रोगों के इलाज के लिए अफ्रीकियों की एथनोवेटरिनरी दवा प्रसिद्ध है। अफ्रीका भर में, लोग न्यू कैसल रोग को नियंत्रित करने के लिए कई वनस्पति का उपयोग करते हैं। आमतौर पर, हर्बल सामग्री को कुचल कर पक्षियों के पीने के पानी में मिलाकर दिया जाता है, जिनमे से कुछ पौधे इस प्रकार हैं

***Aloe secundiflora*(ग्वार पाठा)**

पूरे अफ्रीका में विभिन्न प्रकार के कुक्कुट रोगों के लिए एलो प्रजाति का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, जिसमें एक अन्य वायरल बीमारी फाउलपॉक्स के लिए एलो एक्सेलसा भी शामिल है। एक नियंत्रित प्रयोग में, एलो सेकुंडिफ्लोरा का एक अर्क, आंतरिक जेल से बनाया जाता है, जिसमें ऐसमैनन जैसे एंटीवायरल पॉलीसैकराइड्स और बाहरी सैप, जिसमें एन्थ्राक्विनोन ग्लाइकोसाइड होते हैं। अर्क को एक ही समय में एनडी से संक्रमित मुर्गियों के उपचार के लिए दी जाती है। संक्रमण के समय प्रशासित इस पारंपरिक दवा से पक्षियों की मृत्यु में कमी हो जाती है । चूंकि अधिकांश किसान एनडी के मौसम के बारे में जानते हैं, इसलिए रोगनिरोधी पूर्व उपचार संभव है। एलो प्रजाति (एलोनिन और एलोइन) में एंथ्राक्विनोन घटक एनडी-विरोधी वायरस गतिविधि के लिए कम से कम आंशिक रूप से जिम्मेदार हैं। वास्तव में, एनडी विषाणु एन्थ्राक्विनोन के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। इन जैव रसायनों को इन्फ्लूएंजा, स्यूडोराबीज और वैरिसेला-ज़ोस्टर वायरस, साथ ही हर्पीज सिम्प्लेक्स वायरस (एचएसवी) प्रकार १ और २ के संक्रमण के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है

नीम

यह पौधा एनडी और पैर और मुंह की बीमारी (थ्डक) के वायरस के खिलाफ काम करता है। हालांकि) एनडी के खिलाफ इसकी उपयोगिता को इसके सूजनरोधी और प्रतिरक्षा उत्तेजक गुणों के कारण) इसे बेहतर माना जाता है।

शिमला मिर्च

ये दुनिया भर में व्यापक रूप से विभिन्न प्रकार की बीमारियों के रोगियों के इलाज के लिए) अन्य पौधों की सामग्री के साथ उपयोग किए जाते हैं। प्रमुख घटक कैप्साइसिन है। जो पोल्ट्री में रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार कर सकता है। एनडी को नियंत्रित करने के लिए, अन्य प्रजातियों जैसे *Aloe secundiflora* and *Lagenaria breviflora*के संयोजन में शिमला मिर्च का उपयोग करते हैं।

कैसिया तोरा

इस पौधे में महत्वपूर्ण मात्रा में एन्थ्राक्विनोन होते हैं) जो न्यू कैसल रोग के खिलाफ कार्य करता है। एंटी-एनडी वायरस गतिविधि वाली संबंधित प्रजातियों में तरवड़ (*Cassia auriculata*) और अमलतास (*Cassia fistula*) शामिल हैं।

Euphorbia spp

एक छोटे से नैदानिक परीक्षण मे, इस पौधे की शाखाओं को कुचल कर मुर्गियों के पीने के पानी में रात भर भिगो कर दिया जाता है । जब इस पानी को रोगनिरोधी उपयोग बेहतर है और मृत्यु दर को पूरी तरह से नियंत्रित करता है। कई अन्य यूफोरबिया प्रजातियों या उनके रासायनिक घटकों में महत्वपूर्ण एंटीवायरल गतिविधि होती है। इन्फ्लूएंजा के खिलाफ म्नचीवतइपं बवउचवेपजनउ, एचएसवी के खिलाफ *Euphorbia thymifolia*और *Euphorbia tirucalli*, ह्यूमन साइटोमेगालोवायरस के खिलाफ *Euphorbia australis*और पोलियो और कॉक्ससेकी वायरस के खिलाफ *Euphorbia grantii*और *Euphorbia hirta*शामिल हैं। न्यू कैसल रोग के लिए एथनोवेटरिनरी दवा उपचार के एंटीवायरल गुण महत्वपूर्ण हैं। इन प्रभावों को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। यह विशेष रूप से पारिवारिक पोल्ट्री के लिए सच है, जो लगभग हमेशा वेलोजेनिक न्यू कैसल रोग से संक्रमित होते हैं। अफ्रीकी पशुधन और मनुष्यों में दस्त को कम करने के लिए *Adansonia digitata, Mangifera indica, Strychnos potatorum* और *Ziziphus abyssinica*का उपयोग करते हैं) जिसमे प्रतिरक्षा-बढ़ाने वाले गुण पाए गए हैं। मनुष्यों और पशुओं में दस्त के मामलों में उपयोग किए जाने वाले पौधे लहसुन) गवार पाठा, नीम, आम, गोल मिर्च, सरफोंक (*सरपुंखा Tephrosia purpurea*) और मेथी हैं ।

एवियन इन्फ्लुएंजा (एआई) एक आर.एन.ए वायरस (ऑर्थोमेक्सोविरिडे परिवार) के कारण होता है। यह एक प्रकार का इन्फ्लूएंजा है। यह वायरस श्वसन और जठरांत्र प्रणाली में संबंधित नैदानिक लक्षणों और झड़ने के तरीकों के साथ पुनरुत्पादित करता है। जंगली जलपक्षी प्राकृतिक मेजबान हैं। लेकिन अन्य पक्षी और यहां तक कि स्तनधारी भी संक्रमित हो सकते हैं। पहली बार १८७८ में प्रलेखित, एआई को चिकित्सकीय रूप से निम्न या उच्च रोगजनकता के रूप में वर्गीकृत किया गया है। कम रोगजनकता आमतौर पर जंगली जलपक्षी में होती है। लेकिन घरेलू कुक्कुट में हल्की या गंभीर बीमारी का कारण बनती है। घरेलू पक्षियों में अनुपचारित उच्च रोगजनकता में मृत्यु दर १००प्रतिशत के करीब हो सकती है। संभावित खतरे को देखते हुए, इन तीन पौधों की सामग्री आमतौर पर कुक्कुट झुंडों के पीने के पानी में एवियन इन्फ्लूएंजा के मामलों में किया जा सकता है।

लहसुन

चिकित्सकीय रूप से, लहसुन के घटक इन्फ्लूएंजा के लिए एंटीवायरल होते हैं और संभवतः संक्रमण से पहले प्रशासित होने पर भी फायदेमंद होते हैं। ताजा लहसुन हर्पीज सिम्प्लेक्स वायरस टाइप १ और २ (HSV१ और HSV२), ह्यूमन राइनोवायरस टाइप २, पैरैनफ्लुएंजा ३) वैक्सीनिया वायरस और वेसिकुलर स्टामाटाइटिस वायरस के खिलाफ विषाणुनाशक है।

कालमेघ

भारत में परिवार इस पूरे पौधे को पानी में तब तक उबालते हैं जब तक कि आधा पानी वाष्पित न हो जाए। फिर वे २ मुट्ठी बिना पके पिसे हुए चावल डालते हैं और मिश्रण को रात भर छोड़ देते हैं। अगली सुबह, इसे भेड़-बकरियों के नियमित भोजन से खिलाया जाता है। इन विट्रो और क्लिनिकल अध्ययनों से संकेत मिलता है कि या तो अकेले या एलुथेरोकोकस सेंटीकोसिस के संयोजन में, कालमेघ मनुष्यों में श्वसन संक्रमण से जुड़े लक्षणों की गंभीरता को कम करता है - जिसमें सर्दी, साइनोसाइटिस और इन्फ्लूएंजा शामिल हैं। इसके अलावा, इस पौधे या इसके घटकों में हेपेटाइटिस बी, मानव इम्यूनोडेफिशियेंसी वायरस यानी एचआईवी और श्वसन सिंकिटियल वायरस के खिलाफ काम करता है। इसके अलावा, इसमें शक्तिशाली ज्वलनशीलता विरोधी और प्रतिरक्षा उत्तेजक गुण हैं।

निकोटियाना ग्लौका

निकोटियाना ग्लौका का जलीय अर्क एवियन इन्फ्लूएंजा वायरस के संक्रमण को रोकता है। यह पाया गया है कि कुक्कुट पक्षी तंबाकू के पत्तों को बिना किसी स्पष्ट प्रतिकूल प्रभाव के खा सकता है। करेला, मेथी, और अदरक प्रतिरक्षा-बढ़ाने वाले पौधे हैं।

हल्दी सूजन-रोधी है तथा उसको भोजन में मिलाने से यह ब्रायलर के प्रदर्शन में सुधार करता है। तुलसी (*Ocimum sanctum*) में सूजन के खिलाफ और विशेष रूप से पोल्ट्री के संक्रामक बर्सल रोग के प्रतिरक्षादमनकारी प्रभावों के खिलाफ अच्छा कार्य करता है। मनुष्यों के लिए एंटी-इन्फ्लुएंजा प्रभाव वाले कुछ पौधे हैं जंगली स्ट्रबेरी और मोकोय।

सूची में पशुधन स्वास्थ्य के संरक्षण में महत्वपूर्ण एथनोवेटरिनरी औषधीय गुण वाले कुछ प्रमुख पौधे शामिल हैं ।

क्र.सं.	सामान्य नाम/ वानस्पतिक नाम	पौधे का हिस्सा	क्रियाएँ और अनुप्रयोग
1.	अपामार्ग *Achyranthes aspera*	पत्तियां	युवा पत्तों को उबालकर पालक की तरह खाया जाता है। पोटेशियम युक्त। पारंपरिक उपयोगों में मूत्रवर्धक,लिथोट्रिप्टिक शामिल हैं।
2.	बेल या बेल फल *Aegle marmelos*	फलों का पेस्ट; फलों का गूदा; पत्तों का पेस्ट+हल्दी; पत्तों का पेस्ट+अरंडी के बीज का तेल	अमीबिक पेचिश,गर्भपात,चोट,कब्ज,पेट फूलना और पुराने दस्त को दूर करने और पाचन क्रिया में सुधार।
3.	लहसुन *Allium sativum*	लहसुन	लहसुन पाचन, श्वसन, तंत्रिका, हृदय और प्रजनन क्रिया में सुधार करता है। सर्दी, खांसी, अस्थमा, हृदय रोग और उच्च रक्तचाप, अतालता (arrhythmia) जिल्द (dermatitis) की सूजन और गठिया के लक्षणों में मदद करता है।
4.	धृत कुमारी या ग्वार गंडम जेल *Aloe barbadensis*	पत्ती का गूदा; पत्ता लुगदी + दही; पत्ता पेस्ट; पत्ता श्लेष्मा; जटरोफा के पत्ते + पत्ते; पत्ती का गूदा + खट्टा दूध + पानी	मास्टिटिस (थानेला रोग), चोटें, उदर की सूजन, बर्न्स, बुखार, कब्ज, मोटापा, सूजन वाली त्वचा की स्थिति, सूजी हुई ग्रंथियों, नेत्रश्लेष्मलाशोथ, बर्साइटिस, पीलिया, हेपेटाइटिस और आंतों के हेल्मिंथियासिस के मामलों में उपयोग किया जाता है।
5.	कालमेघ *Andrographis paniculate*	पौधा और बीज	लीवर टॉनिकहार्ट टॉनिक। सकारात्मक कार्डियक इनोट्रोपिक, कृमिनाशक ज्वरनाशक, सूजन-रोधी और कैंसर रोधी।
6.	शतावरी जड़ें *Asparagus racemosus*	कंद	मूत्रवर्धक, शतावरी (जंगली), कामोत्तेजक, टॉनिक, एंटीसेप्टिक और डायरिया रोधी गुण के लिए उपयोग किया जाता है। मादा जानवर में दुर्बलता, बांझपन, नपुंसकता और कामेच्छा में कमी, पेट के अल्सर, अति अम्लता, निर्जलीकरण, फेफड़ों के फोड़े, रक्तगुल्म, खांसी, दाद, प्रदर और पुराने बुखार के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है।
7.	नीम *Azadirachta indica*	पत्ती, जड़, बीज, जड़ की छाल, गोंद, फल, फूल, तना और तेल	आयुर्वेदिक चिकित्सा में सबसे महत्वपूर्ण हर्बल डिटॉक्सिकेंट्स। पेड़ की पत्ती, जड़, बीज, जड़ की छाल, गोंद, फल, फूल, तना और तेल का उपयोग किया जाता है: एथनोवेटरिनरी संबंधी उपयोग पेड़ के हिस्से के आधार पर अलग-अलग उपयोग किया जाता है।
		छाल	टॉनिक, सर्द, कृमिनाशक, उल्टी, दिल के पास जलन, थकान, बुखार, प्यास, मुंह में खराब स्वाद, खांसी, अल्सर, सूजन, कुष्ठ रोग, रक्त विकार, मूत्र निर्वहन, भूख में कमी भी पैदा कर सकता है। मुर्गी पालन में,छाल का उपयोग घावों, दस्त, टिक्स और जूँ के इलाज के लिए और एक कीट विकर्षक के रूप में किया जाता है।
		पत्ती कार्मिनेटिव, एक्सपेक्टोरेंट, एंथेलमिंटिक, कीटनाशक	नेत्र विकार, पित्त, चर्म रोग, सूजन, कान का दर्द, गठिया, फोड़े, खून की अशुद्धियाँ, फोड़े का इलाज करने के लिए भी प्रयोग किया जाता है और आमतौर पर कैस्ट्रेशन के बाद लगाया जाता है। जुगाली करने वालों में पत्तियाँ रक्तस्राव,थन संक्रमण, ज्वर, पांव सड़न और जुओं के लिए भी उपयोगी तथा कीट विकर्षक के रूप में किया जाता है। आम तौर पर नीम के पत्तों को अनाज की बोरियों में रखा जाता है ताकि कीट के प्रकोप से बचा जा सके। पत्ती का काढ़ा : स्टामाटाइटिस में गरारे के रूप में और मसूड़े और पीरियोडोंटल रोग के लिए
		फूल	उत्तेजक, कृमिनाशक
		कोमल ताजे पत्ते	आँख और त्वचा रोग, कुष्ठ रोग
		पुराने पत्ते	अल्सर को तेजी से ठीक करने में मदद करें
		ताजे शाखाएं	खांसी, दमा, बवासीर, ट्यूमर, मूत्र निर्वहन, कृमिनाशक
		पके और कच्चे फल	मूत्र स्राव, त्वचा रोग, ट्यूमर, बवासीर, दांत दर्द, तैलीय, कड़वा, गर्म, रेचक, कृमिनाशक

		बीज	जुगाली करने वालों में, टिक्स के लिए और सभी प्रजातियों में एक कीट विकर्षक के रूप में उपयोग किया जाता है
		बीज का तेल	त्वचा विकारों के इलाज के लिए स्थानिक प्रयोग किया जाता है
		पौधे के सभी भाग निम्नलिखित में प्रयोग किया जाता हैं	हेल्मिंथियासिस, मौखिक घाव, ग्लोसिटिस, एस्चेरिचिया कोलाई बेसिलोसिस, हेपेटोमेगाली, पीलिया, रक्तस्रावी पेचिश, और आंतों के घाव, कब्ज, अपच, श्वसन और गले के विकार, अस्थमा, फुफ्फुस निमोनिया और फेफड़ों और श्वसन पथ में श्लेष्मा झिल्ली की सूजन। सामान्य त्वचा विकार जैसे डर्माटोफाइटिस, खालित्य (alopecia), एक्जिमा, पित्ती और खुजली, मेट्राइटिस, टेटनस, गुर्दे की सूजन,स्तन की सूजन,कान की सूजन,कान के फोड़े,रिंडरपेस्ट और गठिया इत्यादि शामिल हैं।
		नीम की चिकित्सीय क्रियाएं	
		औषधीय और औषधीय गतिविधियाँ, सामान्य गुण	ऐंटिफंगल, जीवाणुरोधी, एंटी वाइरल, मधुमेहरोधी, मलेरिया रोधी, ज्वरनाशक, अल्सर रोधी, हेपेट्रोप्रोटेक्टिव, हाइपोग्लाइसेमिक, सूजनरोधी, इम्यूनोमॉड्यूलेटरी, एंटीट्यूमर, उर्वरता रोधी, कीटनाशी गतिविधि: यह मुख्य गुण है जिसके लिए नीम जाना जाता है।
		बीज के अर्क+ तंबाकू	कैटरपिलर लार्वा और स्पोडोप्टेरा लिटुरा के विकास को बाधित करते हैं।
		बीज	तेलकड़वा, कृमिनाशक मात्रा बनाने की विधि आसव (चाय) 1.10 एमएल टीआईडी पाउडर 0.5-1 ग्राम टीआईडी तेल (खुराक आंतरिक उपयोग के लिए है): 0.05एमएल-0.5एमएल टीआईडी
8.	ब्राह्मी *Bacopa monniera*	पौधा	बुद्धि, अस्थमा, स्वर बैठना, पागलपन, और कुत्तों और बिल्लियों में सबसे अधिक बार-बार होने वाले मिर्गी में सुधार करता है। एंटीवायरल, इम्यूनोस्टिमुलेंट, एंटीपीयरेटिक, एंटीनोप्लास्टिक, कार्डियोटोनिक, हाइपोटेंशन।
9.	दारुहल्दी *Berberis aristate*	राइजोम	ज्वर की स्थिति, हेपेटोमेगाली, स्प्लेनोमेगाली, नेत्रश्लेष्मलाशोथ, या पुरानी पेचिश, पीलिया, कोलेसिस्टिटिस, गियार्डियासिस, अमीबियासिस, गैस्ट्रिक अल्सर, हेपेटाइटिस और मधुमेह के लिए उपयोग किया जाता है।
10.	पुनर्नवा *Boerhaavia diffusa*	जड़ पाउडरपत्ते + ड्रम स्टिक की छाल का पेस्ट+ लहसुन, जड़ का रस	गुर्दे और यकृत रोग, मूत्रवर्धक पर लाभकारी प्रभाव। यकृत रोग, गठिया, दस्त और पेचिश का इलाज करने के लिए प्रयोग किया जाता है।
11.	सलाई *Boswellia serrata*	राल	इस पेड़ के रस से एकत्रित राल का अर्क सदियों से दर्द और सूजन को दूर करने के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। पारंपरिक उपयोगों में गठिया,पेचिश और दस्तए और सूजन संबंधी त्वचा रोग शामिल हैं। इसमें सूजन-रोधी,कफ निस्सारक और मूत्रवर्धक गुण होते हैं। बहुत सुरक्षित,अध्ययनों से संकेत मिलता है कि बोसवेलिया आमतौर पर सूजन-रोधी दवाओं से जुड़े प्रतिकूल प्रभावों में से कोई भी पैदा नहीं करता है,जैसे कि अल्सर,गैस्ट्रिटिस और प्रतिकूल हृदय प्रभाव। सूजन से जुड़े त्वचा रोगों जैसे सोरायसिस और ब्रोन्कियल अस्थमा के लिए भी प्रभावी। सूजन को कम करता है। पाउडर जड़ी बूटी की खुराक: कुत्ते: 10.20 मिलीग्राम/किलोग्राम BID बिल्लियाँ: 5.10 मिलीग्राम/किलोग्राम BID
12.	मंडुकपर्णी *Centella asiatica*	पौधा	पारंपरिक उपयोगों में घाव भरने के लिए स्थानिक रूप से और आंतरिक रूप से एक तंत्रिका और मस्तिष्क टॉनिक के रूप में,याददाश्त में सुधार करता है। हृदय को लाभ पहुंचाता है,इसमें सूजन-रोधी भूमिका होती है,और मूत्रवर्धक गुण भी होते हैं
13.	दालचीनी *Cinnamomum cassia/ zeylanicum*	छाल	संयंत्र परिसंचरण,पाचन क्रिया और श्वसन क्रिया में सुधार करता है। परंपरागत रूप से सर्दी,साइनस की संकुलन,ब्रोंकाइटिस और अपच के लिए उपयोग किया जाता है।
14.	रत्ती *Abrus precatorius* L.	बीज + बाजरा का आटा, पत्ते, जड़, पत्ता का पेस्ट, कुचली हुई जड़ें	राइनाइटिस, तीव्र पेट का दर्द, अल्पकालिक बुखार, त्वचा की एलर्जी, सूजन, खांसी, सर्दी और निमोनिया

15.	अतिबला *Abutilon indicum* (L.)	पत्ती का पाउडर; पत्ते; पत्ती का पेस्ट + छाछ; पत्ती का काढ़ा+मट्ठा	दस्त, गठिया, पेचिश, और दस्त।
16.	कतथा; *Acacia catechu* (L.f.)	तने की छाल का पेस्ट; लकड़ी का पाउडर	घाव, पपीला का बढ़ना
17.	बबूल; *Acacia nilotica* (L.)	पत्तियां +निंबू के पत्ते + बेकिंग सोडा; पत्तियां और छाल पाउडर; फूलों का पेस्ट, छाल का अर्क	पेट का दर्द, ब्लोट (टायम्पेनाइटिस), मैगॉट घाव, पीलिया, पेचिश
18.	बच; *Acorus calamus* L.	पत्तियों का पेस्ट, प्रकंद	घाव
19.	चोलाई *Amaranthus spinosus* L	पूरा पौधा, पौधे का काढ़ा; पूरे पौधे का पेस्ट	लैक्टेशन, डिलीवरी की शिकायतें; घाव
20.	शरीफा *Annona squamosa*	पत्तों का पेस्ट, कच्चे फलों का रस, पत्तों का काढ़ा, बीज का पेस्ट; पत्ता पेस्ट; बीज पाउडर; पत्तों का रस+ हींग; पत्ता पेस्ट+नींबू	कट और घाव, पेट में कीड़े; जूँ, घरेलू मक्खियाँ, मच्छर और घोंघे, अस्थि भंग; घाव; एक्टोपारासाइट्स; पैर की बीमारी
21.	सेमल *Bombax ceiba* L	तने की छाल का पेस्ट+ हल्दी पाउडर; पत्ती का पेस्ट, फूलों का रस; तने की छाल; छाल पेस्ट+पानी	अव्यवस्थित हड्डियां; घाव, गर्भाशय का आगे को बढ़ाव; पेट फूलना, अपच; पेचिश
22.	कचनार *Bauhinia variegata*L.	जड़ का पेस्ट	प्रसव के बाद प्लेसेंटा को बाहर निकालें; अंधापन
23.	सरसों *Brassica rapa*	बीज का तेल, बीज का पेस्ट; साइकिल के टायर की राख + सरसों का तेल	त्वचा रोग, मसटाईटिस (थनेला रोग), मस्तिष्क रोग, कान का दर्द, पूंछ का गिरना, घाव; पैर सड़ना
24.	पलास *Butea monosperma*	छाल का काढ़ा; छाल का पेस्ट; बीज पेस्ट + हल्दी; गर्म पत्ते; बीज पेस्ट; बीज पाउडर + नमक + पानी; बीज का तेल + आम का बीज का तेल; फूलों का काढ़ा	सूजन; पेचिश; पैर और मुंह की बीमारी (खुरपका); आंतों के कीड़ों को बाहर निकालना; कृमिनाशक; त्वचा की सूजन; डिसुरिया, पक्षाघात; हेमट्यूरिया
25.	कटकरंज *Caesalpinia bonduc* (L.)	बीज का पेस्ट	बाह्यपरजीवी नाशक
26.	सफ़ेद आक *Calotropis gigantea* (L.)	पत्ती और जड़ का पेस्ट; जली हुई जड़ का पाउडर + तिल का तेल; गर्म पत्ते; जड़; लेटेक्स; फूल की कलियाँ, जली हुई जड़; जड़ का पेस्ट+ काली मिर्च+लहसुन	घाव; जुए के कारण कंधे के घाव; पैर और मुंह की बीमारी; बहता नाक; फोड़े, कट, चोट, घाव, छाले, कुत्ते का काटना; सूजन; दस्त, पेचिश, कंधे के घाव; बुखार
27.	मदार	पत्ते का रस, लेटेक्स; पत्ते, पत्ते सरसों के तेल से गरम करें; पत्ती का पेस्ट; जड़ का चूर्ण+दूध; पत्ते; फूल पेस्ट+गुड़	कान का दर्द, पूंछ का गिरना; सूजन, अपच; घावों का उपचार; अस्थि भंग, त्वचा रोग; मूत्र प्रतिधारण; दस्त और पेचिश; पेटदर्द; फोडा; आसान डिलीवरी, सांप का काटना
28.	तिखुर *Curcuma angustifolia*	राइजोम	जोंक से घायल पशुओं के रक्तस्राव को रोकने के लिए राइजोम का लेप लगाया जाता है।
29.	काली हल्दी *Curcumacaesia*	ताजा राइज़ोम का रस	ताजा राइज़ोम का रस सरसों के तेल में मिलाकर एक बार खाली पेट 2-3 दिनों तक पेचिश में दिया जाता है। इसे गठिया पर भी लगाया जाता है।
30.	दूब घास *Cynodon dactylon*	पौधे का रस	हेमट्यूरिया को ठीक करने के लिए पौधे का रस सप्ताह में दो या तीन बार दिन में दो बार दिया जाता है।
31.	धतूरा मेटेल *Dhatura metel*	कोमल पत्ता	कोमल पत्तों के रस में चीनी और पानी मिलाकर दिन में एक बार दो दिन तक रेबीज से बचाव के लिए दिया जाता है। खुराक मवेशियों की उम्र के अनुसार बदलती रहती है
32.	मुंग *Phaseolus mungo*	बीज	बीज को पानी में भिगोकर करक्यूमा एंगुस्टिफोलिया राइज़ोम की समान मात्रा के साथ पोल्टिस में बनाकर सरसों के तेल में मिलाकर त्वचा रोगों में मवेशियों पर लगाया जाता है।
33.	काली मिर्च *Piper nigrum*	सूखे बीज	सूखे बीजों के चूर्ण को पानी में मिलाकर कीड़ों के काटने के दर्द से तुरंत राहत मिलती है।
34.	गन्ना *Saccharum officinarum*	पत्तियाँ	पत्तियाँ प्रसव के बाद गाय के प्लेसेंटल डिस्चार्ज को तेज करने के लिए दी जाती हैं।

35.	जंगली अरबी	कंद	कुचले हुए कंद स्तनपान बढ़ाता (गैलेक्टागॉग) है; कॉर्म पेस्ट घावके लिए
36.	गुलमोहर *Delonix regia*	छाल का अर्क + काली मिर्च + लहसुन	बुखारमें इलाज
37.	भृंगराज *Eclipta prostrata*	पूरा पौधा	पूरे पौधे की पोल्टिस; पूरा पौधा, पत्ती का रस; पत्ता पेस्ट; पत्तों का काढ़ा+सरसों का तेल कट और घाव; अंधापन और ब्रोंकाइटिस; कट, चोट; सूजन; घाव
38.	बाय बिडंग *Embelia ribes*	पत्तों का काढ़ा+मट्ठा, उबले फल	पेचिश
39.	छोटी दुधी, लाल दुधि	कुचला हुआ पौधा+शतावरी+गूंथा हुआ आटा	लैक्टागॉग
40.	हिंग *Ferula assafoetida*	हिंग एक्सयूड्स+जीरा का फल पाउडर + मेथी का बीज पाउडर + अजवाईन का फल पाउडर +छकुंद का बीज पाउडर / चक्रमर्द + काली मिर्च का फल पाउडर	अपच, कब्ज, मसटाइटिस
41.	अडुसा *Justicia adhatoda*	पत्ता	पत्तों का पेस्ट+गुड़; पेस्ट; पत्ता पुल्टिस; पत्ती का काढ़ा; पत्ता पाउडर; कुचल पत्ते; पत्तों का रस+ जामुन की छाल का रस; पत्ता और तना काढ़ा ब्रोंकाइटिस; खांसी; घाव भरने और सूजन सूजन; पेट के स्नेह को दूर करें और आंतों के कीड़ों को बाहर निकालें; दस्त और पेचिश; बुखार
42.	मेहंदी *Lawsonia inermis*	पत्ता पेस्ट; काढ़ा;पाउडर + पानी; कुचले हुए पत्ते	पैर और मुंह की बीमारी; घाव; पैर और मुंह की बीमारी; रक्तमेह; एसिडिटी, डायरिया और पेट के अन्य विकार
43.	लाजवंती *Mimosa pudica*	पत्ती का अर्क; पत्ते का पेस्ट+काली मिर्च+लहसुन+प्याज+केसर; पत्ता पेस्ट + चपाती;	गर्भाशय का आगे बढ़ना; बुखार; कीड़ा घाव
44.	केला *Musa paradisiaca*	स्पैथ, फल	स्पैथ का अर्क; फलों का पेस्ट + चीनी कैंडी; पत्ता और जड़ गर्भाशय का आगे बढ़ना; छाले, खुर दर्द; शारीरिक गर्मी
45.	तम्बाकु *Nicotiana tabacum*	पत्ती, बीज	पत्ती का धुआँ; बीज; पत्ती का रस टिक्स और जूँ; आंत के कीड़े; एक्टोपारासाइट्स
46.	हरसिंगार *Nyctanthes arbor-tristis*	पत्ती का काढ़ा	कीड़े से पीड़ित घाव; बुखार
47.	चित्रक *Plumbago zeylanica*	जड़	जड़ का पेस्ट + गुड़; जड़ का पेस्ट पेट दर्द; स्टोमेटिस, दस्त; संक्रमित घाव कीड़े को मारने के लिए
48.	करंज *Pongamia pinnata*	पत्ते, बीज का तेल; पत्ती का पेस्ट + काली मिर्च, तने की छाल का काढ़ा; बीज का तेल + फास्फोरस पाउडर	गैलेक्टागॉग; त्वचा रोग; बुखार; पेचिश; दाद

पारंपरिक ज्ञान के पूर्ण क्षरण से पहले, इसे ठीक से प्रलेखित और वैज्ञानिक रूप से मान्य किया जाना चाहिए। मध्य भारत की एथनोवेटरिनरी संबंधी दवाओं पर सभी प्रकाशित साहित्य का दस्तावेजीकरण करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन काल से आदिवासी और लोक समुदायों द्वारा प्रचलित एथनोवेटरिनरी चिकित्सा के आधार पर उनकी औषधीय गतिविधि के लिए और गहन अध्ययन की आवश्यकता है। इससे मानव समाज के लाभ के लिए हर्बल मूल की नई दवाओं का विकास होगा। इससे किसानों को पास के पौधों का उपयोग करके उनके पशुओं की बीमारियों की रोकथाम और उपचार में मदद मिलेगी, एवं किसानों को आर्थिक रूप से मदद मिलेगी और इस प्रकार उनकी आय में वृद्धि होगी।

१७.

कृषि एवं महाकवि घाघ

प्रदीप कुमार राय, राकेश शर्मा, विनोद गुप्ता, उमा शंकर एवं सुधाकर दिवेदी

कृषि को सस्य कर्म अथवा वेदों के उपवेद के रुप में सस्यवेद भी कहते हैं। काश्यप, पाराशरा आदि मुनियों ने कृषि के वैज्ञानिक पक्ष को लेकर अपने अपने ग्रंथों की रचनाऐं की थी। बराहमिहिर, भोजा आदि मध्यकालीन विद्वानों ने भी अपने अपने ग्रंथों में कृषि सम्बन्धित चर्चाऐं की है। इनके अलावा ब्राह्मण ग्रंथ, वेद शाखाऐं, कल्पसूत्र, ज्योतिषादि ग्रंथों में कृषि सम्बन्धित कथनों का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन काल में जब आधुनिक तकनीकों का प्रचलन नहीं था, उस समय मौसम आधारित भविष्यवाणियां सटीक होती थीं । महाकवि घाघ ऐसे ही अनुभवी कवियों में माने जाते हैं । वह कृषि पंडित एवं व्यावहारिक पुरुष थे। चाहे बैल खरीदना हो या खेत जोतना, बीज बोना हो अथवा फसल काटना, घाघ की कहावतें उनका पथ प्रदर्शन करती हैं। ये कहावतें मौखिक रूप में भारत भर में प्रचलित हैं। आज के समय में विभिन्न प्रकार के उपकरणों द्वारा मौसम संबंधी जानकारी मिल जाती है। लेकिन सदियों पहले ऐसे उपकरण उपलब्ध नहीं थे । ऐसे समय में महान सान कवि घाघ व भड्डरी की कहावतें किसानों का पीढियों से पथप्रदर्शन करते आयी हैं। पुराने समय में कम मानसून सम्बन्धी बातों का पहले ही अनुमान लगाया करते थे और उसके अनुसार कृषक व अन्य लोग अपनी दिनचर्या तय करते थे।

घाघ के जन्मकाल एवं जन्मस्थान के संबंध में बड़ा मतभेद है। किंतु पं.रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार इनका कार्यकाल सम्राट् अकबर के राज्यकाल में माना है। कन्नौज के पास चौधरीसराय नामक ग्राम के रहने वाले घाघ के ज्ञान से प्रसन्न होकर सम्राट अकबर ने उन्हें सरायघाघ बसाने की आज्ञा दी थी। यह जगह कन्नौज से एक मील दक्षिण स्थित है।घाघ और भड्डरी की कहावतें नामक पुस्तक में देवनारायण द्विवेदी लिखते हैं, कुछ लोगों का मत है कि घाघ का जन्म संवत् १७५३ में कानपुर जिले में हुआ था। यह कब तक जीवित रहे, इसका ठीक-ठाक पता नहीं चलता। घाघ और भड्डरी के जीवन के बारे में प्रामाणिक तौर पर बहुत ज्ञात नहीं है। उनके द्वारा रचित साहित्य का ज्ञान भी ग्रामीणों ने किसी पुस्तक में पढ़ कर नहीं बल्कि परंपरा से अर्जित किया है। कहावतों में बहुत जगह 'कहै घाघ सुनु भड्डरी', 'कहै घाघ सुन घाघिनी' जैसे उल्लेख आए हैं। इस आधार पर आम तौर पर माना जाता है कि भड्डरी घाघ कवि की पत्नी थीं। हालांकि अनेक लोग घाघ व भड्डरी को पति-पत्नी न मानकर एक ही व्यक्ति अथवा दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति मानते हैं।अभी तक घाघ की लिखी हुई कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं हुई।'घाघ' और 'भड्डरी' जो उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में एक कृषि विशेषज्ञ के समकक्ष ही स्थान रखते हैं इनके दोहे आज भी किसानों ने आत्मसात किये हुए हैं इन दोहों के माध्यम से सहज शब्दों में मौसम के पूर्वानुमान के संकेत दिए गए हैं।उनके द्वारा कही गयी बातें कहावतों के रूप में प्रचलित हुई है, जिसे अनेक लोगों ने संग्रहीत किया है। इनमें रामनरेश त्रिपाठी कृत 'घाघ और भड्डरी' (हिंदुस्तानी एकेडेमी, १९३१ ई.) अत्यंत महत्वपूर्ण संकलन है। डा.राधेश्याम द्विवेदी ने इसे अनूठे ढंग से सरल भाषा में प्रस्तुत किया । किस मास में किधर से हवा चले तो कितनी वर्षा हो, अथवा किस मास की वर्षा से खेती में कीड़े लगेंगे, इसका अच्छा व्यावहारिक ज्ञान उन्हें था। आज भी किसान उनकी ऐसी कहावतों से लाभान्वित होते हैं। बैल ही खेती का मूलधार है, घाघ ने बैलों के आवश्यक गुणों का वर्णन किया है। हल तैयार करने के लिये आवश्यक लकड़ी एवं उसके परिमाण का भी उल्लेख उनकी कहावतों में मिलता है। इस प्रकार यह अवश्य कहा जा सकता है कि घाघ ने भारतीय कृषि को व्यावहारिक दृष्टि प्रदान की। वैज्ञानिक दृष्टि से उनकी ये समस्त कहावतें अत्यन्त सारगर्भित हैं, भारतीय कृषि विज्ञान में घाघ का विशिष्ट स्थान हैं। माना जाता है कि खेती और मौसम के बारे में कृषि वैज्ञानिकों की भविष्यवाणियां झूठी साबित हो सकती है, घाघ की कहावतें नहीं। भारतीय ग्रामीण समाज आज भी इन कहावतों में ही अपनी शंकाओं का समाधान ढूंढ़ता है, और आश्चर्यजनक रूप से हजारों साल के अनुभव के निचोड़ के रूप में ये लोकोक्तियाँ काफी हद तक सटीक भी बैठती हैं। अतः यदि बौद्धिक वैज्ञानिक समुदाय इन परम्पराओं में छुपे वैज्ञानिक तथ्यों को उभारने की ओर केन्द्रित हो तो परंपरा और आधुनिक विज्ञान का यह संगम आम लोगों को ज्यादा लाभान्वित कर पायेगा। घाघ के कृषि ज्ञान का पूरा-पूरा परिचय उनकी कहावतों से मिलता है। उनका यह ज्ञान खादों के विभिन्न रूपों, गहरी जोत, मेंड़ बाँधने, बीज के बोने के समय, बीज की मात्रा, दालों की खेती के महत्व एवं ज्योतिष ज्ञान, शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है। घाघ का मत था कि कृषि सबसे उत्तम व्यवसाय है, जिसमें किसान भूमि को स्वयं जोतता है ।

उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।
खेती करै बनिज को धावै, ऐसा डूबै थाह न पावै।
उत्तम खेती जो हर गहा, मध्यम खेती जो सँग रहा।
जो हल जोतै खेती वाकी और नहीं तो जाकी ताकी।

फसल लगाने का समय एवं बीज की मात्राः- घाघ ने फसलों के बोने का उचित काल एवं बीज की मात्रा का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार प्रति बीघे में पाँच पसेरी गेहूँ तथा जौ, छः पसेरी मटर, तीन पसेरी चना, दो सेर मोथी, अरहर और मास, तथा डेढ़ सेर कपास, बजरा बजरी, साँवाँ कोदों और अंजुली भर सरसों बोकर किसान दूना लाभ उठा सकते हैं। यही नहीं, उन्होंने बीज बोते समय बीजों के बीच की दूरी का भी उल्लेख किया है, जैसे घना-घना सन, मेंढ़क की छलांग पर ज्वार, पग पग पर बाजरा और कपासय हिरन की छलाँग पर ककड़ी और पास पास ऊख को बोना चाहिए। कच्चे खेत को नहीं जोतना चाहिए, नहीं तो बीज में अंकुर नहीं आते। यदि खेत में ढेले हों, तो उन्हें तोड़ देना चाहिए। आजकल दालों की खेती पर विशेष बल दिया जाता है, क्योंकि उनसे खेतों में नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। घाघ ने सनई, नील, उर्द, मोथी आदि को खेत में जोतकर खेतों की उर्वरता बढ़ाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। खेतों की उचित समय पर सिंचाई की भी चर्चा की ।

मानसून का महत्त्वः- भारत आज भी किसानों का देश है, और किसानों के लिए मानसून का बहुत महत्त्व है। सदियों से मानसून पर निर्भरता ने ही इसके पूर्वानुमानों के लिए आधुनिकतम तकनीकों की खोज के लिए प्रेरित किया, जो आज अन्तरिक्ष और उपग्रहों तक पहुँच गई है। परन्तु इससे पारंपरिक अनुभवों पर आधारित विज्ञान का महत्त्व कम नहीं हो जाता। अलग-अलग नक्षत्रों और माह में वायु तथा ग्रहों की स्थिति की ग्रामीण विवेचना भी मानसून पर पूर्वानुमान व्यक्त करती रही है।

खादों के संबंध में विचारः- खादों के संबंध में घाघ के विचार अत्यंत पुष्ट थे। उन्होंने गोबर, कूड़ा, हड्डी, नील, सनई, आदि की खादों को कृषि में प्रयुक्त किए जाने के लिये जोर डाला था । घाघ की निम्नलिखित कहावतें अत्यंत सारगर्भित हैं :

खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत।
गोबर राखी पाती सड़ै, फिर खेती में दाना पड़ै।
सन के डंठल खेत छिटावै, तिनते लाभ चौगुनो पावै।
गोबर, मैला, नीम की खली, या से खेती दुनी फली।
वही किसानों में है पूरा, जो छोड़ै हड्डी का चूरा।

गहरी जुताईः- घाघ ने गहरी जुताई को सर्वश्रेष्ठ जुताई बताया। यदि खाद छोड़कर गहरी जोत कर दी जाय तो खेती को बड़ा लाभ पहुँचता है :
छोड़ै खाद जोत गहराई, फिर खेती का मजा दिखाई।

बांध न बाँधने से भूमि के आवश्यक तत्व घुल जाते और उपज घट जाती है। इसलिये किसानों को चाहिए कि खेतों में बाँध अथवा मेंड़ बाँधे,
सौ की जोत पचासै जोतै, ऊँच के बाँधै बारी।
जो पचास का सौ न तुलै, देव घाघ को गारी।।
सुकालरू-सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूर।
परिवा तपै जो जेठ की, उपजै सातो तूर।।
यदि रोहिणी भर तपे और मूल भी पूरा तपे तथा जेठ की प्रतिपदा तपे तो सातों प्रकार के अन्न पैदा होंगे।

शुक्रवार की बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे ना जाए।।
यदि शुक्रवार के बादल शनिवार को छाए रह जाएं, तो भड्डरी कहते हैं कि वह बादल बिना पानी बरसे नहीं जाएगा।

भादों की छठ चांदनी, जो अनुराधा होय।
ऊबड़ खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा होय।।
यदि भादो सुदी छठ को अनुराधा नक्षत्र पड़े तो ऊबड़-खाबड़ जमीन में भी उस दिन अन्न बो देने से बहुत पैदावार होती है।

अद्रा भद्रा कृत्तिका, अद्र रेख जु मघाहि।
चंदा ऊगै दूज को सुख से नरा अघाहि।।
यदि द्वितीया का चन्द्रमा आर्द्रा नक्षत्र, कृत्तिका, श्लेषा या मघा में अथवा भद्रा में उगे तो मनुष्य सुखी रहेंगे।

सोम सुक्र सुरगुरु दिवस, पौष अमावस होय।
घर घर बजे बधावनो, दुखी न दीखै कोय।।
यदि पूस की अमावस्या को सोमवार, शुक्रवार बृहस्पतिवार पड़े तो घर घर बधाई बजेगी-कोई दुखी न दिखाई पड़ेगा।

सावन पहिले पाख में, दसमी रोहिनी होय।
महंग नाज अरु स्वल्प जल, विरला विलसै कोय।
यदि श्रावण कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि को रोहिणी हो तो समझ लेना चाहिए अनाज महंगा होगा और वर्षा स्वल्प होगी, विरले ही लोग सुखी रहेंगे।

पूस मास दसमी अंधियारी।बदली घोर होय अधिकारी।
सावन बदि दसमी के दिवसे।भरे मेघ चारो दिसि बरसे।।
यदि पूस बदी दसमी को घनघोर घटा छायी हो तो सावन बदी दसमी को चारों दिशाओं में वर्षा होगी। कहीं कहीं इसे यों भी कहते हैं-'काहे पंडित पढ़ि पढ़ि भरो, पूस अमावस की सुधि करो।

पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी जाज।
मेघ होय तो जान लो, अब सुभ होइहै काज।।
यदि पूस सुदी सप्तमी, अष्टमी और नवमी को बदली और गर्जना हो तो सब काम सुफल होगा अर्थात् सुकाल होगा।

अखै तीज तिथि के दिना, गुरु होवे संजूत।
तो भाखैं यों भड्डरी, उपजै नाज बहूत।।
यदि वैशाख में अक्षम तृतीया को गुरुवार पड़े तो खूब अन्न पैदा होगा।

अकाल और सुकालः-

सावन सुक्ला सप्तमी, जो गरजै अधिरात।
बरसै तो झुरा परै, नाहीं समौ सुकाल।।
यदि सावन सुदी सप्तमी को आधी रात के समय बादल गरजे और पानी बरसे तो झुरा पड़ेगाय न बरसे तो समय अच्छा बीतेगा।

असुनी नलिया अन्त विनासै। गली रेवती जल को नासै।।
भरनी नासै तृनौ सहूतो। कृतिका बरसै अन्त बहूतो।।
यदि चौत मास में अश्विनी नक्षत्र बरसे तो वर्षा ऋतु के अन्त में झुरा पड़ेगाय रेवती नक्षत्र बरसे तो वर्षा नाममात्र की होगीय भरणी नक्षत्र बरसे तो घास भी सूख जाएगी और कृतिका नक्षत्र बरसे तो अच्छी वर्षा होगी।

आसाढ़ी पूनो दिना, गाज बीजु बरसंत।
नासे लच्छन काल का, आनंद मानो सत।।
आषाढ़ की पूर्णिमा को यदि बादल गरजे, बिजली चमके और पानी बरसे तो वह वर्ष बहुत सुखद बीतेगा।

वर्षा- रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय।
कहै घाघ सुने घाघिनी, स्वान भात नहीं खाय।।
यदि रोहिणी बरसे, मृगशिरा तपै और आर्द्रा में साधारण वर्षा हो जाए तो धान की पैदावार इतनी अच्छी होगी कि कुत्ते भी भात खाने से ऊब जाएंगे और नहीं खाएंगे।

उत्रा उत्तर दै गयी, हस्त गयो मुख मोरि।
भली विचारी चित्तरा, परजा लेइ बहोरि।।
उत्तर नक्षत्र ने जवाब दे दिया और हस्त भी मुंह मोड़कर चला गया। चित्रा नक्षत्र ही अच्छा है कि प्रजा को बसा लेता है। अर्थात् उत्तरा और हस्त में यदि पानी न बरसे और चित्रा में पानी बरस जाए तो उपज अच्छी होती है।

खनिके काटै घनै मोरावै। तव बरदा के दाम सुलावै।।
ऊंख की जड़ से खोदकर काटने और खूब निचोड़कर पेरने से ही लाभ होता है। तभी बैलों का दाम भी वसूल होता है।

हस्त बरस चित्रा मंडराय।घर बैठे किसान सुख पाए।।
हस्त में पानी बरसने और चित्रा में बादल मंडराने से (क्योंकि चित्रा की धूप बड़ी विषाक्त होती है) किसान घर बैठे सुख पाते हैं।

हथिया पोछि ढोलावै।घर बैठे गेहूं पावै।।
यदि इस नक्षत्र में थोड़ा पानी भी गिर जाता है तो गेहूं की पैदावार अच्छी होती है।

जब बरखा चित्रा में होय। सगरी खेती जावै खोय।।
चित्रा नक्षत्र की वर्षा प्रायरू सारी खेती नष्ट कर देती है।

जो बरसे पुनर्वसु स्वाती। चरखा चलै न बोलै तांती।
पुनर्वसु और स्वाती नक्षत्र की वर्षा से किसान सुखी रहते है कि उन्हें और तांत चलाकर जीवन निर्वाह करने की जरूरत नहीं पड़ती।

जो कहुं मग्घा बरसै जल।सब नाजों में होगा फल।।
मघा में पानी बरसने से सब अनाज अच्छी तरह फलते हैं।

जब बरसेगा उत्तरा। नाज न खावै कुत्तरा।।
यदि उत्तरा नक्षत्र बरसेगा तो अन्न इतना अधिक होगा कि उसे कुते भी नहीं खाएंगे।

दसै असाढ़ी कृष्ण की, मंगल रोहिनी होय।
सस्ता धान बिकाइ हैं, हाथ न छुइहै कोय।।
यदि असाढ़ कृष्ण पक्ष दशमी को मंगलवार और रोहिणी पड़े तो धान इतना सस्ता बिकेगा कि कोई हाथ से भी न छुएगा।

असाढ़ मास आठें अंधियारी। जो निकले बादर जल धारी।।
चन्दा निकले बादर फोड़।साढ़े तीन मास वर्षा का जोग।।
यदि असाढ़ बदी अष्टमी को अन्धकार छाया हुआ हो और चन्द्रमा बादलों को फोड़कर निकले तो बड़ी आनन्ददायिनी वर्षा होगी और पृथ्वी पर आनन्द की बाढ़-सी आ जाएगी।

असाढ़ मास पूनो दिवस, बादल घेरे चन्द्र।
तो भड्डरी जोसी कहैं, होवे परम अनन्द।।
यदि आसाढ़ी पूर्णिमा को चन्द्रमा बादलों से ढंका रहे तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं कि उस वर्ष आनन्द ही आनन्द रहेगा।

पैदावारः- रोहिनी जो बरसै नहीं, बरसे जेठा मूर।

एक बूंद स्वाती पड़ै, लागै तीनिउ नूर।।
यदि रोहिनी में वर्षा न हो पर ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र बरस जाए तथा स्वाती नक्षत्र में भी कुछ बूंदे पड़ जाएं तो तीनों अन्न (जौ, गेहूं, और चना) अच्छा होगा।

जेतः- गहिर न जोतै बोवै धान।सो घर कोठिला भरै किसान।।
गहरा न जोतकर धान बोने से उसकी पैदावार खूब होती है।

गेहूं भवा काहें। असाढ़ के दुइ बाहें।।
गेहूं भवा काहें। सोलह बाहें नौ गाहें।।
गेहूं भवा काहें। सोलह दायं बाहें।।
गेहूं भवा काहें। कातिक के चौबाहें।।

गेहूं पैदावार अच्छी कैसे होती है ? आषाढ़ महीने में दो बांह जोतने सेय कुल सोलह बांह करने से और नौ बार हेंगाने सेय कातिक में बोवाई करने से पहले चार बार जोतने से।

गेहूं बाहें।धान बिदाहें।।
गेहूं की पैदावार अधिक बार जोतने से और धान की पैदावार विदाहने (धान का बीज बोने के अगले दिन जोतवा देने से,यदि धान के पौधों की रोपाई की जाती है तो विदाहने का काम नहीं करते, यह काम तभी किया जाता है जब आप खेत में सीधे धान का बीज बोते हैं) से अच्छी होती है।

गेहूं मटर सरसी। औ जौ कुरसी।।
गेहूं और मटर बोआई सरस खेत में तथा जौ की बोआई कुरसौ में करने से पैदावार अच्छी होती है।

गेहूं गाहा, धान विदाहा। ऊख गोड़ाई से है आहा।।
जौ-गेहूं कई बांह करने से धान बिदाहने से और ऊख कई बार गोड़ने से इनकी पैदावार अच्छी होती है।

गेहूं बाहें, चना दलाये। धान गाहें, मक्का निराये। ऊख कसाये।
खूब बांह करने से गेहूं, खोंटने से चना, बार-बार पानी मिलने से धान, निराने से मक्का और पानी में छोड़कर बाद में बोने से उसकी फसल अच्छी होती है।

पुरुवा रोपे पूर किसान। आधा खखड़ी आधा धान।।
पूर्वा नक्षत्र में धान रोपने पर आधा धान और आधा पैया (छूछ) पैदा होता है।

पुरुवा में जिनि रोपो भैया। एक धान में सोलह पैया।।
पूर्वा नक्षत्र में धान न रोपो नहीं तो धान के एक पेड़ में सोलह पैया पैदा होगा।

बोवाईरू- कन्या धान मीनै जौ। जहां चाहै तहंवै लौ।।
कन्या की संक्रान्ति होने पर धान (कुमारी) और मीन की संक्रान्ति होने पर जौ की फसल काटनी चाहिए।

कुलिहर भदई बोओ यार। तब चिउरा की होय बहार।।
कुलिहर (पूस-माघ में जोते हुए) खेत में भादों में पकने वाला धान बोने से चिउड़े का आनन्द आता है-अर्थात् वह धान उपजता है।

आंक से कोदो, नीम जवा। गाड़र गेहूं बेर चना।।
यदि मदार खूब फूलता है तो कोदो की फसल अच्छी है। नीम के पेड़ में अधिक फूल-फल लगते है तो जौ की फसल, यदि गाड़र (एक घास जिसे खस भी कहते हैं) की वृद्धि होती है तो गेहूं बेर और चने की फसल अच्छी होती है।

आद्रा में जौ बोवै साठी। दुरूखै मारि निकारै लाठी।।
जो किसान आर्द्र में धान बोता है वह दुख को लाठी मारकर भगा देता है।

आद्रा बरसे पुनर्वसुजाय, दीन अन्न कोऊ न खाय।।
यदि आर्द्रा नक्षत्र में वर्षा हो और पुनर्वसु नक्षत्र में पानी न बरसे तो ऐसी फसल होगी कि कोई दिया हुआ अन्न भी नहीं खाएगा।

आस-पास रबी बीच में खरीफ। नोन-मिर्च डाल के, खा गया हरीफ।।
खरीफ की फसल के बीच में रबी की फसल अच्छी नहीं होती।
सावन मास बहे पुरवइया। बछवा बेच लेहु धेनु गइया।।
अर्थात् यदि सावन महीने में पुरवैया हवा बह रही हो तो अकाल पड़ने की संभावना है। किसानों को चाहिए कि वे अपने बैल बेच कर गाय खरीद लें, कुछ दही-मट्ठा तो मिलेगा।

शुक्रवार की बादरी, रही सनीचर छाय। तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे ना जाए।।
अर्थात् यदि शुक्रवार के बादल शनिवार को छाए रह जाएं, तो भड्डरी कहते हैं कि वह बादल बिना पानी बरसे नहीं जाएगा।

रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय। कहै घाघ सुन घाघिनी, स्वान भात नहीं खाय।।
अर्थात् यदि रोहिणी पूरा बरस जाए, मृगशिरा में तपन रहे और आर्द्रा में साधारण वर्षा हो जाए तो धान की पैदावार इतनी अच्छी होगी कि कुत्ते भी भात खाने से ऊब जाएंगे और नहीं खाएंगे।

उत्रा उत्तर दै गयी, हस्त गयो मुख मोरि। भली विचारी चित्तरा, परजा लेइ बहोरि।।
अर्थात् उत्तरा और हथिया नक्षत्र में यदि पानी न भी बरसे और चित्रा में पानी बरस जाए तो उपज ठीक ठाक ही होती है।

पुरुवा रोपे पूर किसान। आधा खखड़ी आधा धान।।
अर्थात् पूर्वा नक्षत्र में धान रोपने पर आधा धान और आधा खखड़ी (कटकर-पइया) पैदा होता है।

आद्रा में जौ बोवै साठी। दुरूखै मारि निकारै लाठी।।
अर्थात् जो किसान आर्द्र नक्षत्र में धान बोता है वह दुख को लाठी मारकर भगा देता है।दरअसल कृषक कवि घाघ ने अपने अनुभवों से जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे किसी भी मायने में आधुनिक मौसम विज्ञान की मान्यताओं से कम उपयोगी नहीं हैं।

आषाढ़ मास पूनो दिवस, बदल घेरे चन्द्र, तो भड्डरी जोषी कहें, होवे परम आनंद ।
अर्थात् यदि आषाढ़ मास की पूर्णिमा को चंद्रमा बादलों से ढाका रहे तो उस वर्ष अच्छी वर्षा होगी ।

" सावन मास बहे पुरवाई, बैल बेच खरीदो गाई "।
यानी, यदि सावन मास में पूर्व हवा बहे तो बारिश की संभावना कम है।

कुछ और कहावतें जो घाघ द्वारा कही गयी हैं

- दिन में गरमी रात में ओस , कहे घाघ बरखा सौ कोस !
- उत्तम खेती जो हर गहा, मध्यम खेती जो संग रहा।
- जो हल जोतै खेती वाकी, और नहीं तो जाकी ताकी।
- गोबर, मैला, नीम की खली, या से खेती दुनी फली।
- छोड़ै खाद जोत गहराई, फिर खेती का मजा दिखाई।
- कहै घाघ सुन घाघिनी, स्वान भात नहीं खाय।।
- पुरुवा रोपे पूर किसान , आधा खखड़ी आधा धान।
- पूस मास दसमी अंधियारी. बदली घोर होय अधिकारी।
- सावन बदि दसमी के दिवसे. भरे मेघ चारो दिसि बरसे।
- पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी जाज. मेघ होय तो जान लो, अब सुभ होइहै काज।
- सावन सुक्ला सप्तमी, जो गरजै अधिरात, बरसै तो झुरा परै, नाहीं समौ सुकाल।
- रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय, कहै घाघ सुने घाघिनी, स्वान भात नहीं खाय।
- भादों की छठ चांदनी, जो अनुराधा होय, ऊबड़ खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा होय।
- अंडा लै चीटी चढ़ै, चिड़िया नहावै धूर , कहै घाघ सुन भड्डरी वर्षा हो भरपूर ।
- दिन में बद्दर रात निबद्दर , बहे पूरवा झब्बर झब्बर
- कहै घाघ अनहोनी होहिं, कुआं खोद के धोबी धोहिं ।
- शुक्रवार की बादरी, रहे शनिचर छाय। २.कहा घाघ सुन घाघिनी, बिन बरसे ना जाय।।
- काला बादल जी डरवाये, भूरा बादल पानी लावे
- तीन सिंचाई तेरह गोड़,तब देखो गन्ने का पोर

१८. जैविक खेतीः भारत-पाक अंतरराष्ट्रीय सीमा पर आजीविका और पर्यावरण को बनाए रखने के लिए श्री स्वर्ण लाल और साथी किसानों का केस स्टडी

पुनीत चौधरी, राकेश शर्मा, प्रेम कुमार

बासमती की जैविक खेतीः एक बार नीति आयोग के सीईओ अमिताभ कांत ने कहा था कि भारत कृषि क्षेत्र में क्रांति के बिना ९-१० प्रतिशत जीडीपी विकास दर हासिल नहीं कर सकता है। कई किसान उनकी बातों से प्रेरित हुए और खेती में अपना करियर शुरू किया। भारत पाकिस्तान सीमा पर स्थित सुचेतगढ़ जम्मू के आरएस पुरा गांव के एएससीआई प्रमाणित वर्मीकम्पोस्ट उत्पादक श्री स्वर्ण लाल और उनके साथी किसान न तो नीति आयोग के बारे में जानते हैं और न ही इसके सीईओ के बारे में जानते हैं, लेकिन पैदाइशी किसान कृषि विज्ञान केंद्र, जम्मू (केवीके) की मदद से दुनिया में प्रसिद्ध और बेहतरीन गुण वाली इस क्षेत्र की बासमती चावल के उत्पादन से अपनी आजीविका पाने के लिए कड़ी मेहनत कर रहे हैं। । सुचेतगढ़ गांव का कुल क्षेत्रफल १५०० एकड़ है जिसमें से १००० की खेती की जाती है और ९०० एकड़ जैविक बासमती की खेती के अंतर्गत आता है। सुचेतगढ़ के वर्तमान परिवार में १८० परिवार शामिल हैं, सभी छोटे पैमाने के किसान (झ २ हेक्टेयर क्षेत्र) हैं और खेती में शामिल हैं। जैविक किसान अब मानते हैं कि जैविक खेती से होने वाली पैदावार उच्च गुणवत्ता की होती है और रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के उपयोग से प्राप्त होने वाली पैदावार से कहीं बेहतर होती है।

राज्य के कृषि उत्पादन विभाग द्वारा आयोजित 'कृषि जागरूकता यात्रा' के एक हिस्से के रूप में स्वर्ण लाल और साथी किसानों ने उत्तराखंड का दौरा किया । जैविक खेती के विचार ने वास्तव में उन्हें यात्रा के दौरान मोहित किया हालांकि, सबसे बड़ी चुनौती कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमि वाले हमारे छोटे किसानों के लिए इसे अनुकूल बनाना था। किसानों ने केवीके, विभाग से सारी जानकारी जुटाई और जैविक खेती को अपनाने का संकल्प लिया। वहां से उन्होंने उस यात्रा की शुरुआत की जिसने क्षेत्र के कई परिवारों के जीवन को बदल कर रख दिया।

कृषि विज्ञान केंद्र का हस्तक्षेपः जैविक खेती के महत्व और बेहतर कीमतों पर इसकी निर्यात क्षमता को ध्यान में रखते हुए, २०१२ में, कृषि विभाग, जम्मू ने केवीके जम्मू और एसकेयूएएसटी-जम्मू, एपीईडीए और अन्य हितधारकों जैसे सर्वेश्वर चावल मिलों के साथ, विभिन्न जैविक सेवा प्रदान करने वाली एजेंसियों से मिलकर सुचेतगढ़ में जैविक बासमती चावल का उत्पादन करने के लिए एक परियोजना शुरू की, जैविक बासमती की पहली फसल २०१६ में लगाई गई थी। इस परियोजना को सुचेतगढ़ कार्बनिक बासमती चावल क्लस्टर (एसओबीआरसी) नाम दिया गया था, और तीन गांवों (सुचेतगढ़, कोरोटाना खुर्द और बीदीपुर जट्टान) द्वारा शुरू किया गया था। अब परियोजना के अलावा एसओबीआरसी क्लस्टर ७६९ परिवारों को प्रोत्साहित करने में सफल रहा है, जो कि १५०० एकड़ में से ११०० एकड़ को कवर करते हुए जैविक खेती के अंतर्गत आता है।

ब्लहृक आरएस पुरा के इस कृषि विकास में स्वर्ण लाल और उनके साथी एसओबीआरसी क्लस्टर के मशाल वाहक के रूप में उभरे। प्रशिक्षण से पहले, मंदिर के लिए जैविक खेती में गाय के गोबर, कुक्कुट खाद, घर का बना नीम का अर्क और अन्य उत्पाद का उपयोग किया जाता था। २०१६ से परियोजना को सफल बनाने के लिए केवीके जम्मू ने प्रशिक्षण, फ्रंटलाइन प्रदर्शन, बायोफंगसाइड्स और बायोपेस्टीसाइड्स के विधि प्रदर्शन, वैराइटी अहृन का आयोजन किया। स्कास्ट -जम्मू द्वारा विकसित बासमती ३७० और इसके डेरिवेटिव के कृषि परीक्षणों में नीम के पौधे लगाए और वितरित किए गए। कृषि विज्ञान केंद्र जम्मू ने जैविक उर्वरकों, जैव इनोकुलेंट्स के उपयोग पर प्रशिक्षण प्रदान किया और बीज और मिट्टी के उपचार के लिए क्रहृप गार्ड (ट्राइकोडर्मा), राइजोबियम, नीम का तेल और अन्य जैविक सहायक भी प्रदान किए। किसानों को वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने के संबंध में पूर्ण प्रशिक्षण भी प्रदान किया गया और वर्तमान में अधिकांश किसानों के पास अपनी वर्मी कम्पोस्ट इकाई है।

कृषि विभाग केवीके जम्मू के तकनीकी परामर्श से किसान को रियायती लागत पर नवीनतम मशीनरी जैव उर्वरक, जैव कीटनाशकों और वर्मी खाद इकाई की स्थापना आदि सहित सभी प्रकार के लाभ प्रदान कर रहा है। एसओबीआरसी परियोजना के तहत केवीके के गहन प्रयासों का मुख्य उद्देश्य एफपीओ का गठन (केवीके जम्मू द्वारा नाबार्ड को प्रस्तुत), बासमती के जैविक उत्पाद का ब्रांड लोकप्रियकरण और उचित विपणन है। इसके अलावा, एसओबीआरसी क्लस्टर के १० समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थानीय संसाधन व्यक्तियों (स्वयंसेवक एलआरपी) की टीम का मार्गदर्शन करने और उन्हें सक्षम करने के लिए, इन-सर्विस प्रशिक्षण के माध्यम से जैविक खेती अनुसंधान केंद्र एसकेयूएएसटी-जम्मू के प्रदर्शन सत्र और विस्तार कार्यकर्ताओं के क्षमता निर्माण का भी आयोजन किया गया। सहभागी गारंटी प्रणाली (पीजीएस) के तहत जैविक

भारत मानकों के अनुसार बेहतर विपणन क्षमता और उच्च आर्थिक रिटर्न के लिए निर्यात के लिए जैविक साधनों के माध्यम से सही प्रकार के उच्च गुणवत्ता वाले सुगंधित बासमती चावल का उत्पादन करना मुख्य लक्ष्य है ।

उत्पादनः जैविक खेती से फसल उत्पादन में तुरंत वृद्धि नहीं हो सकती है, लेकिन यह निश्चित रूप से मिट्टी और जल स्तर के स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए स्थायी खेती को प्रोत्साहित करेगी। ढैंचा को हरी खाद की फसल के रूप में प्रयोग करने से नाइट्रोजन का स्तर २०ः तक कम हो जाता है। आरएस पुरा की मिट्टी में कार्बनिक कार्बन सामग्री (ओसीसी) जो ०.४५, ०.५०, ०.५२ के खतरनाक स्तर तक कम हो गई थी जो ०.६०, ०.८० और १.०० के स्तर पर पहुंच गई है।

अब कई सरकारी सेवा प्रदान करने वाली एजेंसियां, बायोफर्टिलाइजर और बायोपेस्टीसाइड निर्माण कंपनियां, स्कास्ट –जम्मू, सुधामहादेव वेजिटेबल प्रोड्यूसर कंपनी लिमिटेड, वाईएस संस एग्रोटेक लिमिटेड, एक्टेक इंफह्र्मेशन सिस्टम, अल्फा एनवायरमेंटल सिस्टम्स, इंटरनेशनल पैनेशिया लिमिटेड, कृभको और प्रतिष्ठा (एनपीके अह्र्गेनिक न्यूट्रिशनल एंड कम्प्लीट फर्टिलाइजर) और नीम इंडिया प्रोडक्ट्स प्रा. लिमिटेड ने हस्तक्षेप किया और अपने जैविक उत्पादों का प्रदर्शन किया और एस.ओ.बी.आर परियोजना का समर्थन किया। प्रारंभिक चरणों के दौरान विभिन्न जैविक हस्तक्षेप जैसे कि जैव कवकनाशी के साथ बीज और नर्सरी उपचार, रियायती दरों पर मिनी राइस शेलर, जैविक उर्वरक (वर्मीकम्पोस्ट), वर्मीवाश, वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने के लिए वर्मीबेड इत्यादि किसानों को दिये गए । वह अवधि जब क्षेत्र में संसाधन उत्पादन और उत्पादन चक्र काम करना शुरू करते हैं, उत्पादन में कमी आती है जिससे लागत अधिक और लाभ कम होता है । कार्बनिक कार्बन और मिट्टी के पारिस्थितिकी तंत्र में सुधार हुआ और शुद्ध लाभ में वृद्धि हुई। जिन किसानों को पीजीएस इंडिया अह्र्गेनिक सर्टिफिकेट मिला है, उन्होंने अह्र्गेनिक बासमती की उपज तथा बासमती चावल को पारंपरिक बासमती उत्पादक की तुलना में बहुत अच्छे दरों पर बेचा ।

एस.ओ.बी.आर क्लस्टर में के. वी. के. के हस्तक्षेप के आर्थिक परिणामः

	वर्ष	शुद्ध लाभ (रु.ध्हेक्टेयर)	सीःबी अनुपात
बासमती ३७०	२०१५	३०,६५०	१:१.८९
	२०१६	२१,९२०	१:१.४६
	२०१८	१,०८,०००	१:२.४०
	२०२०	१,३२,३००	१:३.१५

१६.

जैविक कृषि -जलवायु संरक्षण के लिए जरुरी

नरिंदर पनोत्रा, विकास शर्मा, रितिका गुप्ता, मीनाक्षी अत्री और ज्योति शर्मा

जैविक खेती कृषि की एक नई अवधारणा नहीं है जैविक कृषि एक समग्र उत्पादन प्रबंधन प्रणाली है जो जैव-विविधता, जैविक चक्र और मिट्टी की जैविक गतिविधि सहित कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है और बढ़ाती है। यह ध्यान में रखते हुए कि क्षेत्रीय परिस्थितियों के लिए स्थानीय रूप से अनुकूलित प्रणालियों की आवश्यकता होती है, यह गैर-कृषि वस्तुओं के उपयोग के बजाय प्रबंधन प्रथाओं के उपयोग पर जोर देता है। जैविक कृषि प्रणाली को इस तरह से विकसित किया गया है कि यह-

क) पूरी प्रणाली के भीतर जैविक विविधता को बढ़ाता है
बी) मिट्टी की जैविक गतिविधि में वृद्धि करता है
ग) लंबे समय तक मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखता है
डी) भूमि पर पोषक तत्वों को बढाने के लिए पौधों और जानवरों के मलमूत्र का पुनर्चक्रण इस प्रणाली में शामिल है
ई) स्थानीय रूप से उपलब्ध सतत संसाधनों पर निर्भर होता है
च) मिट्टी, पानी और हवा के स्वस्थ उपयोग को बढ़ावा साथ ही साथ कृषि पद्धतियों के परिणामस्वरूप होने वाले प्रदूषण के सभी रूपों को कम करता है (कोडेक्स एलिमेंटेरियस १९९९)
छ) लंबे समय तक मिट्टी की उर्वरता बनाए रखता है और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करता है।
ज) बहुत अधिक विविधता के कारण जलवायु परिवर्तन के लिए अत्यधिक अनुकूल है
जैविक कृषि न केवल एक विशिष्ट कृषि उत्पादन प्रणाली है बल्कि यह स्थायी आजीविका के लिए एक व्यवस्थित और समावेशी दृष्टिकोण भी है। जैविक कृषि की एक लंबी परंपरा है और इसे कई जलवायु क्षेत्रों और स्थानीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलित किया गया हैय परिणामस्वरूप, जैविक कृषि पर विस्तृत स्थिति-विशिष्ट जानकारी उपलब्ध है।

जैविक कृषि - जलवायु संरक्षण के लिए एक रणनीति

जैविक कृषि इस मायने में अदितीय है कि यह अधिकांश तत्वों को कृषि प्रणाली में व्यवस्थित रूप से एकीकृत करती है। यह जलवायु संरक्षण पर बेहतर प्रभाव डालता है जिसमे अनिवार्य मानक शामिल हैं। इसमें निरीक्षण और प्रमाणन भी शामिल है जो जैविक सिद्धांतों और मानकों के अनुपालन की गारंटी देता है। इन सबके फलस्वरूप, जैविक कृषि ग्रीन हाउस गैसेस की रिलीज को कम करने, मिट्टी और बायोमास में कार्बन को अलग करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। दूसरा, इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि जैविक कृषि मुख्यधारा की कृषि से बेहतर है। यह मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि, लगातार खाद्य सुरक्षा, जैव विविधता संरक्षण और कई अन्य वजहों से प्राप्त होता है। यह और भी अच्छा है क्योंकि यह कृषि में अधिक उत्पादन के साथ साथ जलवायु परिवर्तन को रोकने में भी सहयोग करती है। एकल प्रौद्योगिकी के विपरीत, जैविक कृषि एकीकृत प्रौद्योगिकियों का व्यवस्थित दृष्टिकोण का अनुसरण करती है । जैविक कृषि में आवश्यक निरीक्षण और प्रमाणन प्रणालियों के कारण, पारंपरिक कृषि पद्धतियों की तुलना में कार्बन पृथक्करण की निगरानी और मूल्यांकन करना सरल, सस्ता और प्रभावी है। नीति निर्माताओं को ग्रीन हाउस गैसेस में कमी करने के लिए जैविक खेती की क्षमता को पहचानना चाहिए और इस क्षमता का उपयोग करने के लिए उपयुक्त कार्यक्रम विकसित करना चाहिए। यह विकसित देशों में भी उतना ही जरुरी है जितना कि विकासशील देशों में।

जैविक कृषि की कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन को कम करने की क्षमता

जैविक कृषि कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन को काफी कम कर सकती है। वर्तमान खेती के विकल्प के रूप में, यह स्थायी उत्पादकता के साथ साथ स्थायी फसल प्रणाली प्रदान करती है। गहन कृषि प्रणालियों के लिए, यह पारंपरिक कृषि की तुलना में काफी कम जीवाश्म ईंधन का उपयोग करती है। यह मुख्य रूप से निम्नलिखित चीजों के कारण है,

१. मृदा उर्वरता मुख्य रूप से कृषि के आंतरिक आदानों (जैविक खाद, फलियां उत्पादन, विस्तृत फसल चक्र आदि) के माध्यम से बनाए रखा जाता है।

२. ऊर्जा की मांग करने वाले अकार्बनिक उर्वरकों और रसायनों का इस्तेमाल नहीं किया जाता है, और बाहरी पशु आहार जोकि अक्सर दूसरे स्थानों से मंगाया जाता है उसका बहुत कम इस्तेमाल करते है जिससे इंधन की बचत होती है तथा प्रदूषण में भी कमी होती है। जिससे एक अधिक अनुकूल ऊर्जा संतुलन होता है।
३. जैविक कृषि का मीथेन से बचाने में एक महत्वपूर्ण प्रभाव है। इस प्रणाली से मिट्टी में एरोबिक सूक्ष्मजीवों और उच्च जैविक गतिविधि को बढ़ावा देकर मीथेन के आक्सीकरण को बढ़ाया जा सकता है। दूसरे, जुगाली करने वाले आहार में परिवर्तन से मीथेन का उत्पादन काफी कम हो सकता है। हालांकि, धान के खेतों में मीथेन की कमी पर अनुसंधान अभी भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है।
४. नाइट्रस आक्साइड मुख्य रूप से नाइट्रोजन की अधिकता के कारण होते हैं। इन्हें जैविक कृषि में प्रभावी रूप से कम किया जाता है।
५. कोई अकार्बनिक नाइट्रोजन उर्वरक का उपयोग नहीं किया जाता है, जो स्पष्ट रूप से कुल नाइट्रोजन की मात्रा को सीमित करता है और उर्वरक संश्लेषण के लिए ऊर्जा की मांग के दौरान होने वाले उत्सर्जन को कम करता है।
६. पशु आहार, प्रोटीन में कम और फाइबर में अधिक होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उत्सर्जन मूल्य कम होता है।
७. जीवाश्म ईंधन के विकल्प के रूप में बायोमास का उपयोग करना उत्सर्जन में कमी के लिए एक अन्य विकल्प प्रदान करता है। इस क्षेत्र में जैविक कृषि अच्छी स्थिति में क्योंकि यह अकार्बनिक उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं करता है जो नाइट्रस अह्क्साइड के महत्वपूर्ण उत्सर्जन का कारण होते हैं और बहुत अधिक ऊर्जा का उपयोग करते है।

चुनौतियां

इसकी जटिलता के कारण जैविक कृषि रामबाण नहीं है। जैविक खेती के लिए गहन ज्ञान चाहिए और भूमि को इसमें परिवर्तित करने के लिए संगठित और उच्च गुणवत्ता वाले प्रशिक्षण के साथ-साथ सूचना और सलाहकार सेवाएं बहुत जरुरी हैं। विकासशील देशों में बाजार संरचना जैविक किसानों के लिए जोखिम प्रस्तुत करती है। वर्तमान में, कुछ क्षेत्र दृढ़ता से निर्यात उन्मुख हैं। इसमें मुख्य रूप से नकदी फसलें शामिल हैं इसलिए इनका मूल्य उच्च कृषि अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिसके परिणामस्वरूप उत्पाद के निर्यात के लिए बाजारों पर खतरनाक निर्भरता हो सकती है और स्थानीय बाजारों में विविधीकरण की आवश्यकता है। कुछ क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव इतने विनाशकारी हो सकते हैं कि कृषि को पूरी तरह से छोड़ना पड़ सकता है। दो दशकों की अवधि के बाद जलवायु परिवर्तन के स्थानीय प्रभावों का पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन है। दीर्घकालिक परिवर्तनों की तैयारी के लिए अभी समय निकालना चाहिए।

निष्कर्ष

- जैविक कृषि में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने की काफी संभावनाएं हैं।
- जैविक कृषि तकनीकें मिट्टी में कार्बन डाइआक्साइड के पृथक्करण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।
- जैविक कृषि स्पष्ट रूप से रामबाण नहीं है और कई महत्वपूर्ण मुद्दों का समाधान किया जाना बाकी है। आरंभ करने के लिए अधिक शोध की आवश्यकता है।
- पारंपरिक कृषि की तुलना में कम पैदावार के लिए अक्सर जैविक कृषि की आलोचना की जाती है। हाल के शोध इस पूर्वाग्रह को अमान्य करते हैं, विशेष रूप से व्यापक कृषि प्रणालियों के संदर्भ में, जो विकासशील देशों में अधिकांशतः कृषि उत्पादन की विशेषता है।
- जलवायु परिवर्तन और परिवर्तनशीलता के लिए खेत में प्रजनन की स्व-अनुकूली क्षमता की विस्तार से जांच करने की आवश्यकता है। जैविक कृषि में प्रति इकाई उत्पाद उत्सर्जन पर भी अधिक शोध आवश्यक है।
- वर्तमान स्थिति में, जैविक कृषि के लिए उत्पादों, स्थानीय प्रसंस्करण संभावनाओं और निर्यात के बुनियादी ढांचे के लिए (स्थानीय) बाजारों तक पहुंच और विकास का विशेष महत्व है।
- स्पष्ट रूप से, यह ज्ञान विशिष्ट जलवायु परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है और बिना सावधानी और संशोधन के अन्य क्षेत्रों में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। सफल होने के लिए उन निकायों के बीच जैविक कृषि की क्षमता की व्यापक मान्यता की आवश्यकता है जो वर्तमान में मुख्य रूप से पारंपरिक कृषि को बढ़ावा देते हैं।

२०.

वैदिक कृषि का स्वरूप

सुधाकर द्विवेदी और प्रदीप राय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है जैसे भोजन, वस्त्र, आवास आदि यह प्रमुख है। यह भी निश्चित है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य को कुछ उद्यम करना होता है। तभी वह सुचारू रूप से अपना जीवन यापन कर सकता है। समाज में अनेक व्यवसाय शिल्प, व्यापार, कृषि, पशुपालन आदि को प्रमुखता दी जाती है।मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज में रहता है। समाज में रहते हुए उसे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है जैसे भोजन, वस्त्र, आवास आदि यह प्रमुख है। यह भी निश्चित है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य को कुछ उद्यम करना होता है। तभी वह सुचारू रूप से अपना जीवन यापन कर सकता है। समाज में अनेक व्यवसाय शिल्प, व्यापार, कृषि, पशुपालन आदि को प्रमुखता दी जाती है। समाज के अन्तर्गत आने वाले इन व्यवसायों में कृषि का विशेष महत्व है। जो भोजन का मुख्य आधार भी है। ऋग्वेद में ऋषि जुंए में पराजित द्यूतकर को निर्देश देता है कि इस निन्दनीय कार्य को छोड़कर वह कृषि करें। **अक्षैर्मादिव्यः कृषिमित् कृषस्व**। ऋग्वैदिक काल में अश्विन ने सर्वप्रथम कार्यों को हल (वृक) द्वारा बीज बोना सिखाया। इस आधार पर कहा जा सकता है कि अश्विन् देव का कृषि कला से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वैदिक कालीन मनुष्यों का ऐसा विश्वास था कि कृषि का प्रारम्भ सर्वप्रथम पृथ्वी या पृथु वैन्य ने किया था। अथर्ववेद में भी पृथ्वी वैन्य नामक राजा को हल से भूमि जोतने की विद्या का आविष्कारक माना जाता है। वेन पुत्र पृथ्वी का वर्णन पुराणों में भी प्राप्त होता है। इसी कारण भूमि का नाम पृथ्वी के नाम पर पृथ्वी रखा गया। वैदिक काल में खेतों पर स्वामित्व किसी जाति विशेष का नहीं था अपितु एक परिवार के व्यक्ति का होता था।

वैदिक काल में जो कृषि का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। उसी परम्परा का पालन आज भी किया जा रहा है। भूमि को जोतकर बीज बोने योग्य तैयार किया जाता था। बीज बोने की क्रिया को वपन कहा जाता है। **भूमिरावपतं महत**। बुबाई के समय बीज के साथ खाद भी डाली जाती थी वह गोबर की होती थी जो पशुओं से ही प्राप्त होती थी। गोबर को प्राकृतिक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था जिसे करीष कहते थे। **सजग्माना अबिभ्युषीरसिमन् गोष्ठेन करीषिणीः**। वैदिक युग में भूमि की जुताई के लिए हल ही एक मात्र साधन था। अथर्ववेद में छः बैल वाले हल, आठ बैल वाले हल अथवा बारह बैलों वाले हल का उल्लेख मिलता है। **इयं यवमष्टायोगैः षडयोगेभिरचरर्कृषुः**। इसके अतिरिक्त वेद में हल को सीर, सील, लांगन इन तीन नामों से भी जाना जाता था। पकड़ने वाली मूंठ को वेद में 'त्सरु' कहा गया है।**लांगलम् पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु**। किसान या कृषक के लिए वेदों में कीनाश और सीरपति आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वैदिक शब्द 'कीनाश' को ही रुपान्तरित करके आज प्रचलित भाषा में किसान शब्द प्रयुक्त किया जा रहा है। **शुनं सुफाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः**। हल का सुन्दर फाल भूमि की जुताई करने में सहायक होता था। इस फाल के लिए ऋग्वेद में 'स्तेग' शब्द का प्रयोग हुआ है जो भूमि में प्रविष्ट होकर खुदाई करता है। **स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वी**। हल द्वारा जुती हुई भूमि में जो रेखाएं बनती है इस रेखा को 'सीता' कहा जाता था। इस प्रकार का उल्लेख वेद में मिलता है। **इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूशाभिरक्षतु**। इन्द्र हल की रेखा को पकड़े जुते हुए खेत को वृष्टि द्वारा संसिक्त करें पूषा (सूर्य) उसकी रक्षा करे वह हल की रेखा रसयुक्त होकर हमें आगे आने वाले समय में अन्न रस प्रदान करें।

कृषि के कर्षण का कोई विशेष नियम नहीं है परन्तु भूमि को मृदु एवं बोने योग्य बनाने के लिए अनेक बार कर्षण (जोतना) आवश्यक है। कर्षण कार्य से तैयार की गयी भूमि में बीज बोने की प्रक्रिया को वपन कहा जाता था। कृषि कार्य के लिए उचित भूमि का होना आवश्यक है। वैदिक ऋषि ने कर्षण के पश्चात् खेतों में बीज बोने का उपदेश दिया - **युनक्त सीरा वि युगातनोत कृतेयौनौ वपतेह बीजम्** । यजुर्वेद में कर्षण क्रिया के द्वारा उत्पन्न अन्न के लिये 'कृष्टपच्या' शब्द का प्रयोग हुआ है तथा बिना कर्षण के द्वारा उत्पन्न अन्न के लिए 'अकृष्टपच्या' शब्दों का उल्लेख मिलता है- **कृष्टपच्या मे अकृष्टपच्याश्च में यज्ञेन कल्पन्ताम्** । बपन (बोने) के पश्चात् भूमि को सींचा जाता था। अथर्ववेद में घृत और शहद से भूमि को सींचने का वर्णन मिलता है-**सा नः सीते प्यसाभ्याववृत्सवोर्जस्वती घृतवत पिन्वतमाना** । अर्थात् घी और शहद के द्वारा योग्य रीति से सिंचित भूमि सब देवों, मरूतों द्वारा अनुमोदित हुई है। ऐसी जुती भूमि घी से सिंचित हमें उत्तम रस युक्त फल से पूर्ण कर दें। उक्त विचार भले ही काल्पनिक प्रतीत होते हों लेकिन वैदिक सन्दर्भों के आधार पर इनकी सत्यता वर्तमान समय में भी सार्थक सिद्ध होती है। भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए आधुनिक काल की भांति वैदिक काल में भी कृषि के लिए खाद की आवश्यकता होती थी, किन्तु यह खाद रसायनयुक्त नहीं थी बल्कि प्रकृतिक होती थी। वैदिक काल में पशुओं को अधिक पाला जाता था और पशुओं के गो-मूत्र को

भूमि उर्वर बनाने के लिए खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। वैदिक युग में गोबर की खाद को श्रेष्ठ माना जाता है किन्तु गोबर की खाद से भी अधिक श्रेष्ठ यज्ञ की खाद थी। यह खाद यज्ञ से बनती थी। कृषि की उत्पत्ति में सहायक वनस्पति एवं अन्न आदि की तथा घी, शहद की यज्ञों में जब आहुति दी जाती थी तो सूक्ष्म तत्व शक्तिशाली होकर वायु में संचरित हो जाते थे तथा वृक्षादि सभी को प्राप्त हो जाती थी। वर्तमान समय की भांति वैदिक काल में भी कृषि कार्य करने के लिए अनेक प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता होती थी। वैदिक काल में कृषि उपकरणों का एक विशेष नाम हुआ करता था। कानीश- हल चलाने अथवा खेती करने वाले को कीनाश या सीरपति कहा जाता था ऐसा उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।**इन्द्र आसीत सीरपतिः शतक्रता कीनाशः**। अर्थात् इन्द्र न उत्तम भूमि पर बार-बार हल चलाया तथा यव, धान्य बोये इन्द्र हल का स्वामी था। फाल- हल के अग्र भाग को फाल कहा जाता था। इतना ज्ञान नहीं है कि फाल धातु से बना होता था या अन्य किसी वस्तु से। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि यह खदिर (खैरा) की लकड़ी से बना होता था और शरीर की अस्थियों से इसकी तुलना की गई है-**अस्थिश्य एवास्य खदिरः समभवत**। अथर्ववेद में उल्लेख है कि सुन्दर फाल भूमि को सफलतापूर्वक खोदें, किसान सुगमता से बैलों के पीछे चलें जिससे हमें अधिक अन्न प्राप्त हो।**शुन सुफाला वि तदन्तु भूमिं**। हल में पकड़ने के लिए लकड़ी की मूठ लगाई जाती थी। यह मूंठ (त्सरू) चिकनी होती थी जिसे पकड़ने में सुख मिलता था। ऐसा वर्णन अथर्ववेद में मिलता है।**लांगलम पवीर वत्सुशीमं सोमसत्सरू**। उक्त सन्दर्भों के आधार पर स्पष्ट है कि अथर्व वैदिक काल में हल खदिर की लकड़ी का बना होता था। वर्तमान समय में भी कुछ स्थानों पर खदिर की लकड़ी का हल बानाया जाता है।

अष्ट्रा- इसका उपयोग बैलों को हॉकने के लिए किया जाता था। अथर्ववेद में इसका उल्लेख एक स्थान पर मिलता है-**शुनं वरत्र बहयन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय**। स्रणि- पके हुए अन्न को सृणि अर्थात् हंसिया द्वारा काटने का वर्णन अथर्ववेद में किया गया है-**उत्सृण्यः पक्वमायवन**। जब फसल पक्कर तैयार होती थी तब कृषि यन्त्रों की सहायता से कृषक अत्यन्त उत्साह से फसल की कटाई करते थे। शतपथ ब्राहमण में सस्य (फसल) काटने की क्रिया को 'लुनन्तः' शब्द से व्यक्त किया गया है। फसल पकने पर कृषक प्रसन्नता से कहता था कि मैं उस दयावान ईश्वर को जानता हूँ जिसने बहुत अधिक अन्न उत्पन्न किया है जो देव अन्न को एकत्रित करने वाला था। ऐसा उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।**वेदाहं प्यस्वन्तं चकार धान्यं बहु।संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे**।। कृषक प्रसन्नतापूर्वक पकी हुई फसल को हजारों हाथों से सावधानीपूर्वक काटते थे और एक स्थान पर एकत्रित करते थे और हजारों हाथों वाला बनाकर उसका दान भी करते थे। **शतहस्त समाहर सहक्रहस्तं सं किर।कुतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समावहे**।। पकी हुई फसल को हसिया से काटकर उन्हे गट्टरों में बाँधकर खलिहान या घर पर लाया जाता था। खलिहान में पड़े सूखे जौ, धान्य, आदि फसलों को साफ करके घर पर लाते थे। उक्त प्रक्रिया के आधार पर कृषि कार्य करने से वैदिक समाज समृद्ध होता था।

२१. जम्मू और कश्मीर में बागवानी की स्थिति-एक आर्थिक परिप्रेक्ष्य

अमित जसरोटिया, आरती शर्मा, राकेश शर्मा, अनिल भट्ट और दीप जी भट्ट

राष्ट्रीय परिदृश्य में बागवानी (फलों सहित फल, आलू सहित सब्जियां, कंद फसलें, मशरूम, कटे हुए फूल, मसाले, रोपण फसलें और औषधीय और सुगंधित पौधों सहित सजावटी पौधे) देश के कई राज्यों में आर्थिक विकास के लिए एक प्रमुख चालक बन गए हैं और यह कृषि के सकल घरेलू उत्पाद में ३०.४ प्रतिशत का योगदान देता है।

- विश्व स्तर पर, भारत फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है।
- भारत आम, केला, नारियल, काजू, पपीता, अनार आदि का सबसे बड़ा उत्पादक है।
- भारत मसालों का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है
- अंगूर, केला, कसावा, मटर, पपीता आदि की उत्पादकता में भारत का प्रथम स्थान है।
- ताजे फल और सब्जियों का निर्यात वृद्धि मूल्य के संदर्भ में १४ प्रतिशत योगदान है और प्रसंस्कृत फलों और सब्जियों का १६. २७ प्रतिशत है।
- कृषि में बागवानी उत्पादन का हिस्सा ३३.३ प्रतिशत है, जिसमें से २५.९ प्रतिशत फलों और सब्जियों का योगदान है, ३.५ प्रतिशत मसालों और मसालों द्वारा और १.६ प्रतिशत फूलों की खेती द्वारा दिया जाता है।

तालिका १ - बागवानी फसलों का मूल्य उत्पादन (२०१५-१६)

फल का प्रकार	मूल्य आउटपुट (रुपये ०० करोड़)	कृषि में बागवानी मूल्य उत्पादन का प्रतिशत हिस्सा
सभी कृषि फसलें	12031	-
सभी फल और सब्जियां	3121	25.9
मसाले	425	3.5
फूलों की खेती	194	1.6
Plantation Crops		-
i. सुपारी	89	-
ii. काजू	48	-
iii. नारियल	128	-
iv. कोको	1.5	-
Total Plantation (i+ii+iii+iv)	266	2.21
कुल बागवानी	4006	33.3

जम्मू और कश्मीर में बागवानी की स्थिति

जम्मू और कश्मीर मूल रूप से एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। प्रदेश की कृषि जलवायु परिस्थितियां, उपजाऊ मिट्टी, उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु फलों और सब्जियों की खेती के लिए अनुकूल हैं और बागवानी के विकास के लिए काफी संभावनाएं प्रदान करते हैं। इन संभावनाओं को देखते हुए, फल उगाना एक प्रमुख उद्योग बन गया है और राज्य के निर्यात में बड़े पैमाने पर योगदान देता है। यह विभिन्न प्रक्रियाओं में लोगों के एक बड़े हिस्से को अवशोषित करता है राज्य के घरेलू उत्पाद में बागवानी काबड़ा हिस्सा है। और बागवानी फसलों के महत्व को देखते हुए राज्य सरकार बागवानी फसलों यानी फलों की खेती, सब्जियों की खेती, फूलों की खेती, मसालों और औषधियों की खेती, आदि के विकास पर काफी जोर दे रही है. राज्य में उगाए जाने वाले प्रमुख फलों में सेब, आम, अखरोट, बादाम, नाशपाती, चेरी, खुबानी, आड़ू, बेर आदि हैं। कश्मीरी सेब स्वाद और रंगरूप दोनों में प्रसिद्ध है। और निर्यात का अच्छा स्रोत है और सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जी. एस.डी.पी.) बहुत अच्छा स्रोत है। जम्मू कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश में उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियां प्याज, आलू, टमाटर, शलजम, मटर, मूली, गाजर, हरी सब्जियां आदि और मसाले जैसे मिर्च, लहसुन, हल्दी आदि हैं।

बागवानी जम्मू और कश्मीर की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है, जो ७ लाख से अधिक परिवारों सहित ३५ लाख से अधिक लोगों को आजीविका प्रदान करती है। राज्य ताजे और सूखे मेवों से ७५०० करोड़ रुपये से अधिक आय उत्पन्न करता है। बागवानी कृषि के एक अनिवार्य हिस्से केरूप में उभरा है, जो बड़ी संख्या में कृषि आधारित उद्योगों को बनाए रखने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है जो रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा करते हैं और किसानों को आजीविका सुरक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जम्मू और कश्मीर राज्य को एक विविध कृषि जलवायु का आशीर्वाद प्राप्त है, जो कि सेब, अखरोट, बादाम, आम, लीची, चेरी, खुबानी, बेर, कीवी, जैतून, निम्बू प्रजाति आदि सभी प्रकार फलों के उत्पादन के लिए अनुकूल है।

फलों की खेती के तहत वर्ष १९६०-६१ में जो क्षेत्र ०.१६ लाख हेक्टेयर था, वह वर्ष २०१६-१७ में बढ़कर ३.३८ लाख हेक्टेयर हो गया और इस अवधि के दौरान वर्ष १९६०-६१ में ०.३० लाख मीट्रिक टन से वर्ष २०१६-१७ में २२.३५ लाख मीट्रिक टन का उत्पादन हुआ । केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर में सबसे बड़ा उत्पादन क्रमशः सेब का(८६.५५प्रतिशत)नाशपाती (३.३०प्रतिशत) और चेरी (०. ५६प्रतिशत) और निम्बू प्रजाति (१.५१प्रतिशत) में होता है। सूखे मेवों की श्रेणी में, अखरोट का उत्पादन कश्मीर क्षेत्र (६३.४१प्रतिशत) में सबसे अधिक मात्रा में होताहै, इस के बाद जम्मू क्षेत्र (३२.७९प्रतिशत) का स्थान आता है। कश्मीर घाटी में ताजे फलों का अधिकतम क्षेत्र और उत्पादन जिला बारामूला से किया जा रहा है, इस के बाद शोपियां, कुलगाम, कुपवाड़ा, अनंतनाग, पुलवामा, बडगाम, गांदरबल, बांदीपोरा और श्रीनगर का स्थान है। जम्मू क्षेत्र में, कठुआ भूमिक्षेत्र और ताजे फलों के उत्पादन में शीर्ष जिला है, इसके बाद जम्मू, राजौरी, पुंछ, डोडा, उधमपुर, सांबा, रियासी, रामबन और किश्तवाड़ हैं। जम्मू-कश्मीर ने २०१७-१८ में भारत में कुल बागवानी उत्पादन में लगभग २. ४९प्रतिशत का योगदान दिया जो २०१६-२०१७ की तुलना में ०.३८प्रतिशत अधिक है। २०१७-१८ के दौरान जम्मू-कश्मीर में कुल फलों का उत्पादन २४२९८२२टन था जिसमें २१४११८२टन ताजे फल और २८८६४०टन सूखे मेवे शामिल थे (बागवानी निदेशालय, कश्मीर). केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर को सेब और अखरोट के लिए कृषि निर्यात क्षेत्र घोषित किया गया है। राज्य से सकल घरेलू उत्पाद में बागवानी का महत्वपूर्ण योगदान है। २०१५-१६ के दौरान २४.९४ लाख मीट्रिक टन फलों का उत्पादनके उत्पादन से लगभग ६०००.०० करोड़ रूपए का कारोबार हुआ।

तालिका २ रू जम्मू और कश्मीर में २०१५-१६ के दौरान फलों की फसलों का उत्पादन मूल्य (लाख रुपये में).

फल	जम्मू और कश्मीर	राष्ट्रीय	फलों का राष्ट्रीय मूल्यउत्पादन में प्रतिशत योगदान
आम	6961	5839157	0.12
अंगूर	73	584781	0.01
सेब	371069	694073	53.5
नींबू	6822	765208	0.9
लीची	631	280232	0.23
चेरी	6782	7042	96.3
बादाम	4875	5991	81.4
अमरूद	1996	741226	0.27
नाशपाती	14414	77384	18.6
अखरोट	283128	299875	94.4

सेब, अखरोट, नाशपाती, आम, नींबू, चेरी और बादाम क्रमशः ३७१०६९, २८३१२८, १४४१४, ६९६१, ६८२२, ६७८२, और ४८७५ लाख रुपये के मूल्य उत्पादन के साथ जम्मू और कश्मीर के केंद्र शासित प्रदेश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।संबंधित फसलों के राष्ट्रीय उत्पादन में चेरी (९६.३प्रतिशत) का योगदान सबसे अधिक है, इसके बाद अखरोट (९४.४प्रतिशत), बादाम (८१. ४प्रतिशत), सेब (५३.५प्रतिशत) और नाशपाती (१८.६प्रतिशत) का है।

जम्मू और कश्मीर से फलों का निर्यात और सकल राज्य घरेलू उत्पाद में बागवानी का योगदान

बागवानी फसलों के तहत वर्ष २०१७-१८ में ३.३३ लाख हेक्टेयर क्षेत्र दर्ज किया गया था जिसमें ७२.१४ प्रतिशत क्षेत्र ताजे फलों के अंतर्गत था। इस वर्ष के दौरान फलों का उत्पादन २३.५६ लाख मीट्रिक टन था जिसमें २०.७४ लाख मीट्रिक टन ताजे फल और २.८१ मत सूखे

मेवे शामिल हैं। बागवानी निदेशालय (योजना और विपणन) के अनुसार वर्ष २०१७-१८ के लिए राज्य के बाहर फलों का निर्यात १९.७८ लाख मीट्रिक टन रहा और उसी वर्ष के दौरान फल और सब्जी का आयात ६.०२ लाख मीट्रिक टन दर्ज किया गया। २०१७-१८ के दौरान, जम्मू और कश्मीर से १९५५७६९.९१ मीट्रिक टन ताजे फल और २२४१४.१९ मीट्रिक टन सूखे मेवों का निर्यात किया गया था (बागवानी निदेशालय (पी एंड एम), जम्मू और कश्मीर)। अखरोट जम्मू-कश्मीर के लिए प्रमुख विदेशी मुद्रा अर्जक (१२७.२१ करोड़ रुपये) के रूप में उभरा है, जिसमें से ४७२ मीट्रिक टन गोले के रूप में निर्यात किया गया तथा ३१२५ मीट्रिक टन कर्नेल के रूप में निर्यात किया गया (२०१७-१८)। जम्मू-कश्मीर से ८९७.९४ मीट्रिक टन बादाम के निर्यात से भी विदेशी मुद्रा के रूप में ३०.८४ करोड़ की कमाई हुई (२०१७-१८)। सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जी.एस.डी.पी.) में कृषि (फसल, पशुधन, वन और लहगिंग, मत्स्य पालन और जलीय कृषि सहित) का हिस्सा १९.१८: है। ११५५०८३ लाख रुपये के योगदान के साथ सकल राज्य घरेलू उत्पाद में कृषि फसलों का १०.८०: हिस्सा है। कृषि और संबद्ध क्षेत्रों से जी.एस.डी.पी में फलों का योगदान ३२.८४ प्रतिशत है।

२२. वैदिक कृषिः कृषि विज्ञान और वैदिक विज्ञान से कृषि उत्पादकता और पर्यावरण संरक्षण में स्माव्यतता

दिक्षा, शौर्या शर्मा और सुधाकर द्विवेदी

परिचय

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति और स्वतंत्रता के बाद से दुनिया और भारत को खाद्य सुरक्षा के लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसमें कुपोषण और अधिक खपत, खाद्य कीमतों में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि, तेजी से आहार परिवर्तन, कृषि उत्पादन के लिए विभिन्न खतरे, खाद्य प्रणाली अनुसंधान के निवेश में गिरावट। और अक्षम उत्पादन प्रथाओं एवं आपूर्ति श्रृंखला में यह सब कमियाँ शामिल हैं। हरित क्रांति ने वास्तव में वैश्विक स्तर पर कृषि उत्पादन में वृद्धि की है, लेकिन इसने पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को प्रभावित किया है । भूमि को साफ करने और उर्वरकों और जैविक अवशेषों के अक्षम उपयोग सहित वर्तमान कृषि पद्धतियों ने जल संसाधन, भोजन की गुणवत्ता और मिट्टी के क्षरण के साथ-साथ पारिस्थितिक आधार को भी कमजोर कर दिया है साथ ही कृषि ने ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस मोड़ पर, आधुनिक रासायनिक कृषि की बीमारियों को ठीक करने के उपाय के रूप में ''जैविक खेती'' को अपनाने पर एक गहरी जागरूकता पैदा हुई है और वैदिक खेती पारंपरिक कृषि का एक अच्छा विकल्प बन सकती है।

वैदिक काल - वैदिक युग (लगभग १५०० - ५०० ईसा पूर्व), शहरी सिंधु घाटी सभ्यता के अंत और एक दूसरे शहरीकरण के बीच उत्तरी भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में वो अवधि है जो केंद्रीय इंडोगंगेटिक मैदान में ६०० ईसा पूर्व सी में शुरू हुआ। । इसका नाम वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) से मिलता है। कृषि का व्यापक उल्लेख कृषि पराशर, मनुस्मृति, कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र, वराहमिहिर की बृहत-संहिता, प्रारंभिक तमिलों के संगम साहित्य, अमरकोश, सुरपाल के वृक्षायुर्वेद, और कश्यपीय कृषिसूक्ति जैसे कई वैदिक ग्रंथों में मिलता है। ये ग्रंथ कृषि, बागवानी, वृक्षारोपण और पौधों की जैव विविधता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

वैदिक कृषि की परिभाषा और अवधारणा - वैदिक कृषि वैदिक चेतना का आनंद लेने वाले किसानों द्वारा उगाए गए सभी जहरीले उर्वरकों, कीटनाशकों और जड़ी-बूटियों से मुक्त प्राकृतिक कृषि है, वैदिक कृषि। यह स्थानीय और ब्रह्मांडीय स्तरों पर प्रकृति की लय और चक्रों के साथ सहज रूप से वैदिक ध्वनियों का उपयोग करते हैं। पौधों की उच्च चेतना और आंतरिक बुद्धि को जगाने के लिए प्राकृतिक कानून की आवाज है, वैदिक कृशि तथा पौधों की वृद्धि और स्वास्थ्य देने वाले, पौष्टिक गुण चेतना को अधिकतम और उन्हें खाने वाले सभी के लिए शांतिपूर्ण, स्वस्थ जीवन को बढ़ावा दिया किया जा सके।

विभिन्न वेदों में हमारी विरासत के रूप में वर्णित कृषि -

विभिन्न वेदों में कृषि को कई रूप में वर्णित किया है जैसे कृशि पराषर ।

१. **कृषि पाराशर-** महर्षि वशिष्ठ के पोते महर्षि पाराशर द्वारा लिखित, पाठ में दो सौ तैंतालीस श्लोक हैं। इसमें कृषि के सिद्धांत को इस तरह से प्रतिपादित किया गया है कि किसानों को इसके आवेदन से लाभ होगा। इस ग्रंथ में कृषि के सभी पहलुओं पर अवलोकन शामिल हैं जैसे कि कृषि से संबंधित मौसम संबंधी अवलोकन, कृषि का प्रबंधन, मवेशियों का प्रबंधन, कृषि उपकरण, बीज संग्रह और संरक्षण, जुताई और खेतों की तैयारी से लेकर कटाई तक और फसलों के भंडारण से संबंधित सभी कृषि प्रक्रियाएं शामिल हैं।

२. **वृक्षायुर्वेद-** यह पौधे के आयुर्वेद से संबंधित है जिसमें पौधों के जीवन से संबंधित हर पहलू पर चर्चा करता है जैसे कि रोपण से पहले बीजों की खरीद, संरक्षण और उपचार, आदि । मिट्टी के पीएच का चयन, पोषण और उर्वरक, पौधों के रोग और आंतरिक और बाहरी रोगों से पौधों की सुरक्षा आदि।

३. योगिक कृषि- यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बीज सशक्तिकरण (ध्यान के माध्यम से), किसान के मन और हृदय का विकास (ध्यान के माध्यम से) और एकीकृत जैविक खेती (गाय उत्पादों, फसल चक्र और एकीकृत कीट प्रबंधन के माध्यम से) शामिल है। जैसे-जैसे किसानों का विश्वास बढ़ता है, ध्यान के माध्यम से उनकी फसलों पर पड़ने वाले प्रभाव में वृद्धि होती है। बीज और बीज के अंकुरण से लेकर बुवाई, सिंचाई और विकास, फसल और मिट्टी की पुनःपूर्ति तक, फसल विकास चक्र के प्रत्येक चरण का समर्थन करने के लिए डिजाइन किए गए विशिष्ट विचार प्रथाओं के साथ दूर से और खेतों में नियमित ध्यान आयोजित किया जाता है।

४. **होमा खेती**- वैदिक विज्ञान पर आधारित इस कृषि पद्धति के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह ''आकाश (अंतरिक्ष)'' की शक्तियों को यानी प्रकाश और ध्वनि (नाद-ब्रह्मा) को पांचवें तत्व के रूप में पहचानती है ताकि दोनों ब्रह्मांडीय सूक्ष्म ऊर्जाओं का पौधों पर प्रभाव बढ सके।

५. **अग्निहोत्र** - यह प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की जाने वाली विशेष रूप से तैयार की गई अग्नि के माध्यम से वातावरण को शुद्ध करने की एक प्रक्रिया है।

वैदिक खेती के लाभ – आधुनिक कृषि की तुलना में जैविक खेती के कई फायदे हैं ।

१. **मृदा स्वास्थ्य पर वैदिक कृषि का प्रभाव –** कार्बनिक पदार्थों के साथ मिट्टी की सतह की मल्चिंग मिट्टी को नरम, चूर्णित और आर्द्र बनाती है जो अंततः लाभकारी रोगाणुओं के लिए मिट्टी में थोक घनत्व और सरंध्रता बनाए रखने के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाती है ं (नैनी एट अल, २०००)। जैविक खेती के कारण मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार का अनुपात-अस्थायी आयाम है, अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जैविक खेती बेहतर है क्योंकि क्षेत्र में अधिक अवशोषण और पानी का कम प्रवाह होता है।

२. **पारिस्थितिक लाभ** – जैविक खाद्य उत्पादन से मिट्टी और पानी का प्रदूषण समाप्त होता है। अहृन-साइट संसाधनों का लाभ उठाया जा सकता है। जैसे कि खाद के लिए पशुधन खाद या खेत में उत्पादित चारा। ऐसे पौधों और जानवरों की प्रजातियों का चयन करना जो रोग प्रतिरोधी हों और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हों। पशुओं को मुक्त श्रेणी, खुली हवा में उठाना और उन्हें जैविक चारा प्रदान करना (नेजादकूर्की, २०१२)। जैविक खाद्य उत्पादन स्थानीय वन्यजीवों को संरक्षित करने में मदद करता है। जहरीले रसायनों से बचकर, प्राकृतिक कीट नियंत्रण उपाय के रूप में मिश्रित रोपण का उपयोग करके, और क्षेत्र की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, जैविक खेती स्थानीय वन्यजीवों को पारंपरिक कृषि जैसे प्राकृतिक आवास को छीनने के बजाय एक वापसी प्रदान करती है।

३. **कुशल ऊर्जा उपयोग –** जैविक खेतों के लिए प्रति रुपये उपज के उत्पादन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता उनके पारंपरिक समकक्षों की तुलना में केवल एक तिहाई है, क्योंकि जैविक किसानों द्वारा नाइट्रोजन युक्त उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है, कुल ऊर्जा इनपुट ६ हेक्टेयर की तुलना कुल ऊर्जा उत्पादन के साथ जैविक कृषि प्रणालियों के पक्ष में होती है।

४. **कम निवेश** – जैविक खेती में आम तौर पर उतना अधिक पूंजी निवेश शामिल नहीं होता जितना कि रासायनिक खेती में आवश्यक होता है। इसके अलावा, चूंकि जैविक खाद और कीटनाशकों का उत्पादन स्थानीय स्तर पर किया जा सकता है, इसलिए किसान की वार्षिक लागत भी कम होती है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि रासायनिक खेती से जैविक खेती में स्थानांतरित होने पर, संक्रमण महंगा हो सकता है ।

५. **स्वास्थ्य सुविधाएं** – खाद्य और खेत में खाद्य सुरक्षा और गुणवत्ता के मुद्दों के संबंध में अध्ययनों से पता चलता है कि गैर-जैविक की तुलना में जैविक खाद्य पदार्थों में कम से कम रासायनिक अवशेष थे (बेकर एट अल।, २००२)। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि, खेतों में सिंथेटिक इनपुट के उन्मूलन के माध्यम से, जैविक खेती किसानों के रासायनिक कीटनाशकों के संपर्क में आने के जोखिम को कम करती है।

६. **कचरे का उपयोग –** वैदिक खेती ज्यादातर स्थानीय उपलब्ध कृषि संसाधनों, खेत तथा घर के उत्पादों का उपयोग करती है। जैविक खेती में सामान्य रूप से सभी जैविक कचरे और फार्म यार्ड खाद (थ्ल्ड) या विशेष रूप से फीडलहृट खाद का खाद बनाना महत्वपूर्ण है।

भारत में जैविक खेती की बाधाएं – हालांकि जैविक खेती को अपनाने में कई फायदे हैं, लेकिन कुछ बाधाएं किसानों के स्तर पर अनुकूलन में बाधा डालती हैं। ये सीमाएँ थीं (१) यह श्रम गहन है। (२) अच्छे वैदिक कृषि पद्धतियों का छोटे किसानों तक प्रचार-प्रसार करना कठिन है, एक छोटे किसान के लिए जैविक उत्पादों का विपणन करना मुश्किल हो सकता है।(३) यह महंगा भी हो सकता है, जैविक खेती में, मिट्टी की उर्वरता को नियमित रूप से जैविक उर्वरकों के प्रयोग से फिर से भरने की आवश्यकता होती है। छोटे किसान के लिए यह मुश्किल हो सकता है, जो कम मात्रा में उर्वरक खरीदेगा और उन्हें कहीं और से प्राप्त करेगा। इसके अलावा पैमाने की कम अर्थव्यवस्थाओं के कारण, लंबी दूरी से प्राप्त जैविक उर्वरकों से जुड़ी एक बड़ी परिवहन लागत हो सकती है। (४) यह भी देखा गया है कि जैविक खाद्य कीमतें स्थिर नहीं हैं और समय-समय पर उतार-चढ़ाव करती रहती हैं, चूंकि जैविक खाद्य उत्पादन की मात्रा कम है (कुल खाद्य उत्पादन का लगभग १-२), इसलिए न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसे सामाजिक सुरक्षा उपायों को लागू करना मुश्किल है।

निष्कर्ष –

वैदिक कृषि वैदिक भोजन का उत्पादन करेगा, जो सबसे शुद्ध, सबसे पौष्टिक और सबसे उपलब्ध महत्वपूर्ण भोजन है। वैदिक खेती आधुनिक प्रणाली के वैकल्पिक तरीके के रूप में गति प्राप्त कर सकती है। किसानों के बीच उनके प्राकृतिक संसाधन आधार, भूमि की गुणवत्ता और स्थानीय और क्षेत्रीय बाजारों से जुड़ाव के अनुसार प्रौद्योगिकी की आवश्यकता भिन्न होती है। छोटे किसानों के लिए टिकाऊ उत्पादकता बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। वैदिक खेती के अत्यधिक मूल्यवान गुणों और व्यापक अनुप्रयोगों को बढ़ावा देने के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण आवश्यक है इसलिए इसके लाभों के बारे में लोगों को शिक्षित करने से खाद्यान्न, ईंधन, पोषण और मिट्टी के स्वास्थ्य की कमी की समस्याओं और ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत के रूप में समाधान मिल सकता है। उर्वरकों और कीटनाशकों के खतरनाक प्रभाव, इन पर्यावरण के अनुकूल पारंपरिक कृषि आदानों का उपयोग जैविक किसानों को वैकल्पिक उत्पादन प्रौद्योगिकियां प्रदान करता है।

२३. शून्य बजट प्राकृतिक खेती से अधिक लाभ

प्रदीप कुमार कुमावत', रीना, तालीम, रंजना बाली एवं पुष्पेंद्र कुमार यादव

शून्य बजट प्राकृतिक खेती (BNF) किसान की लागत को कम करने का सबसे अच्छा उपाय है। शून्य बजट शब्द का अर्थ है ''कोई ऋण नहीं" और प्राकृतिक खेती का अर्थ है ''उर्वरक और रासायनिक उपयोग के बिना फसल उगाना"। यह विचार चार अवधारणाओं पर काम करता है, जो निम्न हैं जीवामृत, बीजामृत, मल्चिंग और मिट्टी संरक्षण । इसमें कीट नियंत्रण के प्राथमिक तरीकों के रूप में सांस्कृतिक प्रथाओं में एक छोटे से संशोधन के माध्यम से पहले सावधानीपूर्वक योजना बनाना शामिल होना चाहिए । प्राकृतिक खेती में कीटों के प्रकोप को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न तरीके अंगियास्त्र, ब्रह्मास्त्र और निमास्त्रा अधिक से अधिक आर्थिक पैदावार तथा कीट के रोकने का काम करते हैं । भारत में प्राकृतिक कीट प्रबंधन में आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली पशु सामग्री आधारित और पौधे आधारित उत्पाद पंचगव्य और दसगव्य हैं। पंचगव्य, एक जैविक उत्पाद में वृद्धि को बढ़ावा देने और पादप प्रणाली में प्रतिरक्षा प्रदान करने की भूमिका निभाने की क्षमता है। साथ ही फलों, सब्जियों और बीजों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शून्य बजट प्राकृतिक खेती का उपयोग कर किसान रसायन मुक्त भोजन कर सकेंगे। इस उत्पाद को विभिन्न फसलों को नुकसान करने वाले कीटों पर हानिकारक प्रभाव के लिए जाना जाता है। ये अवधारणाएं बेहतर मिट्टी के स्वास्थ्य, मर्दा सूक्षम जीव में वृद्धि, गुणवत्ता वाले उत्पाद और फसल की उपज बढ़ाने में मदद करती हैं। बीज, उर्वरक और पौध संरक्षण रसायनों की लागत को कम करने में कारगर रही है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती (ZBNF) में कीट कीट प्रबंधन के तरीकेः

इस अवधारणा को **श्री सुभाष पालेकर** द्वारा पेश किया गया था, जिसके लिए उन्हें २०१६ में भारत के चौथे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार, पद्म श्री से सम्मानित किया गया था। शून्य बजट प्राकृतिक खेती (ZBNF), जिसे शून्य बजट आध्यात्मिक खेती (ठछथ) भी कहा जाता है। इस खेती में किसान मल्चिंग, मिट्टी संरक्षण तकनीक, प्राकृतिक कीटनाशकों, कवकनाशी और उर्वरकों का उपयोग कर रहे हैं। ZBNFके तरीकों में फसल बदलाव हरी खाद और खाद, जैविक कीट नियंत्रण और यांत्रिक खेती शामिल हैं। ZBNFकी पाँच सबसे महत्वपूर्ण विधियाँ हैं अर्थात अग्निस्त्र, ब्रम्हस्त्र, नीमस्त्र, जीवामृत, बीजामृत

शून्य बजट प्राकृतिक खेती की गुणवत्ता :-

- शून्य बजट प्राकृतिक खेती में बाजार से कुछ भी नहीं खरीदना पड़ता है। पौधे की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी चीजें पौधों के जड़ क्षेत्र के आसपास उपलब्ध हैं।
- लगभग ९८.५ प्रतिशत पोषक तत्व हवा, पानी और सौर ऊर्जा से लिए जाते हैं। मिट्टी से लिए गए शेष १.५þ पोषक तत्व भी निःशुल्क उपलब्ध होते हैं क्योंकि यह समृद्ध मिट्टी से लिया जाता है जो सभी पोषक तत्वों से समृद्ध होती है।
- स्थिरता के प्रति दृष्टिकोण।
- एक व्यय मुक्त खेती।
- एक देशी गाय से ३० एकड़ तक की खेती, न्यूनतम बिजली के साथ खेती, पानी की खपत और गुणवत्तापूर्ण भोजन का उत्पादन।
- उच्च शुद्ध आय और बाहरी श्रम की आवश्यकता को कम करने के लिए खेती की तकनीक बहुफसली खेती है।

प्राकृतिक खेती में कीट प्रबंधनः

प्राकृतिक खेती का लक्ष्य कीटों की आबादी को स्वीकार्य स्तर से नीचे रखने के लिए कीट और शिकारी के बीच संतुलन को नियंत्रित करना और बहाल करना है। पिछले दो दशकों के दौरान, पर्यावरण संरक्षण और खाद्य गुणवत्ता सुनिश्चित करने की दिशा में समुदाय का महत्वपूर्ण वैश्वीकरण हुआ है। प्राकृतिक खेती कीड़ों की आबादी को दबाने के लिए नहीं है, क्योंकि उन्होंने प्राकृतिक व्यवस्था में भी भूमिका निभाई है। एक बार जब कीटों ने फसल पर हमला करना शुरू कर दिया, तो क्षति की मरम्मत नहीं की जा सकती और नियंत्रण करना कठिन हो जाता है। जहां संभव हो, सबसे पहले कीटों के हमले से बचने या रोकने के लिए विभिन्न तकनीकों का उपयोग करें। प्राकृतिक खेती का मानना है कि यह इन दोनों मांगों को पूरा कर सकती है और ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों के पूर्ण विकास का साधन बन सकती है। लगभग एक सदी के विकास के बाद, जैविक और साथ ही प्राकृतिक खेती को अब मुख्य धारा द्वारा अपनाया जा रहा है और यह व्यावसायिक, सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से सबसे सुरक्षित वादा दिखाता है। जबकि पहले के दिनों से लेकर वर्तमान तक विचारों की निरंतरता है, आधुनिक प्राकृतिक आंदोलन अपने मूल रूप से मौलिक रूप से भिन्न है। स्वस्थ मिट्टी, स्वस्थ भोजन और स्वस्थ लोगों के लिए संस्थापकों

की चिंताओं के अलावा अब इसके मूल में पर्यावरणीय स्थिरता है। प्राकृतिक खेती में कीट प्रबंधन इस तरह से होना चाहिए कि यह पारिस्थितिकी तंत्र में मौजूद पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित न करे और हमें कीटों के हमले से मुक्त अधिक आर्थिक पैदावार प्राप्त करने में सक्षम बनाए। कीट प्रबंधन रणनीतियों की श्रृंखला की योजना पहले से अच्छी तरह से बनाई जानी चाहिए ताकि पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को टिकाऊ बनाया जा सके और कीटों के हमले का प्रतिरोध किया जा सके ।

प्राकृतिक खेती के लिए कीट प्रबंधन रणनीतियाँः

प्राकृतिक खेती में कीटों के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित श्रेणियों में प्रभावी अनुप्रयोगः-

- हेज पंक्तियों, आश्रय पेटियों, आदि के प्रावधान के माध्यम से प्राकृतिक शत्रुओं को बहाल करने के लिए संरक्षण अभ्यास।
- जैविक नियंत्रण एजेंटों जैसे कीट परभक्षी, परजीवी, कीट रोगजनकों का उपयोग एजेंटों को लगाने या जारी करने से।
- उपचारात्मक नियंत्रण उपायों के रूप में वानस्पतिक और जैविक कीटनाशकों का उपयोग।

कीट प्रबंधन विकल्प

प्राकृतिक शत्रुओं की बहाली के लिए संरक्षण के तरीके प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण में प्राकृतिक शत्रुओं की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए उनके अस्तित्व, उर्वरता, दीर्घायु और व्यवहार को बढ़ाने के लिए पर्यावरण में हेरफेर शामिल है। इस तरह के संरक्षण प्रयासों को हानिकारक परिस्थितियों को कम करने या अनुकूल परिस्थितियों को बढ़ाने के लिए निर्देशित किया जा सकता है। संरक्षण प्रथाओं को आगे उन लोगों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है जो मृत्यु दर को कम करने, पूरक संसाधन प्रदान करने, द्वितीयक दुश्मनों को नियंत्रित करने, या प्राकृतिक दुश्मनों के लाभ के लिए मेजबान पौधों की विशेषताओं में हेरफेर करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं (हलधर एट अल., २०१७)।

वयस्क परजीवी अमृत पर भोजन करते हैं और निर्भर करते हैंः अध्ययनों से पता चला है कि हमारे परिदृश्य में उपयुक्त अमृत स्रोत उपलब्ध होने पर दीर्घायु और उर्वरता बढ़ जाती है। इससे परजीवियों की दर और कीटों की प्रजातियों के नियंत्रण पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। फूलों के पौधे जैसे गेंदा (टैगेट), पुदीना (मेंथा), सूरजमुखी (हेलियनथस एनस), सनहेम्प (क्रोटेलारिया जंकिया) और साथ ही स्थानीय फलियां उपयोगी आकर्षक पौधे हैं। हरी मक्खी पर होवरफ्लाइज, लार्वा फ़ीड जड़ी-बूटियों और सब्जियों के फूलों जैसे कि सौंफ, अजवाइन, डिल, गाजर और पार्सनिप (अम्बेलिफेरी परिवार) की ओर आकर्षित होते हैं। ये फूल जो अमृत और पराग प्रदान करते हैं, वह इन कीड़ों द्वारा रखे गए अंडों की संख्या को बढ़ाने में मदद करेगा। अम्बेलिफ़र्स विभिन्न परजीवी ततैया को भी भोजन प्रदान करेंगे जिनके युवा एफिड्स और कुछ कैटरपिलर पर रहते हैं।

वयस्क लाभकारी कीट अक्सर पराग का उपयोग खाद्य स्रोत के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, वयस्क होवरफ्लाइज़ पराग का उपयोग करते हैं और उन्हें अंडे परिपक्व करने और अपने युवा पैदा करने की आवश्यकता हो सकती है, जो एफिड शिकारी हैं। कुछ परभक्षी कीट अपना जीवन चक्र पूरी तरह से पूरक आहार पर पूरा करने में सक्षम होते हैं।

भोजन का एक निरंतर स्रोत प्रदान करने से लाभकारी कीड़ों का प्रवास धीमा हो जाएगा और उन्हें उच्च जनसंख्या स्तरों पर रखा जाएगा। रिफ्यूजिया एक गैर-फसल क्षेत्र है जहां लाभकारी कीड़ों को सूक्ष्म आवास प्रदान किए जाते हैं जो उनके अस्तित्व और दृढ़ता में योगदान करते हैं। जब वे शिकार की तलाश में नहीं होते हैं तो उन्हें छिपने के लिए जगह चाहिए होती है। इस क्षेत्र को ओवरविन्टरिंग आवास भी प्रदान करना चाहिए। सामान्य तौर पर जितना अधिक पौधा-समृद्ध क्षेत्र होता है, उतनी ही अधिक प्राकृतिक नियंत्रण काम करेगा। लेकिन कुछ कीट प्राकृतिक दुश्मन घास या फलियां मोनोकल्चर में घास और फलियों के मिश्रण की तुलना में अधिक प्रभावी होते हैं, इसलिए पौधों की विविधता प्राकृतिक नियंत्रण को सार्वभौमिक रूप से प्रोत्साहित नहीं करती है। लाभकारी कीड़ों के संरक्षण के कई अलग-अलग तरीकों का परीक्षण किया गया है जैसे मिट्टी, पानी और फसल अवशेषों का प्रबंधन; अलग-अलग फसल पैटर्न और गैर-फसल और बढ़ते पौधे जो लाभकारी प्रजातियों को आकर्षित करते हैं (हलधर एट अल., २०१७)।

फील्ड बॉर्डर और हेज रोः फील्ड बार्डर और हेज रो लाभकारी कीड़ों वाले आवासों के पूरे संयोजन के एक महत्वपूर्ण घटक का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह संभावना नहीं है कि लाभकारी कीड़ों की सभी जीवित रहने की जरूरतों को क्षेत्र की सीमाओं के भीतर पूरा किया जाएगा। कई लाभकारी कीट अपने समय का कुछ हिस्सा खेत की सीमाओं या हेज पंक्तियों में बिताएंगे। ये क्षेत्र ऐसे गलियारे भी प्रदान करते हैं जिनका उपयोग लाभकारी कीट एक खेत से दूसरे खेत में जाने के लिए करते हैं। प्राकृतिक नियंत्रण को प्रोत्साहित करने के लिए एक संपूर्ण योजना विकसित करने के लिए इन सभी क्षेत्रों पर कुछ विचार करने की आवश्यकता है। हेज पंक्तियों में पौधों में आमतौर पर प्राकृतिक वनस्पति होती है जिसे जितना व्यावहारिक रूप से संरक्षित किया जाना चाहिए। फील्डबहृर्डर, इस पर निर्भर करते हुए कि उनका प्रबंधन कैसे किया जाता है, आमतौर पर इसमें वार्षिक पौधे होते हैं। वार्षिक पौधों का प्राकृतिक परिसर लाभकारी कीड़ों के लिए आवश्यक आवास और

संसाधन प्रदान कर सकता है। कुछ अभ्यास पौधों के वांछित मिश्रण को बनाए रखने में मदद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए किसी विशेष समय अंतराल या ऊंचाई पर बुवाई करने से लकड़ी के बारहमासी वनस्पति के उत्तराधिकार की प्राकृतिक प्रक्रिया रुक जाएगी। पौधों के मिश्रण को बनाए रखने के लिए कुछ योजनाएँ बनानी चाहिए। बहुत बार, सीमाओं को तब तक छोड़ दिया जाता है जब तक कि उन्हें काटने का समय न हो। कुछ कीट समस्याएं, जैसे कि घुन, गर्मियों के मध्य तक घास काटने की प्रतीक्षा करके फैल सकती हैं। अनुरक्षण कार्यक्रम पर निर्णय लेने से पहले क्षेत्र की सीमाओं को बनाए रखने के बारे में उपलब्ध सभी जानकारी एकत्र करें। सफेद मक्खी के लिए एक बाधा के रूप में मक्का, ज्वार और बाजरा जैसी गैर-मेजबान सीमावर्ती फसलों का उपयोग करें ।

जैविक नियंत्रण एजेंटों का उपयोगः कीट परभक्षी और परजीवी जैसे जैविक नियंत्रण एजेंटों को निष्क्रिय और निष्क्रिय रिलीज या लागू करने से कीट कीटों को नियंत्रित करने में बड़ी भूमिका निभानी होगी। प्राकृतिक शिकारियों को उस क्षेत्र में रहने और प्रजनन के लिए प्रोत्साहित करके छोटे पैमाने पर इसे प्राप्त किया जा सकता है जहां कीट एक समस्या है। यह उनके लिए घर उपलब्ध कराने के लिए खेत के चारों ओर पेड़ और बाड़ लगाने से प्राप्त किया जा सकता है। कई कीड़े और जानवर हैं जिन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि वे कीटों को खाते हैं। ये कुछ उदाहरण हैंः मेंढक, टोड, हाथी, चूहे, मोल, चमगादड़, पक्षी, गिरगिट, छिपकली, मकड़ी, चींटियाँ, हत्यारे कीड़े, काले-घुटने वाले कैप्सिड, मधुमक्खियां, शाखायुक्त ततैया, परजीवी ततैया, गोबर भृंग, ग्राउंड बीटल, केंचुए, बाज़ पतंगे, ड्रैगन मक्खियाँ, होवर फ्लाइज़, लेसविंग और स्टिक कीड़े।

शिकारियों और परजीवी एजेंटों सहित ये जैविक नियंत्रण तब उपयोगी होंगे जब प्राकृतिक खेती में कीटों की आबादी में अचानक प्रकोप होता है, जो पहले के नियंत्रण उपायों के विपरीत होता है, जिनकी योजना पहले से बनाई जानी होती है। हालांकि, कार्रवाई का धीमा तरीका, पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए इन जैव नियंत्रण एजेंटों की संवेदनशीलता और आर्थिक सीमा स्तर (ई.टी.एल) से नीचे कीट को नियंत्रित करने की क्षमता प्राकृतिक खेती में जैव नियंत्रण एजेंटों के बड़े पैमाने पर उपयोग में बाधा उत्पन्न करेगी। *Cotesia plutellae*भारत में डायमंड बैक मोथ का सबसे आम लार्वा परजीवी है और बिना छिड़काव वाली परिस्थितियों में ४०-६० प्रतिशत परजीवीवाद का कारण बनता है (कृष्णा मूर्ति एट अल।, २००६)। एक शिकारी बग, राइनोकोरिसफ्यूसिप्स, एपिलाचना बीटल (चंदेल एट अल., २००७) के सभी चरणों पर फ़ीड करता है।

वानस्पतिक और जैव-रसायनों का उपयोगः नीम, पोंगामिया और तंबाकू जैसे पौधों से कच्चे अर्क के साथ-साथ वाणिज्यिक योगों, जो कीटों के प्रबंधन के लिए पारंपरिक कृषि में प्रभावकारिता दिखाते हैं, उनकी कम अवशिष्ट क्रिया और पारिस्थितिक होने के कारण प्राकृतिक खेती में अनुमति दी गई थी। सुरक्षा। वानस्पतिक अपने पाचन तंत्र के माध्यम से कीड़ों को जहर देने या तेज गंध और स्वाद वाले कीड़ों को पीछे हटाने का काम करते हैं। कुछ हार्मोन जैसे पदार्थों के साथ जीवन चक्र के चरणों को बाधित करते हैं। गोभी में लेपिडोप्टेरस लार्वा कहम्प्लेक्स को कम करने में मेलियाजेदारच (ड्रूप्स), लैंटाना कैमरा (पत्तियां), रुमेक्सनेपलेंसिस (जड़) और आर्टिमिसिया ब्रेविफोलिया (पत्तियां) का क्रूड फहर्मूलेशन भी अत्यधिक प्रभावी है। भारत में जैविक और प्राकृतिक खेती में कीटों को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किया जाने वाला अर्क। नीम के पत्तों को ५ किलो, विटेक्सनेगुंडो के पत्ते २ किलो, अरिस्टोलोचिया के २ किलो, पपीते के २ किलो, टिनोस्पोराकोर्डिफोलिया के पत्ते, २ किलो, कस्टर्ड सेब के २ किलो, करंजा के पत्ते २ किलो, अरंडी के पत्ते २ किलो, नेरियम इंडिकम २ किलो को मिलाकर तैयार किया जाता है। कैलोट्रोपिस प्रोसेरा २ किलो, हरी मिर्च पेस्ट २ किलो, लहसुन पेस्ट २५० ग्राम, गाय का गोबर ३ किलो और गोमूत्र २०० लीटर पानी में एक महीने के लिए उबाल लें। दिन में तीन बार नियमित रूप से हिलाएं। कुचलने और छानने के बाद निकालें। अर्क को ६ महीने तक संग्रहीत किया जा सकता है और एक एकड़ के लिए पर्याप्त है। करंज केक (४४.८प्रतिशत) के उपचार में सफेद ग्रब की उच्चतम प्रतिशत मृत्यु दर देखी गई।

चाऊ और हीओंग (२००५) ने बताया कि चिकन हॉगमैनर कम्पोस्ट के उपचार में मकड़ियों का घनत्व ७.५ टन/हेक्टेयर और ३१.९/वर्ग फीट जैविक खाद के उपचार में था। पार्थेनियम और नीम के पत्तों को बराबर मात्रा में लेकर पीसकर २४ घंटे के लिए पानी में भिगो दें। अर्क का छिड़काव / २० मिली/१० लीटर पानी में किया जाता है, जिससे मिर्च में हेलिकोवर्पा आर्मिगेरा क्षति में काफी कमी आती है जैविक प्रबंधन के तहत उगाई गई मेथी में न्यूनतम एफिड संक्रमण ९५ डी.ए.एस. और १५ दिनों के अंतराल पर नीम के तेल (१प्रतिशत) के तीन पत्ते के आवेदन के साथ दर्ज किया गया था, जो करंज तेल (१प्रतिशत), लहसुन बल्ब के अर्क से काफी बेहतर था। ५प्रतिशत) और नीम की पत्ती का अर्क (५प्रतिशत)।

भारत में प्राकृतिक कीट प्रबंधन में आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ पशु उत्पाद आधारित शंखनाद पंचगव्य और दसगव्य हैं। पंचगव्य, एक जैविक उत्पाद में वृद्धि को बढ़ावा देने और पादप प्रणाली में प्रतिरक्षा प्रदान करने की भूमिका निभाने की क्षमता है। पंचगव्य में ५ उत्पाद शामिल हैं। गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, और घी। जब उपयुक्त रूप से मिश्रित और उपयोग किया जाता है, तो ये चमत्कारी प्रभाव

डालते हैं। यह उत्पाद हमला करने वाले कई कीटों पर हानिकारक प्रभाव के लिए जाना जाता है विभिन्न फसलें जब ३प्रतिशतघोल की खुराक पर उपयोग की जाती हैं। दशगव्य पंचगव्य का एक प्रकार है जो पंचगव्य में कुछ पौधों के अर्क को मिलाकर तैयार किया जाता है। लैंटाना कैमरा, ल्यूकसस्पेरा, धतूरा धातु, फाइटोलैका ओक्टेन्ड्रा, और आर्टेमिसिया नीलगिरीका जैसे खरपतवारों के पत्ते के अर्क को फिर १:१ के अनुपात में गोमूत्र में भिगोया जाता है (१ लीटर गोमूत्र में १ किलो कटा हुआ पत्ते) दस दिनों के लिए फिर पंचगव्य में मिलाया जाता है। दशगव्य का छिड़काव सप्ताह में एक बार सभी सब्जी और बागान फसलों के लिए किया जा सकता है। दशगव्य एफिड्स, थ्रिप्स, व्हाइट मक्खियों, माइट्स और पर्ण कैटरपिलर जैसे कीटों को भी नियंत्रित करता है। सब्जी फसलों पर तीन बार दशगव्य का ३प्रतिशतघोल में छिड़काव करने से अधिक उपज दर्ज की गई। इन पशु आधारित उत्पादों को प्राकृतिक कीट पीड़क प्रबंधन में उनके उपयोग के लिए वैज्ञानिक रूप से मान्य किया जाना है।

निष्कर्षः

- प्राकृतिक खेती में कीट प्रबंधन किसी भी कीटनाशक के उपयोग के बिना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसमें कीट नियंत्रण के प्राथमिक तरीकों के रूप में सांस्कृतिक प्रथाओं में मामूली संशोधन के माध्यम से पहले से सावधानीपूर्वक योजना बनाना शामिल है। कीटों से बचाव की दूसरी पंक्ति के रूप में जैविक नियंत्रण एजेंटों और अन्य पौधों पर आधारित उत्पादों के उपयोग जैसे पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं का उपयोग।
- आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ वैकल्पिक फसल संरक्षण योजनाओं को समर्थन और विकसित करने के लिए, अनुसंधान की वैकल्पिक लाइनें, मूल्य समर्थन, कृषि नीतियां और भूमि उपयोग प्रथाओं को अपनाने की आवश्यकता हो सकती है।

२४. जीवामृत एक जैविक खाद

शुभम जम्वाल एवं आर. पुनिया

जीवामृत

जीवामृत अत्यधिक प्रभावशाली जैविक खाद है, जो पौधों की वृद्धि और विकास में सहायता करता है तथा पौधों की प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाता है जिससे पौधे स्वस्थ बने रहते हैं तथा फसल से अच्छी पैदावार मिलती है। जीवामृत में लाभदायक सूक्ष्मजीव (एजोस्पाइरिंलम, पी.एस.एम. स्यूडोमोनास, ट्राइकोडर्मा ,यीस्ट एवं मोल्ड) बहुतायत में पाये जाते हैं। इसके उपयोग से भूमि में विद्यमान लाभदायक जीवाणु तथा केंचुए भी आकर्षित होते हैं। ये कार्बनिक अवशेषों के सड़ाव में सहायता करते हैं। परिणामतः मुख्य सूक्ष्म पोषक तत्वों, एंजाइम्स एवं हारमोन को संतुलित मात्रा में पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

जीवामृत दो रूपों में बनाया जाता है-

जीवामृत निम्नलिखित सामाग्री से बनाया जाता है-

१. गोबर -१० किलोग्राम,

२. देसी गाय का मूत्र -५ से १० लीटर,

३. एक किलो पुराना गुड़ या ४ लीटर गन्ने का रस (नया गुड़ भी ले सकते हैं)

४. एक किलो दाल का आटा (मूंग, उर्द, अरहर, चना आदि का आटा)

५.१ किलो सजीव मिट्टी (बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी या ऐसे खेत या बांध की १ से २ इंच मिट्टी जिसमें कीटनाशक न डाले गए हों)

५. २०० लीटर पानी

६. पात्र - प्लास्टिक ड्रम/सीमेंट की हौदी बनाने की विधि

सर्वप्रथम, उपलब्ध प्लास्टिक ड्रम अथवा मिट्टी या सीमेंट की हौदी में ५०-६० लीटर पानी लेकर १० किग्रा गोबर को लकड़ी से अच्छी तरह मिलायें। तत्पश्चात उपलब्धतानुसार, ५-१० लीटर गोमूत्र मिलाया जाये। मिश्रण में ०१ किलोग्राम उर्वर मिट्टी जिसमें रसायन खादों का प्रयोग न किया गया हो, मिला दी जायें। पात्र में उपलब्ध जीवाणुओं के भोजन हेतु एक किग्रा बेसन, एक किग्रा गुड़ अथवा ४ लीटर गन्ने के रस के घोल में और अतिरिक्त पानी मिलाकर २०० लीटर तैयार किया जाये। प्लास्टिक की टंकी में डालकर अच्छी तरह मिश्रण करें ।

नाइलॉन जाली या कपड़े से पात्र के मुंह को ढक दें। अब इस मिश्रण को ३ दिन तक किण्वन क्रिया के लिये छांव में रखें तथा दिन में ३ बार (सुबह, दोपहर व शाम) लकड़ी से मिलाया जाय। ३ दिन के बाद जीवामृत उपयोग के लिए बनकर तैयार हो जायेगा । यह मात्रा एक एकड़ भूमि के लिये पर्याप्त है । तैयार जीवामृत को ५-६ दिन के अन्दर प्रयोग कर लिया जाये।

प्रयोग विधिः-

जीवामृत को कई प्रकार से अपने खेतों मे प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका है, फसल में पानी के साथ जीवामृत देना। जिस खेत में आप सिंचाई कर रहे हैं, उस खेत के लिए पानी ले जाने वाली नाली के ऊपर ड्रम को रखकर वाल्व की सहायता से जीवामृत पानी मे डाले धार इतनी रखें कि खेत में पानी लगने के साथ ही ड्रम खाली हो जाए। जीवामृत पानी में मिलकर अपने आप फसलों की जड़ों तक पहुँच जाएगा। इस प्रकार जीवामृत २१ दिनों के अंतराल पर आप फसलों को दे सकते है। इसके अतिरिक्त खेत की जुताई के समय भी जीवामृत को मिट्टी पर भी छिड़का जा सकता है। इस तरल जीवामृत का फसलों पर छिड़काव भी किया जा सकता है।

फलदार पेड़ो के लिए दोपहर (१२pm) के समय पेड़ो की जो छाया पड़ती है उस छाया के बाहर की कक्षा के पास चारों तरफ २५-५० सेमी नाली बनाकर प्रति पेड़ २ से ५ लीटर जीवामृत महीने में दो बार पानी के साथ छिड़काव करें। जीवामृत छिड़कते समय भूमि में नमी होनी चाहिए। जीवामृत पौधे को अधिक ठंड और अधिक गर्मी से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। फसलों पर इसके प्रयोग से फूलों और फलों में वृद्धि होती है। जीवामृत सभी प्रकार की फसलों के लिए लाभकरी है। इसमें कोई भी नुकसान देने वाला तत्व या जीवाणु नही हैं। जीवामृत के प्रयोग से उगे फल,सब्जी, अनाज देखने में सुंदर और खाने में अधिक स्वादिष्ट होते हैं। जीवामृत पौधों में बिमारियों के प्रति लड़ने की शक्ति को बढ़ाता है। मिट्टी में से तत्वों को लेने और उपयोग करने की क्षमता बढ़ती है। बीज की अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती हैं। इससे फसलों और फलों में एकसारता आती है तथा पैदावार में भी वृद्धि होती है।

आढकीशस्योत्पादने कृषिपाराशरग्रन्थकृषिविज्ञानसम्मतयोः प्रायोगिकाध्ययनम्

डॉ. नवीन तिवारी

सहायकाचार्यः, ज्योतिषविभागः

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः

श्रीरणवीरपरिसरः, जम्मू

प्रस्तावना–

समग्रभूमण्डले स्थितानां भूतानामुदरपोषणाय शरीरवृद्धै बुभुक्षानिवारणाय जीवनयापनाय च अन्नस्यावश्यकता भवत्येव। अन्नेन विना जीवनस्य कल्पनापि कर्तुं न शक्यते। यथोक्तं महर्षिणा पराशरेण –

कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि।

उपवासस्थापि स्यादन्नाभावेन देहिनाम्।।[1]

अर्थात् मानवः स्वशरीरे नानाविधाभूषणैः भूषितस्सन् तथापि अन्नेन विना बुभुक्षितः एव भवति। अर्थात् मनुष्यः कण्ठे कर्णे हस्ते नासिकायां च सुवर्णस्याभूषणं धारयति तथापि अन्नस्य अभावेन उपवासः एव करणीयः। अन्नस्य गौरवगानम् आचार्येण वराहमिहिरेणापि बृहत्संहितायां कृतं यथा –

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्।[2]

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य जीवनस्य मूलकारणं यथोक्तंमुपनिषदि –

अन्नाद् भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्धन्ते।

अधतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।।[3]

एवं प्राणिनां जन्मस्थितिलयानां कारणमन्नमेव भवति। तैत्तिरीयोपनिद्यन्नस्य ब्रह्मरूपत्वं प्रतिपादितम् अन्नं ब्रह्मेत्युद्घोषपूर्वकं सर्वेष्वपि पदार्थेषु अन्योऽन्यमन्नादभावः प्रसज्यते इति प्रोक्तं – **'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्येव खल्विमानि भूतानि जायन्तेऽन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'।**[4]

अन्नं ब्रह्मणोऽवधारणाया आधारोऽयं प्रतीयते यद् ब्रह्मवच्चीयमानमन्नं देवासुरमनुष्याणां जीवनाधारो वर्तते। पराशरेण यथोक्तम् –

अन्नं प्राणाः बलं चान्नम् अन्नं सर्वार्धसाधकम्।

देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः।।[5]

सर्वे शास्त्रकाराः अन्नमेव जीवनमिति प्रतिपादितवन्तः। परन्तु अन्नस्य उत्पादनार्थं कृषेः आवश्यकता अनुभूयते अर्थात् अन्नाय कृषिः मूलं वर्तते, यथोक्तं पराशरेण –

अन्नं हि धान्यसञ्जातं धान्यं कृष्या बिना न च।

अर्थात् अन्न धान्याज्जायते, कृष्या धान्यं जायते, अन्नधान्ययोः परस्परमुपकार्योपकारकभावसम्बन्धो विद्यते।

---

[1] कृषिपाराशरः प्रास्ताविकम्, श्लोकः - 5

[2] बृहत्संहिता, गर्भलक्षणाध्यायः, श्लोकः - 1

[3] तैत्तिरीयोपनिषद-ब्रह्मानन्दवल्ली, द्वितीयोऽनुवाक्

[4] तैत्तिरीयोपनिषद-भृगुवल्ली, प्रथमोऽनुवाक्

[5] कृषिपराशर प्रस्ताविकम्, श्लोक - 5

कृषिः अन्नोत्पादनार्थं क्रियमाणं कर्मेत्युच्यते। यस्य प्रथमा क्रिया कर्षणं भवति। कृषकाः कर्षणेनैव कृष्यभूमिं समीकृत्य बीजवपनादिकं कर्तुं पारयन्ति। यद्यपि कर्षणं व्यापकेऽर्थे कर्मविशेषं कर्षणं लाङ्गलयोजनपूर्वकं कृतं अयमेव भूमेः प्रथमः संस्कारो भवति। एवं यद्यपि प्रत्यक्षरूपेण कर्षणयोग्या भूमि भवति कर्षणस्य साक्षात् प्रयोजनं भवति अन्नस्य प्राप्तिः। अतः कर्मणः फलाश्रयत्वात् त एव पदार्थाः कृष्या इति वक्तुं शक्यते।

अतः वर्तमानयुगे अत्यधिकं रसायनिकप्रयोगेण कृषिभूमेः वन्ध्यात्वं जायते। अतः प्राचीनकृषिविज्ञानदृष्ट्या कृषेः प्रायोगिकाध्ययनं शोधपत्रेऽस्मिन् प्रस्तूयते –

अत्र सर्वप्रथमं प्रायोगिककृषिकर्महेतुः न्यादर्शः प्रस्तूयते –

न्यादर्शचयनस्य आवश्यकता

1. समयस्य सदुपयोगो भवति ।
2. धनस्य अधिकापव्ययो न भवति ।
3. प्रदत्तानां संकलनं सम्यक् भवति ।
4. विषयवस्तुनो विश्लेषणे सौविध्यमागच्छति ।
5. परिणामे विश्वसनीयता वैधता च समागच्छति ।

कृषिकर्मणि मध्यप्रदेशस्य रायसेनमण्डलान्तर्गतस्य ग्रामः सुल्तानगञ्जनामको ग्रामः स्वीकृतः। यथा - कृषिकार्यस्य प्रयोगार्थं ग्रामसुल्तानगञ्जस्य पटवारी हल्का क्रमांकस्य 33 इत्यस्य क्षेत्रक्रमाङ्कस्य 302 इत्यस्य 250डिसमिलपरिमिता भूमिः स्वीकृता। यथा -

कृषिकार्याय भूमेः न्यादर्शः

कृषिप्रयोगाय भूमिपरिमाणम्	**वपनार्थं बीजस्य परिमाणम्**	**बीजानां नामानि**	**बीजानां जातयः (Variety)**	**कृषिकार्यस्य पद्धतिः**
50. डिसमिलभूमिः (अर्धएकडपरिमितम्)	3 किलोग्रामाः	**आढकी (अरहरः)**	लक्ष्मी	कृषिपाराशरोक्तपद्धतिः (वैशाखे वपनम्)
50. डिसमिलभूमिः (अर्धएकडपरिमितम्)	3 किलोग्रामाः	**आढकी (अरहरः)**	लक्ष्मी	कृषिपाराशरोक्तपद्धतिः (ज्येष्ठे वपनम्)
50 डिसमिलभूमिः (अर्धएकडपरिमितम्)	3 किलोग्रामाः	**आढकी (अरहरः)**	लक्ष्मी	कृषिपाराशरोक्तपद्धतिः (आषाढे वपनम्)
50 डिसमिलभूमिः (अर्धएकडपरिमितम्)	3 किलोग्रामाः	**आढकी (अरहरः)**	लक्ष्मी	कृषिपाराशरोक्तपद्धतिः (श्रावणे वपनम्)
50 डिसमिलभूमिः (अर्धएकडपरिमितम्)	3 किलोग्रामाः	**आढकी (अरहरः)**	लक्ष्मी	कृषिवैज्ञानिकोक्तपद्धतिः (आषाढे वपनम् जूनस्य अन्तिमसप्ताहे जुलाईमासस्य प्रथमसप्ताहे वपनं श्रेष्ठम्)

अस्मिन् शोधपत्रे अनुसन्धानस्य प्रयोगात्मकविधेः प्रयोगः जातः।

कृषेः प्रयोगात्मकामध्ययनम्-

कृषिक्षेत्रे प्रायोगिकाध्ययनेन विना सार्थकनिष्कर्षस्य परिकल्पना नैव कर्तुं शक्यते। अतः प्राचीनकृषिविज्ञानस्य महत्त्वम् अभिलक्ष्य कृषिपाराशरग्रन्थे आधुनिककृषिविज्ञाने च नैके कृषिविज्ञानसम्मताः पक्षाः विराजन्ते तेषां पक्षाणां वचनानाञ्च अत्र प्रायोगिकमध्ययनं प्रस्तूयते। ते यथा- बीजसंहर- बीजोपचार- बीजवपन- रोपणविधि-आढकीनिरस्तीकरणादीनां वर्तमानसन्दर्भे प्रायोगिकमध्ययनं कृतम्। अस्मिन् प्रायोगिकनामके ते प्रस्तूयन्ते यथा-

बीजसंहरस्य प्रायोगिकाध्ययनम्-

माघमासस्य शुक्लपक्षस्य दशमीतिथौ तदनुसारेण 2016 तमे ख्रीष्टे फरवरीमासे 17 तमे दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गते सुल्तानगञ्जनामकग्रामे कृषिपाराशरग्रन्थानुसारं बीजसंहरस्य प्रयोगः कृतः विधिश्च विहितः । तच्च वचनं यथा-

माघे वा फाल्गुने मासि सर्वबीजानि संहरेत्।
शोषयदातपे सम्यक् नैवाधो विनिधापयेत्।।[6]
बीजस्य पुटिकां कृत्वा विधान्यं तत्र शोधयेत्।
बीजं विधान्यसंमिश्रं फलहानिकरं परम्।।[7]

पराशरवचनानुसारेण माघमासे आढकीबीजानाम् एकत्रीकरणं कृत्वा, सूर्यतापेन शुष्कं कृत्वा सर्वेषां बीजानां तृणकरकटादीनां शोधनं कृत्वा पृथक्-पृथक् पुटिकां वध्वा पवित्रस्थले सर्वं स्थापितम्, अयं विधिः अत्यन्तम् अल्पव्ययसाध्या वर्तते । अनेन विधिना बीजस्य संहरम् अत्यधिकशस्योत्पादने समर्थं भवति ।

बीजोपचारस्य प्रायोगिकाध्ययनम्-

फाल्गुनमासशुक्लपक्षस्य त्रयोदशीतिथौ तदनुसारेण 2016 तमे ख्रीष्टे मार्चमासस्य (एकविंशतिः) 21 तमे दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गतसुल्तानगञ्जनामकग्रामे कृषिपाराशरग्रन्थानुसारं बीजसंहरस्य प्रयोगः कृतः विधिश्च विहितः । तच्च वपनं यथा-

एकरूपं तु यद्बीजं फलं फलानि निर्भरम् ।

एकरूपं प्रयत्नेन तस्माद्बीजं समाचरेत् ।।

अनेन श्लोकानुसारेण संहरितबीजानां स्वहस्तेन शोधनयन्त्रेण एकरूपता मया कृता, तत्पश्चात् एकरूपबीजानां सूर्यतापेन शुष्कं कृत्वा पुट्टिकां च बद्ध्वा पवित्रस्थाने स्थापितम् । तत्र पराशरीयवचनं यथा-

न वल्मीके न गोस्थाने न प्रसूता निकेतने।
न च वन्ध्यावति ग्रेहे बीजस्थापनमाचरेत्।।
नोच्छिष्टं स्पर्शयेद् बीजं न च नारीं रजस्वलाम्।

---

[6] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक - 77

[7] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक - 158

न वन्ध्या गर्भिणी चैव न च सहाः प्रसूतिका।।
घृतं तैलं च तक्रं च प्रदीपं लवणं तथा।।
बीजोपरि भ्रमेणापि कृषको नैव कारयेत्।।[8]

पाराशरानुसारेण वल्मीकस्थले गोस्थाने, स्त्रीप्रसूतस्थले, वन्ध्यागृहे च बीजं नैव स्थापयेत् । शोधकर्त्रा तदनुगुणमेव बीजानि संस्थापितानि मयापि बीजस्थापनकाले पराशरोक्तवर्ज्यस्थानेषु बीजस्य स्थापनं कृतम्। अयं बीजोपचारस्य विधिः आधुनिकविधिना अल्पव्ययसाध्यः वर्तते तथा च कृषकः स्वमेव कर्तुं शक्यते । बीजस्य गुणवत्तापि कृषकेण प्रत्यक्षरूपेण द्रष्टुं शक्यते । अतः पाराशरीयविधिः समाजोपयोगी, कृषकोपयोगी च वर्तते ।

हलप्रसारणस्य प्रायोगिकमध्ययनम् –

फाल्गुनमासस्य शुक्लपक्षे दशमीतिथौ तदनुसारेण 2016 तमे वर्षे मार्चमासे अष्टादशदिनाङ्के रायसेनमण्डान्तर्गते सुल्तानगञ्जनामग्रामे कृषिपाराशरग्रन्थोक्तविहित-कालमुहूर्त्तानुसारेण हलप्रसारणं कृतम्।

वैशाखमासे आढकीबीजवपनस्य प्रायोगिकाध्ययनम्-

वैशाखमासशुक्लत्रयोदशीतिथौ तदनुसारेण 2016 तमे ख्रीष्टे वर्षे मई मासे 19 दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गते सुल्तानगञ्जनामकग्रामे राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानस्य भोपालपरिसरस्य ज्योतिषविभागस्य आचार्यहंसधरझा-आचार्यभारतभूषमिश्रमहाभागयोः सन्निधौ कृषिपाराशरग्रन्थनिहितवपनमुहूर्त्तकालादीनामनुसारेण अर्धैकड़ऽपरिमित भूमौ 3 किलोग्रामपरिमित-आढक्याः बीजानां वपनं मया कृतम् । तच्च पाराशरीय वचनं यथा-

वैशाखे वपनं श्रेष्ठं ज्यैष्ठे तु मध्यमं स्मृतम्।
आषाढे चाधमं प्रोक्तं श्रावणे चाधमामम्।।
उत्तरात्रयमूलेन्द्रमैत्रपेत्रेन्दुधातृषु।
हस्तामयमध रेवत्यां बीजवपनमुत्तमम्।।[9]

आढकीबीजानां वपनकालात् चतुर्दशदिनाभ्यन्तरेषु-अङ्कुरणं सञ्जातम्। परन्तुमध्यप्रदेशस्य वैशाखमासे जलवायु-अत्यधिकः उष्णः सञ्जातः । तेन कारणेन अङ्कुरणेन प्राप्ताः लघु-लघु पादपाः किञ्चित् श्यामवर्णीयाः सञ्जाताः। वपनात् मासद्वयाभ्यन्तरे आढक्याः पादपेषु चतुः पञ्च वा शाखाः समागताः । आढक्याः पादपाः मासद्वयाभ्यन्तरे एकहस्तपरिमितं वृद्धिं सम्प्राप्नुवन् । आढकीपादपैः सह केदारेषु लघु-लघु तृणानि समागतानि तदा आढकीपादपानां विकासो अवरुद्धो न स्यात् एतदर्थं मासद्वय-मासत्रयाभ्यन्तरे वा तृणादीनाम् उन्मूलनं कृतम् । तथा च वपनात् चतुर्मासाभ्यन्तरे आढकीपादपेषु प्रसूनानि जातानि, परन्तु पुष्पेषु कीटपतङ्गादीनां प्रकोपोऽपि दृष्टः, तत् प्रकोपनिवारणाय कृषिपाराशरग्रन्थोक्तधान्यव्याधिखण्डन (ऊँ सिद्धिः श्रीगुरुपादेभ्यो नमः । स्वस्ति हिमगिरिः) इति मन्त्रस्य प्रयोगः मया कृतः । तेन मन्त्रेण कीटपतङ्गादि-प्रकोपाणां निवारणं जातम् । तत्पश्चात् वपनकालात् सपादपञ्चमासाभ्यान्तरे सर्वाणि पुष्पाणि प्रकृतिपेलवफलेषु परिणितानि जातानि । सुकुमारफलेषु यदा ईतयः (इल्ली) दृष्टाः तदा तत् शमनार्थं पुनः धान्यव्याधिखण्डनमन्त्रस्य प्रयोगः कृतः तस्मात् ईतीप्रकोपस्य निवारणं सञ्जातम् । वैशाखमासे यदि आढक्याः वपनं क्रियते तदा ईतिभयोऽल्पः भवति तथा फलेषु अन्तः

---

[8] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक –81--83

[9] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक –88-90

ईतिप्रवेशः नैव भवितुं शक्नोति। इत्यस्मिन् प्रयोगे अनुभूतः । वपनकालात् सार्द्धपञ्चमासाभ्यन्तरे आढकीपादपानां कर्तनं कृतम् । तथा च शोधनं कृत्वा 350 किलोग्रामपरिमितं आढकीदलहनम् अर्धैकडक्षितौ सम्प्राप्तम् ।

अस्मिन् आढकीप्रयोगकृषिकर्मणि बीजक्रयपरिश्रमकर्तृभ्यः मया त्रिसहस्ररुप्यकाणि प्रदत्तानि त्रिसहस्राणि विहाय षोडशसहस्ररुप्यकाणां लाभः प्राप्तः । इति शम् ।

ज्यैष्ठमासे आढकीबीजवपनस्य प्रायोगिकाध्ययनम्-

ज्यैष्ठमासशुक्लपञ्चमीतिथौ तदनुसारेण 2016 तमे ख्रीष्टे वर्षे जूनमासे 9 दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गते सुल्तानगञ्ज नामकग्रामे कृषिपाराशरग्रन्थोक्तविहितवपनकालमुहूर्त्तादीनामनुसारेण अर्धैकडपरिमितभूमौ 3 किलोग्रामपरिमित-आढक्याः बीजानां वपनं मया कृतम् । तच्च पाराशरीयवचनं यथा-

वैशाखे वपनं श्रेष्ठं ज्यैष्ठे तु मध्यमं स्मृतम्।
आषाढे चाधमं प्रोक्तं श्रावणे चाधमामम्।।
उत्तरात्रयमूलेन्द्रमैत्रपेत्रेन्दुधातृषु।
हस्तामयमध रेवत्यां बीजवपनमुत्तमम्।।[10]

आढकीबीजानां वपनकालात् एकादशदिनाभ्यन्तरेषु अङ्कुरणं सञ्जातम्। वपनकालात् चत्वारिंशद्दिनान्तरेषु सम्पूर्णकेदारं हरितवर्णमभूत्। वपनात् मासद्वयाभ्यन्तरे आढक्याः पादपेषु चतुः पञ्च वा शाखाः समागताः, आढक्याः पादपाः सार्द्धमासद्वयाभ्यन्तरे एकहस्तपरिमितं वृद्धिं सम्प्राप्नुवन्। आढकीपादपैः सह केदारेषु लघु लघु अत्यधिकं तृणानि सञ्जातानि तदा आढकीपादपानां विकासोऽवरुद्धः प्रभावितो न स्यात् एतदर्थं मासद्वय-मासत्रयाभ्यन्तरे वा तृणादीनाम् उन्मूलनं च कृतम् । तथा च वपनात् सार्द्धत्रयमासाभ्यन्तरे आढकीपादपेषु पुष्पाणि जातानि, परन्तु पुष्पेण कीटपतङ्गादीनां प्रकोपोऽपि दृष्टः तत् प्रकोपनिवारणाय कृषिपाराशरग्रन्थोक्तधान्यव्याधिखण्डनमन्त्रस्य प्रयोगः मया कृतः। तेन मन्त्रेण कीटपतङ्गादि प्रकोपाणां निवारणं जातम्। तत् पश्चात् वपनकालात् सपादचतुर्मासाभ्यन्तरे सर्वाणि पुष्पाणि कोमलफलेषु परिणितानि जातानि । सुकुमारफलेषु यदा ईतयः दृष्टाः तत् शमनार्थं पुनः धान्यव्याधिखण्डनमन्त्रस्य प्रयोगः कृतः तस्मात् ईतिप्रकोपस्य निवारणं सञ्जातम् । वपनकालात् पञ्चमासाभ्यन्तरे आढकीपादपानां कर्त्तनं कृतम् । तथा च शोधन कृत्वा 300 किलोग्रामपरिमितम् आढकी दलहनम् अर्धैकड़क्षितौ सम्प्राप्तम् ।

अस्मिन् आढकीप्रयोगकृषिकर्मणि बीजक्रयपरिश्रमकर्तृभ्यः मया त्रिसहस्ररूप्यकाणि प्रदत्तानि त्रिसहस्राणि विहाय 13500 रुप्यकाणां लाभः प्राप्तः ।

आषाढमासे आढकीबीजवपनस्य प्रायोगिकाध्ययनम्-

आषाढमासशुक्लसप्तमीतिथौ तदनुसारेण 2016 तमे ख्रीष्टे वर्षे जुलाईमासे 11 दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गते सुल्तानगञ्ज नामकग्रामे कृषिपाराशरग्रन्थोक्तविहितवपनकालमुहूर्त्तादीनामनुसारेण अर्धैकड़परिमितभूमौ 3 किलोग्रामपरिमित-आढक्याः बीजानां वपनं मया कृतम् । तच्च पाराशरीयवचनं यथा-

वैशाखे वपनं श्रेष्ठं ज्यैष्ठे तु मध्यमं स्मृतम्।
आषाढे चाधमं प्रोक्तं श्रावणे चाधममम्।।
उत्तरात्रयमूलेन्द्रमैत्रपेत्रेन्दुधातृषु।

[10] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक –88-90

हस्तामयमध रेवत्यां बीजवपनमुत्तमम्।।[11]

आढकीबीजानां वपनकालात् नवदिनाभ्यन्तरेषु अङ्कुरणं सञ्जातम्। वपनकालात् विंशतिदिनान्तरेषु सम्पूर्णकेदारं हरितवर्णं दृष्टम्। वपनात् मासद्वयाभ्यन्तरे आढक्याः पादपेषु चतुः पञ्च वा शाखाः समागताः आढक्याः पादपाः तथा च एकहस्तपरिमितं वृद्धिं सम्प्राप्नुवन्। आढकीपादपैः सह केदारेषु लघु लघु अत्यधिकं तृणानि सञ्जातानि तदा आढकीपादपानां विकासावरोधः प्रभावितो न स्यात् एतदर्थं मास द्वय-मासत्रयाभ्यन्तरे वा तृणादीनाम् उन्मूलनं च कृतम् । तथा च वपनात् त्रिमासाभ्यन्तरे आढकीपादपेषु पुष्पाणि जातानि, परन्तु पुष्पेण कीटपतङ्गादीनां प्रकोपोऽपि दृष्टः तत् प्रकोपनिवारणाय कृषिपाराशरग्रन्थोक्तधान्यव्याधिखण्डनमन्त्रस्य प्रयोगः मया कृतः। तेन मन्त्रेण कीटपतङ्गादि प्रकोपानां निवारणं जातम्। तत् पश्चात् वपनकालात् सपादचतुर्मासाभ्यन्तरे सर्वाणि पुष्पाणि कोमलफलेषु परिणितानि जातानि । सुकुमारफलेषु यदा अत्यधिक- ईत्याः दृष्टाः तत शमनार्थं पुनः धान्यव्याधिखण्डनमन्त्रस्य प्रयोगः कृतः तेन मन्त्रप्रभावेण ईतयः अल्पमात्रासु मृता एव जाताः। वपनकालात् सार्धचतुर्थमासाभ्यन्तरे आढकीसस्यानि पक्वानि जातानि। तदा सम्पूर्ण सस्यस्य कर्त्तनं शोधनं च कृत्वा 250 किलोग्रामपरिमितम् आढकी दलहनम् अर्धैकड़ऽमितौ सम्प्राप्तम् ।

अस्मिन् आढकीप्रयोगकृषिकर्मणि बीजक्रयपरिश्रमकर्तृभ्यः मया सार्धत्रिसहस्ररूप्यकाणि प्रदत्तानि सार्धत्रिसहस्राणि विहाय 10250 रुप्यकाणां लाभाः प्राप्ताः

श्रावणमासे आढकीबीजवपनस्य प्रायोगिकाध्ययनम्-

श्रावणमासशुक्लद्वितीयातिथौ तदनुसारेण 2016 तमे ख्रीष्टे वर्षे अगस्तमासे 04 दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गते सुल्तानगञ्ज नामकग्रामे कृषिपाराशरग्रन्थोक्तविहितवपनकालमुहूर्त्तादीनामनुसारेण अर्धैकड़ऽपरिमितभूमौ 3 किलोग्रामपरिमित-आढक्याः बीजानां वपनं मया कृतम् । तच्च पाराशरीयवचनं यथा-

वैशाखे वपनं श्रेष्ठं ज्यैष्ठे तु मध्यमं स्मृतम्।
आषाढे चाधमं प्रोक्तं श्रावणे चाधमामम्।।
उत्तरात्रयमूलेन्द्रमैत्रपेत्रेन्दुधातृषु।
हस्तामयमध रेवत्यां बीजवपनमुत्तमम्।।[12]

आढकीबीजानां वपनकालात् सप्ताष्टदिनेषु वा अङ्कुरणं सञ्जातम्। परन्तु अत्यधिक वृष्टिकारणात् सर्वाणि अङ्कुराणि नष्टानि जातानि।

कृषिवैज्ञानिकमतानुसारं आढकीवपनस्य प्रायोगिकमध्ययनम् –

कृषिवैज्ञानिकानाम् आढकीवपनकालविषये मतमस्ति-शीघ्रपक्वादीनां वपनं जूनमासस्य प्रथमपक्षे करणीयम्। तदनुसारेण 2016 जूनमासे त्रयोदशे दिनाङ्के रायसेनमण्डलान्तर्गते सुल्तानगञ्जनामकग्रामे अर्धैकडपरिमितभूमौ 3 किलोग्राम आढकबीजानां वपनं कृतम्। वपनकालात् नवदिनान्तरं बीजस्य अङ्कुरणं जातम्। वपनकालात् अष्टदशदिनान्तरं सर्वं केदारं हरितवर्णमयं दृष्टम्। वपनकालात् सार्धैकमासाभ्यन्तरे आढकीपादपैः सह घासतृणादीनामपि विकासो जातः तत् निवारणाय आढकीपादपान् परितः भूमेः कर्षणेन घासतृणादीनामुन्मूलनं कृतम्। आढकीपादपानां विकासाय 150 मिलिग्रामपरिमितः उर्वरकन्ट्रोलप्लसनामक-ओषधेः प्रयोगः कृतः तेन

[11] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक –88-90

[12] कृषिपाराशरः, कृषिखण्डः, श्लोक –88-90

प्रयोगेण आढकीपादपानां शीघ्रविकासः सञ्जातः। वपनकालात् मासद्वयाभ्यान्तरे आढकीपादपेषु पञ्च षट् शाखानाम् वृद्धिः एवञ्च हस्तद्वयपरिमितस्य विकासो जातः। वपनकालात् मासत्रयभ्यान्तरे आढक्याः पादपेषु पुष्पाणि समागतानि। पुष्पेषु कीटपतङ्गादीनां प्रकोपो दृष्टः। तत् प्रकोपनिवारणाय 25 किलोग्रामः (D.A.P.) डी.ए.पी. नामकस्य ओषधेः प्रयोगः कृतः। तेन प्रयोगेण कीटपतङ्गादीनां विनाशः जातः एवञ्च आढकीपादपेषु पुष्पाणां विकासोऽपि जातः। वपनकालात् सार्द्धत्रयमासान्तरे सर्वाणि पुष्पाणि फलेषु परिणितानि जातानि, परन्तु फलेषु ईतिप्रकोपः दृष्टः ता ईतयः फलेषु छेदनं कृत्वा अन्तः प्रवेशं कृतवत्यः। ईतिप्रकोपनिवारणाय 50 मिलिग्रामफसीनामकस्य ओषधेः प्रयोगः कृतः। तेन प्रयोगेण प्रकोपस्य शमनं जातम्। वपनकालात् चतुर्थमासाभ्यन्तरे सर्वाणि फलानि पक्वानि जातानि तेषां छेदनं कृतम्। ततः शोधनं कृत्वा 342 किलोग्रामपरिमितं आढकीदलहनं अर्धैकडमितं सम्प्राप्तम्।

अस्मिन् कृषिवैज्ञानिकाढकीप्रायोगिकवपनकर्मणि बीजोषधिक्रयपरिश्रमकर्तृभ्यः षष्ठसहस्ररूप्यकाणि प्रदत्तानि षष्ठसहस्राणि विहाय 10,610 रूप्यकाणि प्राप्तानि।

निष्कर्षः -

कृषिपराशरग्रन्थ-आधनुकविज्ञानयोः आढकीवपनस्य प्रायोगिकाध्ययनेन ज्ञायते यत् वर्तमानकाले कृषिपाराशरोक्तपद्धतिः उत्तमा वर्तते तथा च अल्पव्ययेन अत्यधिकलाभकारिणी कृषि प्राचीनकृषिः वर्तते इति शोधपत्रस्य निष्कर्षः।

ज्यौतिषे वृष्टेःपूर्वानुमानम्

डॉ. संतोष गोडरा
शिक्षाशास्त्रविभाग- प्राध्यापिका
केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः,श्रीरणबीरपरिसरः जम्मू

भूमिका-

'वृषु सेचने'[1] इत्यस्मात् भ्वादिगणस्थाद् धातोः 'स्त्रियां क्तिन्'[2] इति पाणिनिसूत्रात् 'क्तिन्' प्रत्यये कृते 'ष्टुत्वं[3] च वर्षणार्थे वृष्टिशब्दो निष्पद्यते वृष्टेरर्थद्वयमस्ति वृष्टिवर्षमिति अमरेण उच्यते - 'वृष्टिर्वर्षं तद्'[4] वृष्टिशब्दस्य प्रसङ्गे शब्दार्णवेऽपि उल्लेखः प्राप्यते यथा - अथ वृष्टिवर्षमस्त्री केचिदिच्छन्ति वर्षणम्'[5] वृष्टेरर्थस्य विवेचनावसरे हैमोऽपि स्वीयं मतं स्थापितं यथा - ''वर्षस्तु समाद्वीपांशवृष्टित्षु। वर्षवरेऽपि वर्षास्तु प्रावृषि''[6] इति।

वृष्टिपदेन जलवृष्टिं सूचयति ज्यौतिषे वृष्टेरनेकानि कारणानि प्रतिपादितानि
यत् भास्करकिरणैर्जलस्य बाष्पीकरणं तेन च मेघो जायते, तदेव वर्षति, यथोक्तं मनुना - 'आदित्याज्जायते वृष्टिः'[7] तात्पर्यमिदमस्ति सूर्ये एव वृष्टेः मूलकारणम्। एवमेव लभ्यते ऋग्वेदसंहितायाम् -

अपां नपातमवसे सवितारमुपस्तुहि।
तस्य व्रतान्युश्मति इति।[8]

कीदृशं सवितारम् ? अपां नपातं जलस्य न पालकम्। सन्तापेन शोषकम् इत्यर्थः। किन्तु व्यासदृष्टिः सर्वथा भिन्ना वृष्टेः विषये एतदपेक्षया सूक्ष्माऽपि च। व्यासदृष्ट्या वर्षायां न केवलं सूर्यरश्मयः एव हेतुरपितु चन्द्रस्य वायोश्चापि भूमिकाऽस्मिन् वर्षणे प्रामुख्यं भजते यथोक्तम्[9] -

आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम्।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्तते।।
यत् सोमात् स्रावते सूर्यं तदभ्रेष्ववतिष्ठते।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलं भुवि।। इति

अर्थात् सूर्यरश्मिशोषितजलमन्तरिक्षं प्रति याति, तच्च चन्द्ररश्मिसंयोगेन आर्द्रतां प्राप्य मेघरूपं धारयति। मेघाश्च वाय्वाघातेन पुनः जलं वर्षन्ति। एतेन द्वौ तथ्यौ समक्षं आयातः-

1. न केवलं बाष्पा एव मेघाः तदस्तित्वं बाष्पादपि भिन्नम्।
2. सूर्येण जलस्य केवलं बाष्पीकरणं अपितु मेघीकरणमपि भवति।

एवमेव वायुपुराणे निगदितम् -

आदित्यरश्मिभिर्पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति।[10]

---

[1] पाणिनिधातुपाठः भ्वादिगणधातुसंख्या 106 पृ.सं. -

[2] पाणिनीयाष्टाध्यानीयाष्ट सू. 3/3/94

[3] तत्रैव सूत्र 8/4/41

[4] अमरसिंहकृत अमरकोष 1/3/11 पृ.सं. 41

[5] तत्रैव व्याख्यायाम् - 1/3/11 पृ.सं. 41

[6] तत्रैव व्याख्यायाम् - 1/3/11 पृ.सं. 41

[7] मनुस्मृतिः- 3/76

[8] ऋग्वेदः - 1//2/6

[9] वायुपुराणम् - 1/51/14-15

[10] कृषिपाराशरः, भूमिकायाम्

पुनः पतति तद् भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः।। इति.

एवमेव यजुर्वेदेऽपि प्रोक्तम् यत् - ''जलकणाः वाष्परूपे संघीभूय वायुरूपे इमे कणाः आकाशे यान्ति तेन च वृष्टिर्भवति। वृष्टिहेतुविषये उपनिषत्सु बहुधा दिग्दर्शनं भवति। यथा - छान्दोग्योपनिषदि प्राप्यते -

तस्मिन्नावसत्सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते। तथैतमाकाशमाकाशद्वायुं, वायुर्भूत्वा धूमो भवति। धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति। अभ्रं भूत्वा मेघो भवति प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमन्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एवं भवति।[11] इति

शतपथब्राह्मणे वृष्टेः कारणमग्निरिति प्रतिपादितं तद्यथा -

'अग्नेवै धूमो जायते धूमादभ्रम् अभ्राद्वृष्टिः'[12]

पुराणेषु वृष्टेः कारणं सूर्यकिरणैर्जलस्य बाष्पीकरणप्रक्रियया निगदितम् एवञ्च विहितकाले तज्जलं वर्षति यथोक्तं कूर्मपुराणे - 'सूर्यकिरणपीतजलं मेघेषु तिष्ठति, अर्थात् सूर्यकिरणैः जलस्य बाष्पीकरणं भवति, तज्जलं अभ्ररूपं धारयति तथा च विहितकाले भूमौ वृष्टिं करोति। ततस्तज्जलं यथाकालं भूमौ वर्षति, तेन च समुद्रः पूरितो भवति। तथैव च ब्रह्माण्डपुराणेऽप्युक्तम् - तेजः (सूर्यः) भौतिकवस्तुभ्यः किरणैः जलं गृह्णाति। प्राचीनानां मते सूर्य एव वृष्टिकारकः भवति यथोक्तम् -

'सूर्यात् हि जायते तोयं तोयात् सस्यानि शाशिनः।[13]

तथैव ईश्वरप्रेरिताऽपि वृष्टिर्भवतीति प्राचां मतम्। पूर्वोक्तवृष्टिपद्धतेः ब्रह्मवैवर्तपुराणे वर्णनं प्राप्यते यथा -

सूर्यग्रस्तञ्च नीरञ्च काले तस्मात् समुद्भवः।
सूर्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः।
हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम्।
दद्यात् घनाय तद् दद्याद् वातेन प्रेरितो घनः।।
स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितम्।
ईशेच्छयाऽऽविर्भूतं च न भवेत् प्रतिबन्धकम्।।[14]

अत्र प्रथमश्लोकस्य पूर्वार्द्धे 'काले' इति शब्दः समागतः सः शब्दो वृष्टिगर्भावधिं संसूचयति । द्वितीयश्लोके सूर्यकरैर्जलादानस्य पद्धतिः हस्तिकरेण जलादानतुल्यत्वाद् रूपकेण वर्णितो विद्यते। कादम्बिनीग्रन्थे वृष्टेः कारणं देवता इति सिद्धान्तं ओझामहाभागेन सिद्धान्तितम् यथा -

देवान् वसव्यान् शर्मणयान् सपीतीन् मरुतोऽपि च।
अभ्यर्थये वशे येषामेषा वृष्टिः प्रवर्तते।।[15]

मधुसूदनओझा महाभागेन उक्तं यत् वृष्टेः कारणं देवताः सन्ति इति, ताः देवताः कथं वृष्टेः कारणभूताः ? अस्याः जिज्ञासायाः समाधानं तैत्तिरीयसंहितायां प्राप्यते यथा -

अग्निर्वा इतोवृष्टिमुदीरयवि। मरुता सृष्टां नयन्ति। यदा खलु वा ऽसावादित्यो न्यङ्रश्मिभिः पर्या वर्तते अथ वर्षति।[16]

गीतायां तु वर्षायाः हेतुत्वे यज्ञकारणमिति प्रोक्तम् -

अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः।।[17]

---

[11] छान्दोग्योपनिषद् 5.10.56

[12] शतपथब्राह्मणम् – 5.3.5.17

[13] भारतीय वृष्टिविज्ञान परिशीलन, प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी, पूर्ववाक्, पृष्ठ- (iv)

[14] ब्रह्मवैवर्तपुराणे, श्रीकृष्णजन्मखण्डे, 21 तमेऽध्याये, श्लोक- 105-107

[15] कादम्बिनी श्लोक - 6, पृ. - 11

[16] तैत्तरीय संहिता 2/4/10

[17] श्रीमद्भगवद्गीता – 3.14

किन्तु आधुनिकानां मतं वृष्टिसन्दर्भे - यदा आर्द्रवायोः अपारमात्रा कैश्चित् कारणैः उपरि प्रयाति, तदा तस्य तापमाने न्यूनता आयाति अन्ते च उच्चैः गत्वा तस्मिन् संघनन- प्रक्रियापि सम्पद्यते। उपरि गच्छति वायौ संघननप्रक्रियया मेघानामुत्पत्तिर्भवति। मेघाः जलकणैर्हिमकणैः वा निर्मिताः भवन्ति। इमे जलबिन्दवः संयुक्तीभूय गुरुबिन्दुषु परिवर्तिताः भवन्ति। ते एव संघीभूताः जलबिन्दवः गुरुत्वात् मेघान् परित्यज्य भूमौ वर्षन्ति। इत्थं मेघकणानाम् आकारवृद्धिप्रक्रिया एव वृष्टिक्रमः इति कथ्यते।[18]

प्राचीनकालादेव भारतदेशस्तु कृषिप्रधानदेशोऽस्ति। भारतेन कृषिकर्मणः महत्त्वं ज्ञात्वा अधिकाधिकान्नोत्पादनं कृत्वा तस्य प्रक्रिया विकासिता। वैदिकदर्शनानुसारेण **'अन्नमयो हि नो देहः'** तस्मादन्नमेव संसारस्य प्राणाः तद्धि वर्षाधीनम्। अर्थात् वृष्टिमाहात्म्यं वर्तत एव अधुनाऽपि पुराऽपि च। यथैव ह्याचार्यो वराहमिहिरः -

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्।
यस्मादतः परीक्ष्य प्रावृट्कालः प्रयत्नेन।।[19]

भाविवृष्टिज्ञानाय राजानयनस्य महती भूमिका वर्तते यथोक्तम् आचार्यपराशरेण -

अतो वत्सरराजानं मन्त्रिणं मेघमेव च।
आढकं सलिलस्यापि वृष्टिज्ञानाय शोधयेत्।।[20]

एतेषां वर्षेश-मन्त्रि-मेघ-आढकानां शोधनेन आगामिवर्षस्य वृष्टेः पूर्वानुमानं सम्यक्तया भवति। आचार्य पराशरेण क्रमशः वर्षेश-मन्त्रि-मेघ-आढकानां शोधनप्रक्रिया प्रतिपादिता। अत्र वर्षेशशोधनप्रक्रिया कथ्यते पराशरेण यथा -

शाकं त्रिगुणितं कृत्वा द्वियुतं मुनिना हरेत्।
भागशिष्टो नृपो ज्ञेयो नृपान्मन्त्री चतुर्थकः।।[21]

अर्थात् शकसम्वत्सरस्य त्रिभिः गुणनं कृत्वा द्वियुतं करणीयम्। द्वियुतं गुणनफलस्य सप्तभिः विभजेत् यत् शेषं प्राप्यते। तत्संख्यको ग्रहः राजा भवति। नृपात् चतुर्थो यो ग्रहो सः ग्रहः मन्त्री भवति इति। उदाहरणेन स्पष्टं ज्ञानं भवति।

ज्योतिषशास्त्रस्य सिद्धान्तसंहिताग्रन्थयोः वर्षेशशोधनप्रक्रियायां महान्तो भेदाः प्राप्यन्ते। सूर्यसिद्धान्ते वर्षेशानयनाय अहर्गणेन वर्षेशसाधनस्य प्रक्रिया वर्णिता। यथोक्तं सूर्यसिद्धान्ते -

मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ।[22]

अस्य आशयः अस्ति -

$$\left[\left\{\frac{\text{अहर्गणः}}{30} \times 2\right\} + 1\right] \div 7 = \text{शेषतुल्यः मासेशः।}$$

तथा -

$$\left\{\left(\frac{\text{अहर्गणः}}{360} \times 3\right) + 1\right\} \div 7 = \text{शेषतुल्यः वर्षेशः।}$$

किन्तु मकरन्दसारिण्यां लिखति यत् पञ्चाङ्गेषु वर्षेशः तस्य दिनस्य स्वामी मन्यते यस्मिन् दिने चैत्रशुक्लप्रतिपदा भवति एवं मन्त्री तद्दिनस्य भवति तद्दिने मेषसंक्रान्ति भवति। मेघेशः तद्दिनस्य स्वामी भवति यद्दिने आर्द्रानक्षत्रं संजायते अनेन विचारेण सम्पूर्णवर्षस्य फलं निष्कृष्यते। यथोक्तं मकरन्दसारण्याम् -

---

[18] जलवायु विज्ञानम् 232 पृष्ठे

[19] बृहत्संहिता, गर्भलक्षणाध्यायः, श्लोकः -1

[20] कृशिपाराशरः, वृष्टिखण्डः, श्लोक-2

[21] कृशिपाराशरः, वृष्टिखण्डः, श्लोक-3

[22] सूर्यसिद्धान्तः, मध्यमाधिकारः, श्लोक-52

चैत्रशुक्लप्रतिपद्दिवसे योः वारः सः राजा।
मेषसंक्रान्तिदिवसे यो वारः स मन्त्री।।
कर्कसंक्रान्तिदिवसे यो वारः स सस्याधिपः।
तुलासंक्रान्तिदिवसे यो वारः स नीरसाधिपः।।
आर्द्राप्रवेशदिवसे यो वारः स मेघाधिपः।
धनुसंक्रान्ति संक्रान्तिदिवसे यो वारः स पश्चिमधान्याधिपः।।[23]

राजामन्त्र्यादीनां निर्णये चैत्रशुक्लसूर्योदयव्यापिनी प्रतिपदायां यो वारो भवति तस्य वारास्याधिपतिः राजा भवति। यदि दिनद्वयव्यापिनीप्रतिपदा भवेत् तदा पूर्वदिनस्य वारेशः राजा भवति। यदि कदाचित् सूर्योदयव्यापिनीप्रतिपदा न भवेत् तदा पूर्वदिवसस्याधिपतिः राजा भवति यथोक्तं रत्नावल्याम् -

चैत्रे शुक्लप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः।
उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात्।।[24]

फलोदये ग्रन्थे अयमेव प्रसङ्गो प्राप्यते यथा -

चैत्रस्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ यो वारः स उक्तो नृपतिस्तदाब्दे।
मेषप्रवेशे किल भास्करस्य यस्मिन्दिने स्यात्स तु राजमन्त्री।।[25]

पराशरसंहितायामपि एवमेव भावः – चैत्रमासस्य शुक्लप्रतिपदातिथौ यो वारः भवति, तस्य वारस्य यो ग्रहः अधिपतिः स्यात् सैव ग्रहः वर्षस्य राजा भवति। मेषसंक्रान्ति प्रारम्भकाले यो दिवसः स्यात् स एव दिवसस्य अधिपतिः ग्रहः राजमन्त्री भवति।

मेषादिवाराधिपतिं शरत्पतिं
चैत्रादिवाराधिपतिं चमूपतिम्।
बाह्ली वङ्गाकलिङ्गमालवाः
पौण्ड्राश्च गौडा प्रवदन्ति मागधाः।।[26]

सर्वेषां ग्रन्थानां मते चैत्रप्रतिपदि यो वारः तस्य वारस्याधिपतिः राजा भवति। परन्तु आचार्यपराशरस्य दृष्टिः सर्वदा भिन्ना राजादिनिर्णये विद्यते। पराशरेण गणितेन साधितवर्षेशः एव मन्यते।

अनेनाध्ययनेन ज्ञायते यत्.ज्यौतिषे वृष्टेः पूर्वानुमानाय अनेकाः पध्दत्यः प्रतिपादिता वर्षैशद्वारा वृष्टेः पूर्वानुमानं युक्तियुक्तम्।

---

[23] कृ. पा. पृष्ठ - 20

[24] रत्नावली, पृ.- 18

[25] वृद्दैवज्ञरञ्जनम्, प्रकरणम्-15, वर्षेशनिर्णयप्रकरणम्, श्लोक-10, पृष्ठ -26

[26] पञ्चाङ्गपीठिकालेखनप्रक्रिया पृष्ठ 26

ऋग्वेदसंहितायां कृषिविधिः तत्साधनानि च

ज्योति कुमारी, शोधच्छात्रा,

श्रीलालबहादुरराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली

jyotisinsinwar347@gmail.com

भारतवर्षे चत्वारो वर्णाः विराट्पुरुषाद् उत्पन्नाः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः।[1] तत्र सर्वेषां कर्माणि निश्चितानि। वैश्यस्य कर्माणि निर्धारितानि गीतामनुस्मृत्योः क्रमशः –

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्।[2]

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

वाणिज्यं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।[3]

प्राचीनभारते आजीविकासाधनानाम् आर्थिकोत्पादनानाम् उपकरणानां विकासः वैदिकसंहितासु तदुत्तरवर्तिवैदिकसाहित्ये च स्पष्टया प्रमाणरूपेण प्राप्यते। प्राचीनसाहित्याध्ययनाद् ज्ञायते यत् प्राचीनभारते आर्थिकव्यावसायिकशिक्षायां पशुविज्ञान–वनस्पतिविज्ञानादिविविधोद्योगशिक्षायाः सम्यक् विकासप्रकाशः जातः आसीत्। कृषिपशुपालनवाणिज्यानां शिक्षा वार्ता कथ्यते स्म। महर्षिमनुमते चतस्रो विद्याः एव लोकस्य संस्थितिनिर्माणं कुर्वन्ति –

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वतीः।

विद्या ह्येताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः।।[4]

भारते जीविकासाधनेषु कृषिः प्रामुख्यं भजते। वैश्यकर्मणि कृषिसमुल्लेखः प्राप्यते। भारतीयजलवायुः षड्ऋतुसंयुक्तः कृषकर्मणि सर्वथा अनुकूलः उपयुक्तश्च। भूमिः उर्वरा, प्राकृतिकवर्षाधिक्यमतिरिच्य नदीकूल्याकूपवापिजलाशयादिना सिञ्चनयोग्या अस्ति। अतः भारते प्राचीनकालादेव कृषेः समुचितो विकासः जातः आसीत्। वैदिकसंहितासु उत्तरवर्तिसाहित्ये च कृषिविकासवर्णनं प्रचुरमात्रायां लभते।

वेदे अन्नोत्पादयित्री वर्षासिञ्चितभूमिः वन्द्यते–

यस्यान्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।

---

[1] ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।। ऋग्वेदसंहिता १०/९०/१२

[2] श्रीमद्भगवद्गीता १८/४४

[3] मनुस्मृति १/९०

[4] मनुस्मृति

भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्ते वर्षमेदसे।।[5]

ऋग्वेदे द्यूतक्रीडां विहाय कृषिकर्म करणाय उच्यते –

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषिस्व।[6]

ऋग्वेदीयपदस्य **कृष्णसीतासः**[7] इत्येतस्य वैदिककोषे राजवीरशास्त्री **कृष्णा कृषिसाधनी सीता येषां ते** अर्थमुद्धृतवान्।[8] एवम्प्रकारेण कृषेर्विधानम् आजीविकायै जीवननिर्वाहाय च वैदिकसंहितायां बहुधा लिखितम्।

कृषिविकासाय कृषिसाधनानि महत्वपूर्णानि। प्राचीनकाले येषां कृषिसाधनानां विधीनां च प्रयोगः क्रियते स्म, भारतीयग्रामेषु तेषामेव साधनानां विधीनां च प्रयोगोऽद्यापि क्रियते। वर्तमानसमये अनेकेषां नवीनानां वैज्ञानिकानाम् आधुनिकानां साधनोपकरणानाम् आविष्कारे विकासे च अद्यापि प्राचीनानां साधनानामेव अधिकतरः प्रयोगः कृषकैः क्रियते।

कृषेः प्रायः नैकोपकरणानामुल्लेखः ऋग्वेदीयमन्त्रे प्राप्यते–

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।[9]

सायणभाष्ये अस्यार्थः आचार्यसायणेन सरलगिरया स्पष्टीक्रियते, **"वाहाः बलीवर्दाः" शुनं सुखनामैतत्। सुखं यथा भवति तथा वहन्त्विति शेषः। तथा "नरः नेतारो मनुष्याः कर्षकाः" शुनं कुर्वन्तु। तथा "लाङ्गलम्" अपि शुनं कृषतु। "वरत्राः वरणेन त्रायमाणाः प्रग्रहाः "शुनं" बध्यन्ताम्। "अष्ट्रां प्रतोदं" शुनम् "उदिङ्गय" प्रेरय। शुनाख्यो वाय्विन्द्रयोरन्यतमः सुखकृद्देवः। तदनुग्रहादेतत्सर्वं भवत्विति तस्य श्रुतिसामान्येन स्तुतिः।**[10]

वैदिकयुगे षड्भिः, अष्टभिः द्वादशभिश्च गोभिः पृथिवीकर्षणोल्लेखः ऋग्वेदे[11], अथापि काठकसंहितायां चतुर्विंशतिगोभिरपि उल्लेखः अस्ति।[12] कृषकजनाः तस्याम् आकृष्टभूम्यां शस्येभ्यो बीजानि रक्षन्ति स्म। दात्रेण उत सृणि–द्वारा पक्वशस्यानि छित्त्वा अन्नस्य उत्पादनं करणाय स्तुतेः उल्लेखः बहुधा प्राप्यते। अमुमेव भावार्थं प्रस्फुटीकुर्वन्ति अधोदत्ताः मन्त्राः

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वे कृते योनौ वपतेह बीजम्।

गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्।।[13]

---

[5] अथर्ववेदसंहिता १२/३/४२

[6] ऋग्वेदसंहिता १०/१४/१३

[7] ऋग्वेदसंहिता ८/६/४८

[8] वैदिककोष, पृष्ठ ३१३

[9] ऋग्वेदसंहिता ४/५७/४

[10] ऋग्वेदसायणभाष्यम् ४/५७/४

[11] ऋग्वेदसंहिता ८/६/४८

[12] काठकसंहिता २८/८

[13] ऋग्वेदसंहिता १०/१०१/३

सीरा युञ्जनि कवयो युगा वितन्वते पृथक्।

धीरा देवेषु सुम्नया।।[14]

निराहावान् कृणोतन सं वरत्रा दधातन।

सिञ्चमिहा अवतमुद्रणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्।।[15]

वैदिकसंहितायां कृषिसंवर्धनाय विविधप्रयोगाणाम् आविष्कारः परिलक्षितो भवति। उर्वरकस्य कृते **शकृत्पुरीषपदयोः** प्रयोगो लक्ष्यते। सिञ्चनस्य कृते च प्रायः वर्षावलम्बिनोऽपि कूपकूल्यादिप्रयोगेण ऊषरभूमिः उर्वरा क्रियते। **कृषियोग्या भूमिः अप्नस्वती ऊषरभूमिश्च अर्तना पदेन उच्यते।** ऋग्वेदे इन्द्रः उर्वराभूमेः स्वामी प्रोक्तः। राज्यं राष्ट्रभूमिम् उर्वरां विधानाय सर्वदा यतताम्।[16] ऋतवः कृषिमुत्तमां कुर्वन्ति, कूल्याः प्रवाहयति जलाशयाज्जलम् आनयति, ऋतुभिरेव रेगिस्तानेष्वपि अन्नम् उत्पद्यते।[17] अपरत्र ऋग्वेद एव भूमिसिञ्चनाय मेघैः पर्याप्तमात्रायां वर्षायां सति पृथिवी शस्यैः भरिता भवति।[18] बलवज्जलदो मेघः वनस्पतिषु गर्भरूपेणापो दधाति। अनावृष्ट्या वर्षायै यज्ञविधानं विहितम्। मेघैः पोषित–सिञ्चितकारणात् भूमिरियं **पर्जन्यपत्नी** शब्देन उच्यते।[19]

आचार्यप्रियव्रतकृतग्रन्थे **वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त** इत्यस्य द्वितीयखण्डे सिञ्चनाय कूल्याखननप्रयोगाय वेदमन्त्राधृतं विस्तृतचर्चावर्णनमस्ति। मातृभूम्यै उच्यते, **"यस्यां भूम्याम् आपोऽस्मत्परिचराः सम्भूय अप्रमादम् अहर्निशं समानतया वहन्ति, सा अनेकजलधारायुक्तभूमिरस्मभ्यम् अन्नं ददातु। अस्मान् सा तेजसा कान्त्या च सिञ्चतु।**[20]

किमपि कार्यं कियतीं सफलतां प्राप्स्यति, तत् तस्य कार्यस्य कृते प्रयुक्तानि साधनानि तस्य कार्यविधिश्च ब्रूतः। अद्य भारते कृषिक्षेत्रे नैकानि यन्त्राणि आगतानि, नैकाः विधयः सन्ति। वर्तमाने कृषिक्षेत्रे गवेषणा प्रचलति । गवेषणामागताः। विविधप्रकाराणामुर्वरकाणां प्रचुरः प्रयोगो विधीयते, यस्मात् कृषिर्विकृतिं प्रयाति किन्तु ऋग्वेदे कृषिपद्धतेः, साधनानां च विहितवर्णनं ह्यत्र पत्रे विवृतम्। तस्मिन् काले ईर्ष्याद्वेषरहितेन सन्तोषसुखभावेन कृषिक्षेत्रे भूमिबलीवर्दजलोर्वरकखननखन्यादीनि उपकरणानि विकसितानि जातानि आसन्। वैदिककालीनकृषिद्वारा कृषकः अधुकं लाभं प्राप्नोति नास्त्यत्र सन्देहलेशः।

---

[14] ऋग्वेदसंहिता १०/१०१/४

[15] ऋग्वेदसंहिता १०/१०१/५

[16] कौषीतकिब्राह्मणम् १६/१/३

[17] ऋग्वेदसंहिता ४/५७/३

[18] ऋग्वेदसंहिता ४/५७/७

[19] अच्छावद तवसा गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसाऽऽवियास।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्।। ऋग्वेदसंहिता ५/८३/१

[20] आचार्यप्रियव्रतः, वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३

"वैदिक कृषि: (नक्षत्रादि आधारेषु कृषिः व्यवस्था)"

शोधच्छात्रः - सतीश नौटियालः, (साहित्यविभागः)
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः
(केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः) नवदेहली-११००१६
दूरभाष- +919560557998
अणुसंकेतः- satishosmi22n@gmail.com

नमो वृक्षेभ्यः वनानां पतये नमः
ओषधीनां पतये नमः वृक्षाणां पतये नमः
अरण्यानां पतये नमः ॥

कृषि कार्यास्य आरम्भः तु मानवेन नवपाषाण कालादैव आरम्भं क्रियते। सैन्धव सभ्यतायाः जनाः साधुतया परिचिताः सन्ति।, येन प्रमाणेन हड़प्पा संस्कृतेः प्राप्तानि अवशेषणानि अस्माकं सम्मुखे दृश्यते। वैदिक कालात् एव कृषिः प्रधान सभ्यता रूपेण विकसितः अस्ति।

ऋग्वेदस्य दशमे मण्डले कृषिः कार्यस्य विधिः एवम् उपकरणानां विस्तृतं वर्णनम् अत्र प्राप्यते। अत्र कृषिकर्म एव प्रधान:। सकलस्य देशस्य अन्नदाता भवति । सः वृष्टयतपन् अविगण्य क्षेत्रे आदिनं कार्यं करोति। हलात् क्षेत्रं कर्षति। समये बीजानि वपति । क्षेत्रं पुत्रवत अहोरात्रं रक्षति । बीजा अनडकुरितानि सस्यनि जलेन सिञ्चति । तत्र कुल्याः कृत्वा क्षेत्रं काले जलेन सिञ्चति । केषुचित्क्षेत्रेषु इदृशं सौकार्यं न प्राप्यते।

अन्नदातुः परिस्थितिः शोचनीया वर्तते । आस्यां दिशि सर्वैः प्रयतितव्यम् । सहानुभूत्या च वर्तितव्यम् । सर्वकारः तस्य साहाय्यार्थं यद्यपि प्रयतते तथापि तस्य कष्टं न दूरीकृतम्।

क्षेत्रस्य कार्यं तु बलिवर्द माध्येन भवति । बीजरोपणं सिंचन कार्यं च नियमेन भवति। यदा अन्नं परिपक्वं संजातं पुनः दात्रादि माध्यमेन तस्य कर्तनकार्यम् । प्रागंणेषु अन्नं एकत्रिकरणं कृत्वा पुनः पादेन उत वा यत्रमाध्यमेन अन्नस्य तस्य आवरणेन निष्कासनं भवति । ऋग्वेदानुसार उदरनामके पात्रे तस्य प्रयोगः बभूव।

ऋग्वैदिककाले वैदिककृषिकार्यस्य महत्तमोपयोगिता एवं सांस्कृतिकोन्नताः

"अक्षय दिव्य कृश्मित क्रशस्वाहा" ऋग्वेदे (10/347)

द्यूत कार्यं परित्यज्य कृषिः कार्येषु प्रवृताः भवामः ।
तस्य कला विज्ञान विषये च तस्य उपयोगितायाः ज्ञानम्।
वेदेषु कृषिः व्यवसायस्य अत्यधिकं महत्वपूर्णं स्थानं प्रदीयते । किमर्थं अन्नेनैव वयं जीवामः।

प्राणिनां पालनं पोषणं च तेन माध्यमेन एव सम्भवति। एतत् तु प्रमुखं स्रोत्रं दृश्यते। आर्य जनानां तु प्रधानकर्म एव कृषिः कार्यं अस्ति। ऋग्वेदे हलस्य कृते 'लांगलम्' शब्दस्य प्रयोगः क्रियते उत वा 'सीर' शब्दस्य प्रयोगः जायते । उत्पादकेषु यत् निर्धारितं क्षेत्रम् अस्ति तस्य कृते तु सर्वत्रैव उर्वरा इति संज्ञा प्रदीयते ।

ऋग्वेदस्य चतुर्थे मंडले कृषिसम्बद्धानि श्लोकानि सन्ति । तस्य महत्वं तत्र प्रतिपाद्यते। भूम्योपरि कस्यापि किमपि स्वाधिकारं तस्मिन् समये न भवति। सर्वं कार्यं तु सामूहिकतायां भवति । जनानां कल्याणाय च भवति । कृषिकार्यं सम्माननीयं कार्यं अस्ति। ऋग्वैदिककाले जलमार्गस्य कृते कुल्याः शब्दस्य प्रयोगः दृश्यते। क्षेत्रेषु उत्पादनक्षमतयाः विकासः भवतु तस्य कृते सिंचानादिककार्यं भवति। धान्यं यवं च खाद्यवस्तुनि आदाय आर्य जनाः

स्वपोषणं कुर्वन्ति। प्रवैदिककालेऽपि कृषि: महत्वं अत्यधिकं वर्धते। वृहदारण्यकोपनिषदादि स्थानेषु अस्य विषयस्य विवरणम् उत्तमतया सम्यक् रीत्या च अनुभूयते । उत्तरवैदिककाले भूमि वितरणम् एवं शतपथब्राह्मणानुसारेण ब्राह्मणवर्णं परित्यज्य सर्वे कृषिः कार्यं कुर्वन्ति।

अथर्ववेदे कृषिः कार्यया उपयोगिता-

अथर्ववेदे बृहद् कृषिसाधनानि सन्ति। तैतरीयसंहितायां बीजवपनं धान्यकर्तनं प्रत्यक्षरूपेण दृश्यते। सम्भवतः तस्मिन् समये कृषिकार्यं स्वचरमोत्कर्षे आसीत्। इत्थं प्रकारेण वैदिककालीन सभ्यताया: विभिन्नः आयामः सम्यक् रूपेण दृष्टिगोचरः भवन्ति। कृषिः व्यवस्थायाम् आर्थिकदृष्ट्याऽपि भारतः उन्नतदेशः इति ज्ञायते। अज्ञातसमयेष्वेव भारतः कृषिः प्रधान देशः महानऋषि पराशरः अपि कृषि विज्ञानविषये स्वमतं प्रस्तोति तस्य प्रपौत्रः वशिष्ठाऽपि अस्मिन् विषये प्रचारं प्रसारं च कृतवान । वैदिकसाहित्ये भूमि शब्दस्य स्थाने कृत्र शब्दस्य प्रयोगः भवति। इन्द्रादिकदेवताः अपि क्षेत्रस्य पूजनं कुर्वन्ति। **(तमः न सहस्रभारं वर्षनि)।**

आचार्य चाणक्यमते- काण्डं बीजानं छेदलेपो मधु व्रतेन कन्दनम् अस्ति। बीजानं सम्पूर्णवैदिक साहित्ये विश्ववासिनः चिन्तयन्ति मननं कुर्वन्ति च, एतत् कार्यं तु अस्माकं कल्याणाय सुव्यवस्थितजीवनव्यापनकरणाय उपस्थितः अस्ति। **'अनन्ता वै वेदाः'** इति श्रुतिवाक्येन वेदवाक्यं अनन्तराशिः इति ज्ञायते। वेदव्यासेन प्रणिनां जड़मन्धता दृष्ट्वा वेदस्य चतुः खण्डः स्वीक्रियन्ते। ऋग्, यजुः, साम, अथर्वः तत्राऽपि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यकः, उपनिषदेषु च विभक्तः वेदे रसायन, पर्यावरण, वनस्पति शास्त्रं, वास्तुशास्त्रञ्च वर्णनं क्रियते। परञ्च तत्राऽपि कृषिः व्यवस्थायाः सन्दर्भे महत्वपूर्णरूपेण एवं तत्त्वचिन्तनं कृत्वा विशदि वर्णनम् ऋषयः क्रियन्ते। प्राचीनसमयेष्वपि विश्वविद्यालयेषु कृषिः शिक्षायाः विषये पाठनं भवति स्म। ये ग्रामीणाः सन्ति, ते पशुपालनं कृत्वा ऋग्वेदानुसारेण कृषिः कार्ये प्रवृत्ताः भवन्ति स्म। ऋग्वेदस्य एकस्मिन् मन्त्रे ऋषिः कथ्यते द्यूतकार्यं न करणीयं तस्य स्थाने कृषिः करणार्थं वयं प्रवृत्तः भवामः। अथर्ववेदेऽपि वयं पठामः

'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः'।

यस्मिन् वर्षे कृषिः कार्यं प्रति कोऽपि विघ्नः जायते तत्र ये ज्योतिषं जानन्ति ते स्वमतं प्रस्तोति यथा- ऋषिः पाराशरः कथ्यते यस्मिन् वर्षे सूर्यः अधिपतिः भवति तस्मिन् वर्षे वर्षायाः अभाव: दृष्यते, एवं यस्मिन् वर्षे चन्द्रः अधिपतिः भवति तस्मिन् वर्षे सम्यक्तया वृष्टिः भविष्यति। धन-धान्यं वर्धयति च । इति प्रकारेण बुध-गुरु-शुक्रश्च अधिपतयः भवन्ति तस्मिन् वर्षे सामान्य स्थिति भवति।

शतपथब्राह्मणे-

शुनः इति शब्दस्य प्रयोगः समृध्यर्थे एवं सितः शब्दस्य प्रयोगः कृषिः साधनानि कृते।

"सुनम्नः फलाटि कृषन्तु भूमि सुनं कि नासा अभियन्तु सुनं प्रजन्यो पयोभिः सुनः सिरः सुनमाष्मुधत्रम्"।

वेदे नक्षत्राधारे कृषिः व्यवस्थायाः वर्णनम्-

क्षेत्रे कर्षणसमये नक्षत्रकालादि गणनानुसारेण निर्धारणं भवति। नक्षत्रेषु उत्तरभाद्रपद-मृगशिरा-रोहिणी-मूल-पुनर्वसु-पुष्य-श्रवणः च हलः प्रसारणसमये प्रयोगः क्रियते । सूर्यः यदा वृषराशिः स्थिते, मीनराशौ, कन्या राशौ, मिथुनराशौ च प्रवेशः करोति तदा हलः प्रसारणं भवतु। इत्थं प्रकारेण चतुर्दश चान्द्रपदेषु शुक्लपक्षे द्वितीया-तृतीया-पञ्चमी-सप्तमी-दशमी-एकादशी-त्रयोदशी च तिथौ हलप्रसारणं भवतु। यदा सूर्यः रोहिणी नक्षत्रे कुम्भराशौ प्रवेशः करोति तदा फाल्गुनमासे वृष्टिः भविष्यति। वैशाखे चन्द्रस्य प्रभावः दरीदृष्यते। ज्येष्ठमासे चित्रा-स्वाति-विशाखा

नक्षत्राणां योगे मेघस्य अभावः दृश्यते। आषाढमासे पूर्व-उत्तर-पश्चिमदिशयोः वायुः प्रसरन्ति, श्रावणमासे रोहिणी नक्षत्रे वृष्टिः भवति, यदा मङ्गल-शनिश्च राशौ स्वाति नक्षत्रान्तर्गते भवति तदा उच्चगुणवत्तायां वृष्टिः भवति।

वराहमिहिर: स्व बृहत् संहितायाम्-

वाराहमिहिरः उपरोपणस्य विषये स्वमतं प्रस्तोति। शिशिरऋतौ वृक्षाणां उपरोपणं भवतु, हेमन्तऋतौ तथा शरदऋतौ अपि उपरोपणकार्यं करणीयम्।

उपसंहारः –

इत्थं प्रकारेण ज्ञायते भारतीयकृषिः पध्द्तौ एवं कृषिः उपकरणविषये वैदेशिकः अपि चिन्तनं कुर्वन्ति। श्रीधर्मपालमहोदयस्य पुस्तकम् **'इण्डियन साइंस एण्ड टैक्नौलॉजी इन दि एटिन्थ सेन्चुरी'** तत्र भारतकृषिः वर्णने एवं तस्य उपयोगितायाः विषये बहु चिन्तनात्मकं वर्णनम् अस्ति। ऑस्ट्रेलिया देशेऽपि १६६२ तः एवं इंग्लैण्ड देशे १७३० तः कृषिः कार्यम् आरम्भं सञ्जातः। मेजर जनरल एलेक्जेण्डरवाकर महोदयस्यानुसारेण भारतीयकृषि: पध्दत्या: प्रशंसा सञ्जातः। अस्माकं वेदे अपि 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' इत्यादि वाक्यानि विभूषितानि सन्ति। वेदेषु सर्वत्र अस्य उल्लेखः जायते। भो! वसुन्धरा वयं सदैव सर्वत्र च भवत्याः कीर्तिं गायामः।

सन्दर्भग्रन्थाः –

१. प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग : सत्यकेतु विद्यालंकार, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण: २०११
२. प्राचीन भारत : डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, द्वितीय संशोधित संस्करण: १९७३ मोतीलाल बनारसीदास
३. प्राचीन भारतीय संस्कृति : वी. एन. लुनिया, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा २००६-०७
४. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता : दामोदर धर्मानन्द कोसंबी, अनुवादक-गुडाकर मुले, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरा संशोधित संस्करण १९९०
५. प्राचीन भारत का सामजिक इतिहास : डॉ. जयशंकर मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, पटना : चतुर्थ संस्करण १९८६
६. वैदिक साहित्य में समाज : ०६/०१०/२०२० डॉ. योगेन्द्र सिंह, कला एवं धर्म शोध संस्थान, वाराणसी २०११

आधुनिकप्रसङ्गे ऋग्वेदसंहितायां सिञ्चनसाधनानि

अभिषेकः कुमारः उपाध्यायः
शोधच्छात्रः, सर्वदर्शनविभागः,

श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय, नई दिल्ली

abhisheku86@gmail.com +919454181691

भारतधरा कृषये सर्वथा उपयुक्ता अस्ति। उत्कृष्टभूमिजलवाय्वोः कारणेन अयं देशः कृषिप्रधानः अभिहितः। तस्मात् कृषिकर्मनिपुणाः भारतीयाः आसन्।[1] भूमिरियं द्वयोः भागयोः स्थाप्यते क्षेत्रारण्ययोः।[2] अरण्यानि पशुचारणाय क्षेत्राणि च नानाविधकृषये प्रसिद्धानि। वैदिककाले प्रायः जनाः ग्रामेषु निवसन्ति स्म।[3] ग्रामाश्च तेषां पार्श्ववर्तिक्षेत्राणां समीपं भवन्ति स्म। क्षेत्रदेवः क्षेत्रपतिनाम्ना प्रथितः।[4]

ऋग्वेदे नैकस्थानेषु कृषितत्सम्बद्धसाधनानामुल्लेखः वर्तते। प्रमुखसाधनेषु कृषिकार्याय सिञ्चनं परम् अनिवार्यम्। वर्षाम् उर्वरतां च वर्धनाय प्रार्थनाविधानमप्यस्ति।[5] सिञ्चनकृत्यं प्राकृतिकवर्षाम् अतिरिच्यापि कृत्रिमजलस्रोतस्सु निर्भरम् आसीत् अस्ति च। वर्षायै क्षेत्रपतेः स्तुतिः क्रियते यत् यथा **गावो मिष्टपयोधाराः वर्षन्ति तथा अस्मभ्यमपि मिष्टघृतमिव पवित्रीकृतमधुरजलधाराः वर्षतु।**[6]

यथार्थस्थितिं पश्यामश्चेत् ज्ञायते यत् वर्षाभावे सिञ्चनस्य अन्यसाधनानि वृथा वर्तन्ते यतोहि कृत्रिमसाधनानि मूलतस्तु वर्षाजलान्येव आश्रयन्ति। ऋग्वेदे इन्द्रवृत्रासुरसङ्ग्रामसङ्घर्षेण अपि स्पष्टीभवति कृषिप्रधानभारते वर्षामाहात्म्यम्। इन्द्रो वर्षादेवः, वृत्रासुरश्च वर्षाबाधकः असुरः। अतो मेघः काम्यते यत् सः मधुरजलेन सह सुखमयीं वृष्टिं करोतु–

शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुना सीरा शुनमस्मासु धत्तम्।[7]

सिञ्चनापो द्विविधा आद्या खनित्रिमा (खननेन उत्पन्नं जलम्) द्वितीया च स्वयञ्जा (स्वयं उत्पन्नं जलम्)–

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति।

खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजा।।[8]

पर्जन्यसूक्तेन ज्ञायते यत् वैदिककाले मेघः वर्षाभ्यः समुचितः याचितः प्रार्थितश्च।

वर्षान्ते कृषेः उत्पादने सिञ्चनाय क्रमोऽस्ति नदीनाम्। यत्र वैदिकवाङ्मये प्रायः एकत्रिंशत् नदीनाम् उल्लेखः अस्ति, तत्रैव ऋग्वेद एव पञ्चविंशतिः नद्यः उल्लिखिताः सन्ति।[9]

---

[1] ऋग्वेदसंहिता १०/१४६/६
[2] ऋग्वेदसंहिता ६/६१/१४
[3] ऋग्वेदसंहिता १/४४/१०, १/१४१/१, १०/१४६/१
[4] ऋग्वेदसंहिता ४/५७/१–८
[5] ऋग्वेदसंहिता ७/१०१/३, १०/१०५/१
[6] ऋग्वेदसंहिता ४/५७/२
[7] ऋग्वेदसंहिता ४/५७/८
[8] ऋग्वेदसंहिता ७/४९/२
[9] ऋग्वेदसंहिता १०/७५/५६

सिन्धुनदी सर्वाधिकमहत्वपूर्णा अस्ति।[10] सप्तसिन्धुलेखः मुहुर्मुहुर्वर्तते।[11] सरस्वती, दृषद्वती अनयोः नद्योः बहुधा उल्लेखो भवति। तेन हि स्पष्टं यत् अद्यवत् नदीषु अपि सिञ्चनप्रणाली निर्भरा आसीत्। सिन्धुनदी सर्वाधिकजलयुक्ता तद्गतिशीलत्वात् अभिहिता। अतिवर्षाभिः वृषभवत् गर्जति। पञ्चनद्यः सिन्धुनदीं प्रति वहन्ति।[12] पञ्चनदीयुक्तं स्थानं परवर्तिकाले पञ्जाब इति प्रसिद्धम्।[13]

तदनन्तरं कूपाः सिञ्चनकर्मणि प्रामुख्यं भजन्ते। कूपाः अवत उत्स इति रूपेण प्रसिद्धाः। मानवः कूपैः उद्यानवनलतानां सिञ्चनं कृत्वा उत्कृष्टानि सस्यानि फलानि च प्राप्नोति। तदुत्पन्नान्नादिभिः प्राणिनो तर्पयन् प्रसीदति। यथा भक्तः परमेश्वरप्राप्त्या पूर्णमानन्दमनुभवति तथा पिपासवोऽपि मिष्टजलयुक्तकूपमासाद्य तृप्ताः भवन्ति स्म।

विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।[14]

रज्जुयुक्तोदञ्चनैः पाषाणचक्रैर्वा कूपाद् जलं बहिः आनीय सिञ्चनं क्रियते स्म। येन चक्रेण जलं निस्सार्यते स्म तत् अश्मचक्रम् उच्चाचक्रम् इति रूपेण प्रसिद्धम् आसीत्। अनेन चक्रेण वरत्रा अर्थात् रज्जवः, रज्जुभिश्च कोशाः लग्नाः भवन्ति स्म। कूपजलं क्षेत्रेषु प्रापणाय नालिकाः क्रियन्ते स्म। ऋग्वेदे कूपोल्लेखः अस्थायी अर्थात् खनितगर्तरूपेण अस्ति। कथयितुं शक्नुमो यत् वर्तमानकालीननलकूपप्रतीकभूताः एव वैदिककालीनकूपाः स्युः।

नदीकूपयोः पश्चात् क्रमोऽस्ति कूल्यायाः। नदीभ्यः एव कूल्याः निर्मिताः। नद्यस्तु स्वभावतः स्वमार्गं निश्चित्य प्रवहन्ति। किन्तु कूल्यास्तु मानवनिर्मितत्वात् कृत्रिमाः सततं प्रवहन्ति। इयमवधारणा प्राचीनकालेऽपि आसीत्। कूल्या जलाशयवाचकत्वेनापि वर्णितः अथापि कृत्रिमजलधाराबोधकोऽपि कूल्याशब्दो बुध्यते। अत एव तु कूल्यासम्बन्धः नदीभिरवश्यमासीत्। कूल्याभ्यः दीर्घह्रदेषु जलानाम् एकत्रीकरणस्यापि उल्लेखः प्राप्यते। कूल्या गोरूपवन्द्याः वत्सत्वेन अभिमन्यते। वेगवत्यो जलधाराः समुद्रं गच्छन्ति। आकाशात् जायमानदानरूपवर्षाभिः कृषकाः यवादिकं वर्धयन्ति।

वर्तमानकाले सिञ्चनाय इमान्येव स्रोतांसि दृश्यन्ते। अद्य यावत्योऽपि कूल्याः सन्ति यथा गङ्गनहर–घाघरानहर–कोसीनहरइत्याद्यः कूल्याः वैदिककालदेव अनवरतं भारतभुवि प्रवाहितगङ्गा–यमुना–सिन्धु–एतत्सहकारि–नदीभ्य एव उद्भूताः। पूर्ववर्त्युत्तरप्रदेशे ग्रामेषु पर्वतप्रदेशेषु च अल्पमात्रीयजलवत्कूपेभ्यः जलं नयनाय रज्जूदञ्चनप्रयोगविधिः विधीयते।

वैदिककालस्य अक्षय्यकूपानां स्थानं वर्तमाने नलकूपैः गृहीतम्। किन्तु भारतस्य पर्वतीयक्षेत्रेषु अयं विधिरद्यापि असफल एव यथा विन्ध्याचलक्षेत्रे।

वर्तमाने सिञ्चनसाधनानां दोषो यत् तेषां विकृतस्वरूपकूल्याजलानि प्रदूषितानि अभवन्। नलकूपाः पूर्णतः विद्युत्–पैट्रोलियमतैलेषु निर्भराः अभवन्। असन्तुलितपर्यावरणकारणात् क्वचित्

---

[10] ऋग्वेदसंहिता १०/७५/६
[11] ऋग्वेदसंहिता ८/२४/२७
[12] ऋग्वेदसंहिता १०/७५
[13] ऋग्वेदसंहिता १०/७५/५
[14] ऋग्वेदसंहिता १/१५४/५

अतिवृष्टिः क्वचिदनावृष्टिः दृश्यते। वैदिकार्थव्यवस्थायाम् पशुपालनस्य प्रमुखयोगदानम् अद्य नगण्यं जातं यस्मात् कृषिकार्यं नानासङ्कटैः ग्रस्तम्।

वर्तमाने भारते शस्यानि अशीतिप्रतिशतं प्रावृट्कालाधारितानि सन्ति। पञ्चवर्षीययोजनायाः सार्धचतुस्सहस्रदशकेष्वपि त्रिंशत्प्रतिशतभूमिः एव सिञ्चिता भवति। अस्य कालस्य अनिश्चितदैवापदानन्तरमपि उत्पादने असिञ्चितभूमेः चत्वारिंशत्प्रतिशतं योगदानम् अस्ति। अतः शुष्कक्षेत्रेषु जलसंरक्षणस्य महती आवश्यकता अस्ति। जनाः जलं वृथा एव नाशयन्ति। वृक्षारोपणेन वर्षासम्भावना जैविकतत्त्वापूर्तिः च भवति। एतस्मात् कारणात् वृक्षारोपणं समस्यां समाधातुं समर्थमस्ति।

अतः अस्माभिः वैदिककृषिपद्धतिमनुसृत्य कृषिविकासो विधेयः। कृषेः समस्तविकाससम्भावनाः विकासयितव्याः प्रकाशयितव्याश्च। सन्तुलितवातावरणमेव स्वस्थकृषिसमुत्पादनं दातुं समर्थम्। पर्यावरणस्य असन्तुलितता वैदेशिककृषिपद्धतिः भारतीयकृषिविधनीत्यर्थं वृत्रासुरस्य कार्यं कुरुतः। अतः इन्द्ररूपेण प्रसृतां वैदिककृषिमाश्रित्य प्रवर्धितेन नूनं भारतं पुनर्भा–भारतं भवितुमर्हति।

वैदिककृषिव्यवस्थाप्रकाशनम्

तेज प्रकाशः, शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः,
दिल्लीविश्वविद्यालयः, दिल्ली
tejprakashjnu2016@gmail.com
+919540374434

भौतिकवस्तुविकासप्रकाशभवनं वैज्ञानिकयुगं सर्वतो दीपयति। तस्मात् मनोमस्तिष्के सर्वादौ एकः प्रश्नो भवति यत् कोऽसौ प्रथमो वैज्ञानिको, येन हि कार्यसाधकाय मानववपुषे साधनत्वेन आहारसंरचना कृता। वयं पश्यामो यत् मानवजीवनयात्रायै सर्वाधिकं महत्त्वपूर्णमङ्गमस्ति आहारः। यतोहि यदि भोक्ता अस्ति तर्हि तस्य भोज्यमपि सुनिश्चितमेव। तस्मात् मानवाहरणीयाहारं कस्माद् वयमाप्नुमः इति। एतस्य उत्तरमस्माभिः वैदिकसंहिताभ्यः प्राप्यते। **धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः, सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति[1] इति** मनुवाक्यधिया उच्यते **या सत्यविद्या भुवि सन्ति तासां वेदोऽखिलं पुस्तकमादिभूतम्। वेदस्य तस्मात् पठनं च पाठनं परं श्रुतिश्रावणमार्यधर्मः॥** अर्थात् अस्मत्पुरतः विश्वस्य आदिग्रन्थरूपेण वेदाः स्वतः आयान्ति। कस्यापि सभ्यतां संस्कृतिं च तस्य ग्रन्थाः सम्यक् प्रतिपादयन्ति। येनादिपुरुषेण जन्म दत्तं तेनैव मानवस्य स्वजीवनव्यापाराय आहारव्यवस्थायाः अपि ज्ञानविज्ञानं वेदग्रन्थेषु निहितम्। ऋषिभिश्च तज्ज्ञानमस्मत्पर्यन्तं प्रापितं तस्मात् ते वैज्ञानिकाः। आहारश्च तेषां विज्ञानम्। आहारव्यवस्था कृषिकर्मणा सम्पद्यते। ऋषिभिरेव बीजाद् फलावाप्तिपर्यन्ता क्रिया निर्दिष्टा। आर्यजनाः स्वं राष्ट्रं समुन्नेतुं कृषिपशुपालनादिकर्म कुर्वन्ति स्म। अमी प्राकृतिकशक्तित्वेन वर्षाविद्युद्देवेन्द्रवायुदेवमरुत्सूर्यादिसमर्चनं विदधति स्म इति ऐतिह्यविदां मतम्।

यत्र ऋग्वेदसंहितायाः तृतीयपञ्चममण्डले विहाय सर्वेषु मण्डलेषु, विशेषतो दशममण्डले कृषिसम्बद्धाः मन्त्राः सन्ति, अथापि सम्पूर्णसूक्तसङ्ख्या च षड्विंशति। तत्रैव यजुर्वेदसंहितायां द्वादशाध्यायेषु अष्टाविंशतिमन्त्रेषु, विशेषतश्च अष्टादशाध्याये कृषिसमर्चा वर्तते। तत्रैव अथर्ववेदसंहितायामपि त्रीणि सूक्तानि पूर्णतो कृषिज्ञानविज्ञानसंवलितानि सन्ति।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व इति वेदाज्ञा। सृष्टेः वेदस्य च प्रथमवाक्ये **अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥** अन्नयाचना अपि कृता। वर्तमाने मानवभोज्ये गोधूमतण्डुलयवचणकप्रभृतीनि प्रामुख्यं भजन्ते, येषां प्राकृतिकारण्यकानि न लभन्ते। एतत्सर्वमर्जयन् मानवः शस्यपूर्णक्षेत्राणां स्वामी सिद्धः। एतदेव पृथुचमत्कारं यस्मादियं धूलिधूसरितधरा पृथ्वी रत्नधातमा। कृषियोग्यशस्यान्नोत्पादनं मानवस्य परमोत्कृष्टः आविष्कारो वर्तते। यजुर्वेदसंहितायाः अष्टादशाध्यायस्य द्वादशोऽधोलिखितो मन्त्रः शस्यसूचीं दर्शयति–

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥[2]

गोधूमाः यूफ्रेरीज–टाईग्रिस–क्षेत्रीयारण्येषु अतिप्राचीनकालात् प्राप्यन्ते स्म, अस्मादेव तेषां प्रचार–प्रसारोऽभूत् इत्येव विद्यार्थिनोऽध्याप्यन्ते। अयं तावद्दोषो यतोहि यजुर्वेदसंहितायाः एकोनविंशाध्यायस्य द्वाविंशे, एकविंशाध्यायस्य च एकोनत्रिंशे मन्त्रेऽपि गोधूमवर्णनमस्ति। तर्हि अरण्यरुदितं वृथा एव इत्यपि सिद्ध्यति। याज्ञिककृत्येषु अपि तण्डुलयवतिलोर्दपयोघृतमधूनामेव अतिशयेन क्रियते स्म।

कलशकरण्डस्थालीसन्दशरज्ज्वादिगवेषणा केन कृता। दुग्धाद् दधि कथं परिणमतीति केनादौ आविष्कारेण कथिता, न कश्चित् जानाति। किं कश्चित् विज्ञापने समर्थः एतद्विषये। तथैव वैदिककालीनकृष्योत्पादनेभ्यः प्रयुक्तसाधनानि न कश्चित् कथयति।

अद्य वयं पश्यामो यत् कृषकाः हलयन्त्रैः भूमिः कृषियोग्या विधीयते, किन्तु पुराकाले हलयन्त्राणि नासन् तर्हि बलीवर्दप्रयोगः क्रियते स्म। यस्य उल्लेखो वैदिकसंहितासु प्राप्यते। पाश्चात्यः लुडविग् स्पष्टं मनुते यत् मानवसमाजे कृषेः प्रारम्भिकसङ्केताः ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्याष्टाविंशसूक्ते सन्ति–

देवास आयन् परशूँरबिभ्रन् वनावृश्चन्तो अभिविड्भिरायन्।

---

[1] मनुस्मृति
[2] यजुर्वेदसंहिता १८/१२

निसुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्राकृपीटमनु तद्दहन्ति॥[3]

अभिप्रायोऽयं यद्देवाः स्वपरशुमादाय आगत्य अरण्यानि छित्वा स्वच्छानि कृतवन्तः। अनन्तरं कृषियोग्यभूमिं विहितवन्तः।

यजुर्वेदसंहितायाः नैकेषु मन्त्रेषु अन्नमहिम्ने, अन्नपतियशसे, उत्तमान्नोत्पादनाय भूमिशुद्धयै, अग्निशुद्धयै चोच्यते। कृषये आवश्यकानि तत्त्वानि भूमिसूर्यहस्तवायुरक्षणफलवत्त्वजलोर्वरकादीनि समुपयोगाय मानवो वेदेषु निर्दिश्यते। मानवः स्वकृषिं विशिष्टद्रवोषधीभिः करोतीत्ययं मन्त्रांशः –

सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः।[4]

आधुनिककाले विषाक्तधूम्रादिमलयुक्तम् अन्नादिभोज्यपदार्थादिकं यथा संसेव्यते, न तथा वैदिककाले। वैदिककृषिसंयुक्ताः कृषका शुचित्वपवित्रत्वमाधुर्यसुगन्धसुसंस्कृतत्वादिकं ध्यायन्ति स्म। अतः तेषामाहारे दुर्गन्धादियुक्तापवित्रतायाः स्थानं सर्वथा वर्जितमासीत्। तैः प्रार्थना विधीयते यत्

मधुमतीर्न इषस्कृधि।[5]

अस्यायमभिप्रायो यत् हे प्रभो! अस्माकम् अन्नादिपदार्थान् मधुरादिगुणसहितान् करोतु।

वेदेषु अन्नस्य कृते प्रायः चतुर्विंशतिपर्यायशब्दाः सन्ति। ये अन्नस्य विभिन्नगुणान् उपयोगान् ब्रुवन्ति।

प्राकृतिकरूपेण वर्षाभिः सिञ्चनकार्यं सम्पद्यते। येन हि नदीनदतडागखातादिकं सर्वं भरितं भवति। पुनश्च इमानि जलानि इच्छितकृषिकार्याय इच्छितस्थानेषु नीयन्ते। आधुनिककाले बन्धकूल्यादिभिः नदतडागादिकस्य स्थानानि गृहीतानि। अतो यजुर्वेदे इच्छितवर्षायै प्रार्थना विधीयते

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।[6]

ऋग्वेदे क्षेत्राणां कृते उर्वर–क्षेत्र इत्यनयोः पदयोः प्रयोगो लक्ष्यते। क्षेत्रयोः प्रकारद्वयम् अप्नस्वती, आर्तना।[7] क्षेत्रेषु वैयक्तिकाधिकारस्य प्रचलनमासीत्। वैयक्तिकस्याभिप्रायो यत् तस्मिन् क्षेत्रे कुटुम्बस्यैकस्याधिकारः इति।

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोहय।

शिरस्तस्योर्वरादिदं म उपोदरे॥[8]

क्षेत्रपालकस्य एकस्य देवस्य पृथक् सत्ता स्वीक्रियते, यं स्वक्षेत्रीयशस्य सम्पन्नतायै प्रार्थयन्ति स्म जनाः इत्येवमुल्लेखः ऋग्वेदस्यचतुर्थमण्डलस्य सप्तनवतितमे सूक्ते

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।
शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वातैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त॥[9]

पुष्पफलादिभिरावृता ओषधयः नित्यं भूम्यां प्रसन्त्विति प्रार्थना वर्तते

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः॥ ऋग्वेदसंहिता १०/९७/३

---

[3] ऋग्वेदसंहिता १०/२८/८
[4] यजुर्वेदसंहिता १८/३५
[5] यजुर्वेदसंहिता ७/२
[6] यजुर्वेदसंहिता २२/२२
[7] ऋग्वेदसंहिता १/११७/६
[8] ऋग्वेदसंहिता ८/९१/५
[9] ऋग्वेदसंहिता ४/९७

वैदिककालीनकृषिकर्मप्रकारान् दृष्ट्वा ज्ञायते यत् वर्तमानकालिककृषिमिव आसीत्। उर्वरक्षेत्राणि हलयन्त्रैः कर्षयित्वा बीजवपनयोग्यानि क्रियन्ते स्म। हल, फाल इति भाषायां प्रयुक्तशब्दस्य कृते वैदिकभाषायां लाङ्गल–सीरशब्दाभ्यां उच्यते। उर्वरकस्य कृते गोमयं करीषं वा प्रयुज्यते स्म।

अन्ने पक्वे जाते क्षेत्राणि दात्रेण कर्त्यन्ते स्म। अन्नं पात्रैः मापित्वा बृहन्मृत्कोष्ठेषु स्थाप्यते स्म। तस्य मापकं पात्रमूर्दरनाम्ना आसीत् इति ज्ञायते ऋचया

तमूर्दरं न पृणता यवेन।[10]

यत्र प्रकोष्ठेऽन्नं स्थाप्यते स्म तत्स्थानं स्थिवि इति पदेन उच्यते

बृहस्पतिः पर्वतेभ्योः वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः।[11]

वैदिककाले जीवननिर्वाहाय कृषेः आवश्यकता आसीत्। अन्नादिकस्य कृते कृषिकर्म कुर्वन्तस्तस्य साधनेषु आपः, लाङ्गलं, भूमिश्चेत्यादिकं प्राधान्यतां स्थापयन्ति।

---

[10] ऋग्वेदसंहिता २/१४/११
[11] ऋग्वेदसंहिता १०/६८/३

शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू के वैज्ञानिकों तथा छात्र छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किये गए पोस्टर

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक
१.	जम्मू जिले में जैविक और अजैविक बासमती खेती का आर्थिक विश्लेषण	राशिका महाजन, अनामिका शर्मा, लक्ष्मिकांत शर्मा और राजिंदर पेशिन
२.	स्वदेशी कीट प्रबंधन में पारंपरिक ज्ञान की पुनर्स्थापना	उमा शंकर, पी.के. राय और सुधाकर द्विवेदी
३.	उड़द में एंथ्रेक्नोज़ के प्रबंधन के लिए जैविक खेती के घटकों का मूल्यांकन	शाइनी चातक, देविंदर कुमार बन्याल एवं अमरीश वैद
४.	जैविक खेती : भविष्य की आशा	नीर सोमाक्का
५.	मसूर के प्रमुख रोग और इसका जैविक प्रबंधन	मनमोहन सिंह, रणबीर सिंह, अमरीश वैद और शाइनी चातक
६.	जम्मू क्षेत्र में जैविक बटन मशरूम (एगेरिकस बिस्पोरस) उत्पादन, गुणवत्ता और कीटनाशक अवशेष विश्लेषण	सरदार सिंह काकरालिया, सचिन गुप्ता, स्टेनज़िन दिस्कित और देचन चौस्किट
७.	जम्मू-कश्मीर के मध्यवर्ती क्षेत्रों मे स्वदेशी खाद्य भंडारण पद्धतियांः किसानों के पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण	जे. एस. मन्हास, उमा शंकर, एल.के. शर्मा और राकेश शर्मा
८.	फसल उत्पादन में अग्निहोत्रा (हवन) का महत्व	शाइनी चातक, अमरीश वैद, संतोष कुमार सिंह एवं मनमोहन सिंह
९.	प्रंपरागत कृषि विकास योजना	आर. एस. बोचल्या, एन. पी. ठाकुर, ए. के. गुप्ता, आर. पूनिया, दीपक कुमार और नेमीचंद यादव
१०.	चने में जड़ सडन रोग एवं उसका जैविक प्रबंधन	शाइनी चातक, अमरीश वैद, रणबीर सिंह एवं सचिन गुप्ता
११.	चने में हेलिकोवर्पा आर्मिगेरा (हबनेर) पर अंतरफसलों और सीमावर्ती फसलों का प्रभाव	प्रदीप कुमार कुमावत, रीना, तालीम हुसैन, बी.के. सिन्हा एवं पुष्पेंद्र कुमार यादव
१२.	मक्का के मुख्य रोग और उनका जैविक प्रबंधन	शाइनी चातक, जगदीश अरोड़ा, अमरीश वैद, अशोक कुमार सिंह एवं दीपक कुमार
१३.	मशरूम के अवशिष्टों से अहर्गेनिक खाद : भूमि की उपजाऊ क्षमता बढ़ेगी तथा बीमारियों से रक्षा	सरदार सिंह काकरालिया, सचिन गुप्ता, स्टेनज़िन दिस्कित और देचन चौस्किट
१४.	जैविक दशाओं में चने की जर्मप्लाज्म लाइनो का मूल्यांकन तथा ऐसकोकायटा रहबी का लक्षण वर्णन	शिवराज सिंह पवार तथा एस. के. सिंह
१५.	सहज कृषि - किसानों के लिए वरदान	भव कुमार सिन्हा, रीना, गुरदेव चंद, मुनिबा बानो, प्रदीप कुमार कुमावत और नवीन कुमार
१६.	एकीकृत कीट प्रबंधन से लेकर जैविक सब्जी की खेती तक	राकेश शर्मा, कार्तिक कुमार, सेवांग डोलमा और रूहाना रफीक
१७.	समग्र जानकारी प्रदान करने के लिए जैविक डेयरी फार्मिंग पर एक आवश्यकता आधारित वेब माड्यूल का डिजाइन और विकास	प्रणव कुमार, प्रह्लाद एस. सलाथिया और राजिंदर पेशिन
१८.	जम्मू क्षेत्र में जैविक डेयरी फार्मिंग (ओडीएफ) प्रथाओं पर ज्ञान परीक्षण का विकास और मानकीकरण	प्रणव कुमार, प्रह्लाद एस. सलाथिया और राजिंदर पेशिन

१९.	**जम्मू क्षेत्र में जैविक डेयरी खेती के प्रति डेयरी किसानों के दृष्टिकोण को मापने के लिए एक पैमाना**	प्रणव कुमार, प्रह्लाद एस. सलाथिया और राजिंदर पेशिन
२०.	**वर्मीवाश : रोग और कीट नियंत्रण का एक जैविक एजेंट**	अनिल भादु, विकास शर्मा, फ़राज़ फ़ारूक़, राकेश कुमार चौधरी और शेष नारायण कुमावत
२१.	**जैविक और अजैविक परिस्थितियों में बासमती का आर्थिक विश्लेषण**	सुष्मिता रंगर, अनिल भट्ट, सुधाकर द्विवेदी और नरिंदर पनोत्रा
२२.	**वर्मीकम्पोस्टिंग और वर्मीवाशः टिकाऊ जैविक कृषि के लिए पोषक तत्वों के अंतिम स्रोत**	शेष नारायण कुमावत, अजय गुप्ता, मोनिका मेनिया, ज्योति शर्मा, राकेश कुमार चौधरी और अनिल भादु
२३.	**विभिन्न खरपतवार प्रबंधन प्रथाओं का जैविक बासमती (बासमती ३७०) के खरपतवार और उपज पर प्रभाव**	रितिका गुप्ता, नरिंदर पनोत्रा, विकास शर्मा, राजीव भारत और मग्धेश्वर शर्मा
२४.	**बार्नयार्ड बाजराः जैविक कृषि के लिए एक संभावित फसल**	सुभाष सी. कश्यप
२५.	**जैव उर्वरकः जैविक खेती के लिए वरदान**	तमन्ना शर्मा, विवेक एम. आर्या, पी. के. राय और विकास शर्मा
२६.	**जैविक परिस्थितियों के तहत गेहूं (ट्रिटिकम एस्टीवम एल.) जीनोटाइप की स्थिरता विश्लेषण**	चमनप्रीत कौर और अंजनी कुमार सिंह
२७.	**माइक्रोबियल बायो-फोर्टिफिकेशनः फसलों को मजबूत करने का एक जैविक तरीका**	फ़राज़ फ़ारूक़, परमेंद्र सिंह और ज्योति शर्मा
२८.	**जम्मू में जैविक उत्पादन प्रणाली के तहत स्थिरता के लिए फसल विविधीकरण**	मीनाक्षी अत्रि और रितिका गुप्ता
२९.	**जैविक खेती - सतत कृषि की ओर एक रास्ता**	ज्योति शर्मा, अनिल कुमार और बी. सी. शर्मा
३०.	**जैविक और अजैविक खेत में बाजरा (पनीसेटमग्लौकम) की वृद्धि और उपज क्षमता**	मोहम्मद सादिक और राकेश कुमार
३१.	**जम्मू संभाग में चावल के रोग**	बुशरा रसूल, अमरीश वैद और जगदीश कुमार अरोड़ा
३२.	**पारंपरिक कृषि प्रणालीः स्थायी फसल उत्पादन और मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन की तत्काल आवश्यकता**	मीनाक्षी अत्रि, रितिका गुप्ता, नीतू शर्मा और कुरात-उल-ऐन-आगा
३३.	**जम्मू क्षेत्र में भिन्न उम्र के अंकुरित प्रत्यारोपित जैविक गेहूं (ट्रिटिकुमेस्टीवम एल) की उपज का प्रदर्शन**	नरिंदर पनोत्रा, विकास शर्मा, आकाश शर्मा, सतीश कुमार, बलबीर धोत्रा और एस. के. सिंह
३४.	**जैविक परिस्थितियों में उपज स्थिरता के लिए गेहूं का मूल्यांकन (ट्रिटिकम एस्टिवम एल.)**	हिमानी शर्मा, सुभाष सी. कश्यप और नरिंदर पनोत्रा
३५.	**होमा जैविक खेतीः पर्यावरण संशोधन का एक विकल्प**	शौर्या शर्मा एवंम दिक्षा
३६.	**संघनित टैनिन युक्त स्थानीय पेड़ के पत्तों पर आधारित पशु आहार से गायों से स्वच्छ दूध उत्पादन**	सहीम गोनी, ए. के. पाठक, आर. के. शर्मा, नीलेश शर्मा और मलिक अमरीना सेहर
३७.	**जम्मू और कश्मीर में वन आधारित उत्पाद : महत्व और आयाम**	सुनीश शर्मा, सुधाकर द्विवेदी और सुगंधा खजूरिया
३८.	**जैव उर्वरकः जैविक कृषि की ओर एक रास्ता**	याहिया अकरम लस्कर एवंम सरबदीप कौर
३९.	**फूलगोभी में अंतरफसलों से प्रभावित भूमि समतुल्य अनुपात**	खाती मालो एवंम आर. के. समनोत्रा
४०.	**जम्मू जिले में मौसम आधारित कृषि -सलाहकार सेवाओं का प्रभाव**	फरहान आसिफ नायको एवंम जे.एस.मन्हास

४१.	**हल्दी और लहसुन पाउडर संपूरक आहार से जैविक ब्रायलर उत्पादन**	सोनाली चौधरी, नजम खान, आर.के. शर्मा, ए.के. पाठक, विकास महाजन और अंतरा गुप्ता
४२.	**बायोचारः पराली जलाने का विकल्प**	विदुषी, विकास अबरोल, सबा खातून और तमन्ना शर्मा
४३.	**जम्मू संभाग में आलू की काली रुसी (ब्लैक स्कर्फ) रोग का अध्यन व प्रभावी नियत्रण के लिए पर्यावरण हितेषी समन्वित रोग प्रबधन प्रतिरूप का विकास**	जगदीश कुमार अरोड़ा, सचिन गुप्ता, रणबीर सिंह, अमरीश वैद, विशाल गुप्ता और संदीप चोपड़ा
४४.	**बायोचरः एक दीर्घकालिक स्थायी स्रोत**	विदुषी, विकास अबरोल और सबा खातून
४५.	**स्ट्राबेरी (फ्रैगरिया एक्स अनासा डच) की उपज और गुणवत्ता पर प्लांट ग्रोथ प्रोमोटिंग राइजोबैक्टीरिया का प्रभाव**	मनीषा भट, अमित जसरोटिया, प्रशांत बख्शी, दीप जी भट, कमलेश बाली और शगुन ठाकुर
४६.	**बासमती धान में गैर-रासायनिक खरपतवार प्रबंधन**	निदा पटेल, बी. आर. बजाया, आर. पुनिया और नवीना
४७.	**स्ट्रहबेरी -रनिया किस्म के विकास, उपज और गुणवत्ता पर विभिन्न कार्बनिक मीडिया का प्रभाव**	प्रशांत बख्शी, गुरविंदर सिंह, विशाल गुप्ता, पी के राय और दलबीर सिंह
४८.	**उपोष्णकटिबंधीय इंसेप्टिसोल में हाइड्रोलिक गुणों और जल उपयोग दक्षता पर बायोचार और खाद का प्रभाव**	पीयूष शर्मा, विकास अबरोल, शुभम चड्ढा और विकास शर्मा
४९.	**शुष्क भूमि में मिट्टी की गुणवत्ता पर कर्षण क्रियायों और सरसों आधारित फसल प्रणालियों का अल्पकालिक प्रभाव**	तंजोत कौर, सरबदीप कौर और जपनीत कौर कुकली
५०.	**कृषि खेतीः वेदों का दृष्टिकोण**	ललित उपाध्याय
५१.	**राजमा (फेजोलस वल्गरिस एल) के राइजोस्फीयर से फहस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया का अलगाव और उसके लक्षण**	नेमीचंद यादव, पी. के. राय, ब्रिजेश्वर सिंह, और विवेक एम आर्या
५२.	**जीरो बजट प्राकृतिक खेती**	तजली गुलशन और ताहिरा कोसर
५३.	**जैविक और पारंपरिक किसानों की आजीविका पर कृषि वानिकी का प्रभाव**	ताहिरा कोसर, तजली गुलशन और मुनाजा गुलजार
५४.	**सतत फसल संरक्षण के लिए कीटनाशकों के उपयोग को कम करने की आवश्यकता**	राजिंदर पेशिन, बी.एस. हंसरा, कुलदीप सिंह, राकेश नंदा, राकेश शर्मा, राजकुमार, स्टेनजिन यांग्सडन और लवलीश गर्ग
५५.	**प्राकृतिक खेती - सत्तत कृषि उत्पादन का भविष्य**	दीपक कुमार, अनिल कुमार, अशोक कुमार गुप्ता , नरेन्द्र पाल ठाकुर ,आर एस बोचल्या एवं प्रदीप कुमार कुमावत
५६.	**एकीकृत कृषि प्रणाली - एक प्राकृतिक खेती का वैज्ञानिक स्वरुप**	नरेन्द्र पाल ठाकुर, दलीप काचरू, विजय खजूरिया, अशोक कुमार गुप्ता, पुरुषोत्तम कुमार शर्मा, विकास कौल और दीपक कुमार

आयोजन समिति

प्रो. जे. पी. शर्मा	प्रो. मदन मोहन झा	श्री शक्ति कुमार पाठक
श्री श्री १०८ श्री हरेराम दास	महन्त रोहित शास्त्री	श्री सुशील कुमार
आचार्य अभिषेक कुमार उपाध्याय	आचार्य महेंद्र उपाध्याय	श्री नितिन रोबलिया
डॉ विश्व गुप्ता	आचार्य सुरेन्द्र शास्त्री	श्री प्रबोध शर्मा
डॉ संजय शर्मा	श्री चंद्रशेखर	श्री शरद चन्द्र शर्मा
	श्री राकेश गंडोत्रा	

सत्र आयोजक समिति (शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू)

संरक्षक	प्रो जे पी शर्मा	कुलपति
संयोजक	डॉ एस के गुप्ता	निदेशक प्रसार
	डॉ वी के वल्ली	निदेशक अनुसंधान
समन्वयक	डॉ विशाल महाजन	वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख, के वी के कठुआ
	डॉ प्रेम कुमार	वैज्ञानिक, के वी के जम्मू
विशेषज्ञ संपर्क समिति	डॉ अमरीश वैद	प्रधान वैज्ञानिक और प्रमुख, पौधा रोग विभाग
	डॉ राकेश शर्मा	वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विस्तार विभाग
	डॉ पवन शर्मा	वैज्ञानिक, विस्तार निदेशालय
	डॉ अनिल भट	वैज्ञानिक, कृषि अर्थशास्त्र और एबीएम
शोधपत्र पोस्टर प्रस्तुति समिति	डॉ विकास शर्मा	प्रधान वैज्ञानिक और प्रमुख, मृदा विज्ञान विभाग
	डॉ अमित जसरोटिया	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, फल विज्ञान विभाग
	डॉ जे एस मन्हास	वैज्ञानिक, कृषि विस्तार विभाग
	डॉ नरिंदर पनोत्रा	वैज्ञानिक, ओएफआरसी
	डॉ ए के पाठक	वैज्ञानिक, पशु पोषण
हिंदी अनुवाद समिति	डॉ उमा शंकर	वरिष्ठ वैज्ञानिक, कीट विज्ञान विभाग
	डॉ भव कुमार सिन्हा	वरिष्ठ वैज्ञानिक, पादप कार्यिकी विज्ञान विभाग
	डॉ एन के पंकज	वैज्ञानिक, पशु विष विज्ञान विभाग
प्रकाशन समिति	डॉ सुधाकर द्विवेदी,	वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि अर्थशास्त्र और एबीएम
(कृषि अनुभाग)	डॉ पी के राय,	वरिष्ठ वैज्ञानिक, मृदा विज्ञान, एसीएचआर
	डॉ राकेश शर्मा,	वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विस्तार विभाग
	डॉ पुनीत चौधरी,	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, केवीके जम्मू
	डॉ पवन शर्मा,	वैज्ञानिक, विस्तार निदेशालय
(पशु विज्ञान अनुभाग)	डॉ नीलेश शर्मा	वैज्ञानिक, पशु चिकित्सा विभाग
	डॉ प्रेम कुमार	वैज्ञानिक, के वी के जम्मू
	डॉ प्रणव कुमार	वैज्ञानिक, पशु चिकित्सा विस्तार विभाग
संसाधन समिति	डॉ विनोद गुप्ता	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, के वी के सांबा
	डॉ पुनीत चौधरी	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, के वी के जम्मू
	डॉ विशाल महाजन	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, के वी के कठुआ
	डॉ पवन शर्मा	वैज्ञानिक, विस्तार निदेशालय
प्रदर्शनी समिति	डॉ ब्रजेश अज्रावत	वरिष्ठ वैज्ञानिक, के वी के कठुआ
	डॉ अनामिका जमवाल	वैज्ञानिक, के वी के कठुआ
	डॉ विशाल	वैज्ञानिक, के वी के कठुआ
	डॉ अजय कुमार	प्रोग्राम असिस्टेन्ट, के वी के कठुआ
	डॉ आशु सूदन	एस आर एफ, के वी के कठुआ
	श्री साहिल शर्मा	के वी के कठुआ
	श्री पंकज मेहरा	के वी के कठुआ
	श्री सुनीश शर्मा	शोधछात्र
वितीय समिति	डॉ विशाल महाजन	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, के वी के कठुआ
	डॉ राकेश शर्मा	वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विस्तार विभाग
	डॉ पुनीत चौधरी	वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, के वी के जम्मू
	डॉ पवन शर्मा	वैज्ञानिक, विस्तार निदेशालय
	डॉ प्रेम कुमार	वैज्ञानिक, के वी के जम्मू
	श्री राकेश कपूर	डिप्टी कंट्रोलर

चूड़ामणि संस्कृत संस्थान के वार्षिक उत्सव एवं स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित होने वाले विभिन्न व्यवस्थाओं के प्रमुखों की सूचि

भोजन निर्माण व्यवस्था प्रमुख

1. श्री धीरज पाधा जी

भोजन वितरण प्रमुख

1. श्री राजन शर्मा जी

मंचव्यवस्था एवं पुरस्कार वितरण प्रमुख

1. सुश्री डिम्पल जी
2. सुश्री आस्था अनिल जी

स्वागत समिति प्रमुख

1. श्रीमति ललिता वैद्य जी
2. श्री महेंद्र पॉल उपाध्याय जी
3. श्रीमति विशाखा जी

मीडिया व्यवस्था प्रमुख

1. महत रोहित शास्त्री जी
2. श्री राज कुमार शुक्ल जी शास्त्री जी
3. श्री गुरमीत

स्मारिका प्रकाशन समिति प्रमुख

1. डा. मदन कुमार झा जी
2. डा. राहुल शर्मा
3. आचार्य अभिषेक कुमार उपाध्याय जी
4. श्री अंकुश कुमार शर्मा जी

तंबू विद्युत् एवं ध्वनि यंत्र व्यवस्था प्रमुख

1. श्री अनिल बसोत्रा जी
2. श्री संजय सिंह पठानिया जी
3. श्री लेख राज जी

आवास व्यवस्था प्रमुख

1. श्री सुशील कुमार पाठक जी
2. श्री नितिन दोबलिया जी

कार्यालय व्यवस्था प्रमुख

1. आचार्य सुरेन्द्र शास्त्री
2. श्रीमति अंजू बाला जी
3. श्री सहर्ष रत्न पॉल जी

प्रभात फेरी समिति प्रमुख

1. पंडित राकेश शास्त्री जी
2. सुनील कुमार जी
3. महंत सराफ जी

प्रतियोगिता व्यवस्था प्रमुख

1. आचार्य सौरभ जी

श्री शक्ति कुमार पाठक जी
मुख्यन्यासी चूडामणि संस्कृत संस्थान

श्री आचार्य अभिषेक कुमार उपाध्याय जी
प्राचार्य, चूड़ामणि संस्कृत संस्थान, विश्वस्थली

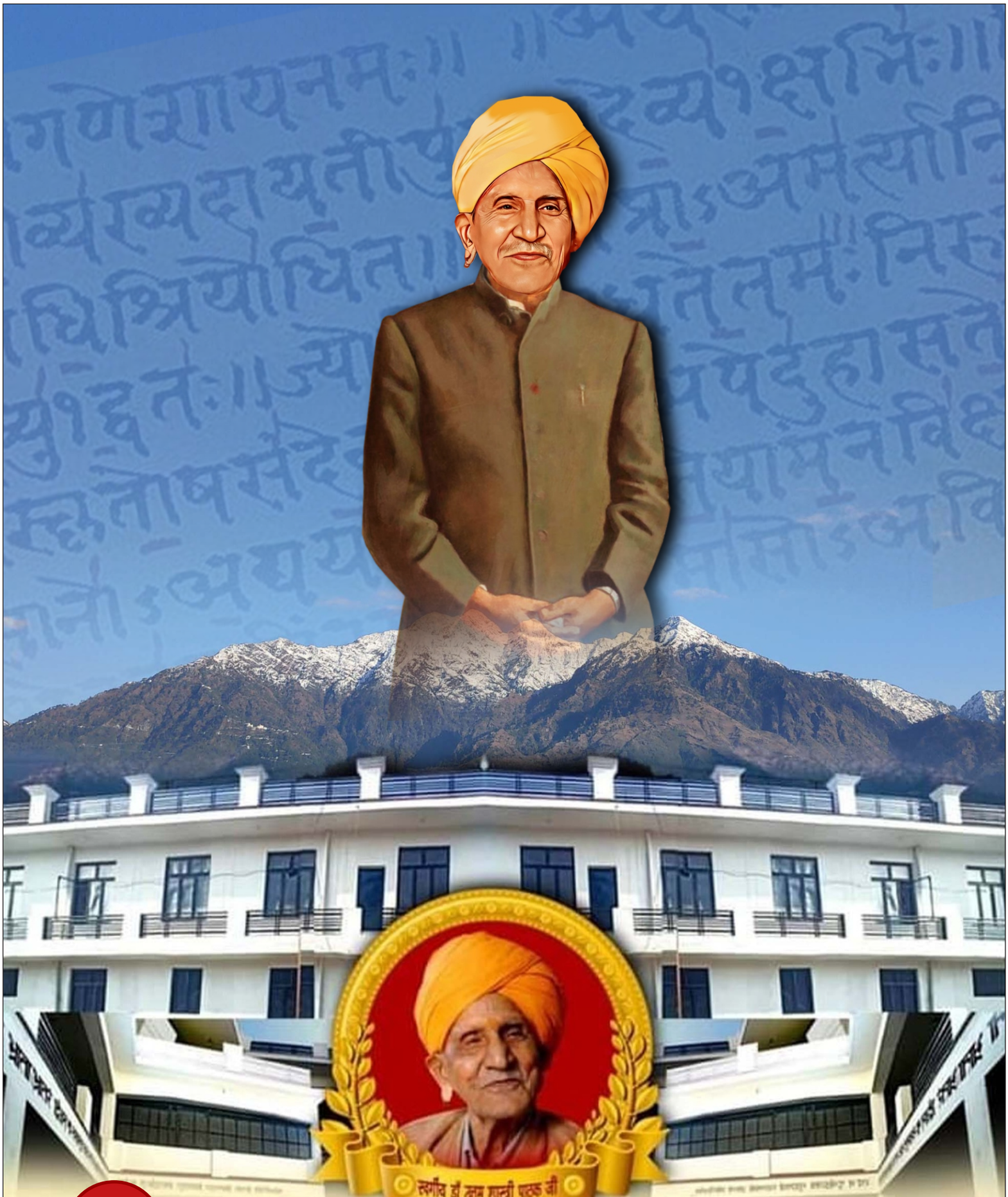

चूड़ामणि संस्कृत संस्थान

गुरुकुल चूड़ामणि संस्कृत संस्थान
विश्वस्थली बसहोली कठुआ जम्मू एवं कश्मीर